Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 25; अंक : 374; 1 से 15 फरवरी, 1985

सहायक संपादक :

अवधनारायण मुद्गल

उप संपादक :

रमेश बत्तरा

सुरेश उनियाल

बलराम

महेश दर्पण

वीरेंद्र जैन

सज्जा :

सुमीता

सत्ता संघर्ष कथा अंक

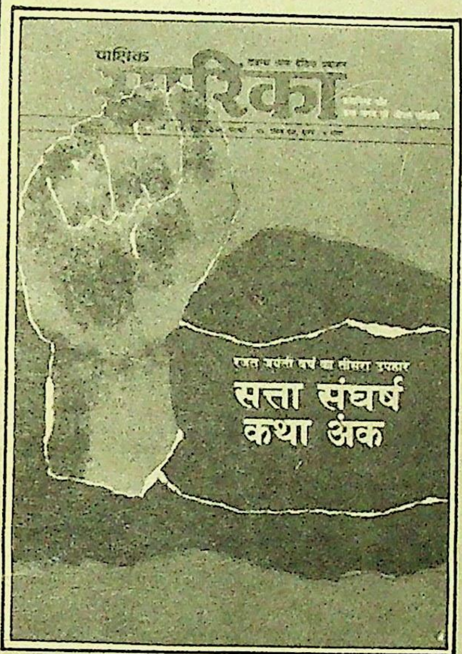

हमारी विभागीय चित्रकार सुमीता ने उपादेयता और अर्थवत्ता के आधार पर इस अंक के आवरण पृष्ठ का सवाल उठाया. वह सांकेतिक लेकिन बहुअर्थी और बहुआयामी ढंग से आवरण की संरचना करना चाहती थीं तभी हमारे एक मित्र ने महाप्राण निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' पंक्ति सुनायी—'कोदंड मुष्टि खर रुधिर स्राव'. . .आवरण की संपूर्ण संरचना ने इस पंक्ति में आकार ग्रहण कर लिया—सेंद्र पेपर की पृष्ठभूमि, उठी हुई मुट्ठी और रक्त स्राव, निराला की यह पंक्ति जहां राम की शक्तिपूजा का परिणाम है, वहीं हमारे इस आवरण पृष्ठ का आधार भी.

आवरण : सुमीता

कहानियां

15. चमत्कार (मराठी) : विष्णु सखाराम खांडेकर

16. लंदन की एक रात : निर्मल वर्मा

32. जंगल कट रहे हैं (उर्दू) : इकबाल मजीद

44. चांदी की तितली (अमरीकी) : पर्ल एस. बक

47. 1919 की एक घटना (उर्दू) : सआदत हसन मंटो

51. चोर (बंगला) : महाश्वेता देवी

53. गद्दार (कोरियाई) : युवाल चौंग नियान

57. कर्फ्यू (उड़िया) : जगन्नाथप्रसाद दास

60. संवदिया : फणीश्वरनाथ रेणु

66. फोकटिया रेडियो (अंग्रेजी) : सलमान रुश्दी

संक्षिप्त रूपांतर

9. मुख्यमंत्री (बंगला) : चाणक्य सेन

28. चंद्रगुप्त : जयशंकर प्रसाद

बतंगड़

40. राजनीति में सार्थक सिनेमा की तलाश : शरद जोशी

आत्मकथा : संस्मरण

42. खबर : हंसराज रहबर

69. और मैं हार गया : उम्मीदवार

विशेष आयोजन

64. राजनैतिक कहानी की परिभाषा. . . : भीष्म साहनी

लघु रचनाएं

26. शनि का इलाज : विनय विश्वास

37. कंकड़ भी चले जायेंगे : कन्हैयालाल सरस

39. एक अच्छा आदमी, शहीद : रमाकांत

46 चुनाव : दिनेश त्यागी

48. आदेश : विनोद गुप्ता

49. सांप : रामनिवास मानव

अन्य आकर्षण

6. आपकी बात

7. अपनी बात

72. भरतमुनि के वंशधर : सूत्रधार

संपादकीय पता : सारिका, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

वर्ष : २४; अंक : ३६०; १-१५ दिसंबर, १९८४

कहीं कुछ खाली

राजेंद्र सिंह बेदी की इस बात में '... इंसान होकर भगवान बनाते रहने की बेवकूफी क्यों करूं?' किसी न किसी कोण से मार्क्सवादी विचार धारा दिखाई पड़ती है. सही मायने में यह कहा जा सकता है कि आज की असंतुष्ट आध्यात्मिक संवेदनाएं कुछ विशेष करने को संतुष्टि देती है.

जब व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति की जमीन पर नहीं जी पाने की असमर्थता का एहसास करता है तो वह 'वहीं!' से टूटना शुरू करता है. **विभु कुमार** की **'यह कहानी मेरी नहीं है'** इस बात को महसूस कराती है. आधुनिक बुद्ध की बौद्धिक कुंठा कितनी त्रासदी पूर्ण है जो तमाम संवेदनाओं को झकझोरते हुए 'कहीं' कुछ (खाली शून्य) कर जाता है. जहां कुछ समझने का, 'न-समझने' का अव्यक्त नाटक किया जाता है.

▣ **अरुण अभिषेक, पूर्णियां (बिहार)**

स्वभाव से संकोची

सुभाष अखिल की कहानी **'गहरी नींद'** खासकर गांवों के उन लोगों की दर्द-गाथा है जो स्वभाव से सरल-संकोची होने व शिक्षा के अभाव में ऐसा जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं. मेरे गांव के कई युवक भी इस समस्या के शिकार हैं. ऐसी स्थिति (नपुंसकता) में आदमी जिस अंतर्द्वंद्व में पिसता व अपने आस-पास लड़ता है इसका सूक्ष्म व यथार्थपरक अंकन हुआ है इसमें. लघुकथाओं में **'भैंस किसकी'** (**रामनारायण उपाध्याय**) तथा **'हादसा'** (**महेश दर्पण**) ने काफी प्रभावित किया. **बलराम** का आलेख **'हिंदी की अच्छी किताबें इतनी मंहगी क्यों हैं?'** पाठकों तथा प्रकाशकों दोनों के लिए ध्यानाकर्षक है.

▣ **केशव दिव्य, बिलासपुर (म. प्र.)**

सिर्फ मेरी ही नहीं

सारिका के निर्धारित स्तर की दिशा ऊर्ध्व की ओर गतिमान है. विभु कुमार की कहानी **'ये कहानी मेरी नहीं है'** में नायक की मानसिकता का चित्रण जिस रूप में प्रस्तुत है वह मेरी मानसिकता की सत्यप्रतिलिपि प्रतीत हुई. वैसे नायक की मानसिकता सिर्फ मेरी ही नहीं आपकी भी है. हर व्यक्ति की है पर चेतना के स्तरों की विभिन्नता हो सकती है. यहां तक कि कहानी में नायक के साथ जुड़े परिवेश, मित्रों की संख्या और आंशिक आध्यात्म प्रेरित मनोवृत्ति सब के सब मेरे खुद का अंकन स्पष्टता से कर पाने में पूर्ण सक्षम हुए हैं.

▣ **सुधीर सिंह 'सरताज', पटना (बिहार)**

कविता के नजदीक एक कहानी

सभी कहानियां स्तरीय रहीं. काफी आकर्षक रोचक-प्रभावकारी. इस अंक की सब से अच्छी कहानी जो मुझे काव्य का, साहित्य का गहरा आनंद दे गई वह है—**'परछाइयां मरती हैं' (सोनिया मलोत्रा)**. है तो यह मूलत: एक भारतीय अप्रकाशित अंगरेजी कहानी पर अनुवादिका **ऋचा नागर** की साहित्यिक साधना की सफलता है कि इस अनूदित कृति में एक अभूतपूर्व मौलिक कहानी का, एक लालित्यपूर्ण साहित्यक सृजन का ताजा काव्यानंद प्राप्त होता है. इस रचना को बार-बार पढ़ने का मन करता है और बार बार आनंद आता है. आजकल की बहुत कम रचनाएं बारबार पढ़ने योग्य बन पाती हैं. निश्चित रूप से यह रचना काव्य के बहुत सन्निकट है—भाव, भाषा-शैली, अभिव्यक्ति में.

अन्य कहानियों में **विभु कुमार** की **'ये कहानी मेरी नहीं है'** और **शालिग्राम शुक्ल** की **'काला हंस'** काफी अच्छी लगीं. 'ये कहानी मेरी नहीं है' का कथ्य और शैली दोनों विशेष रूप से प्रभावित कर गया—अंतर्मन की गहन सूक्ष्म अनुभूति और मनोवैज्ञानिक अध्ययन-विश्लेषण मर्म को छू गया. 'काला हंस' अपनी प्रतीकात्मकता, अंतर्द्वंद्व, संदर्भ-निर्माण और वातावरण-सृजन में काफी गहरे ढंग से प्रभावकारी रही—एक अजब कुहरामय मधुर काव्यात्मक प्रभाव और आस्वाद लिए हुए.

'कुत्ते की मौत' (रमेश गुप्त), **'दर्द का नाता' (कुंथा जैन)**, **'अगला महीना' (भीमसेन त्यागी)** **'विद्रोह' (गुरुमुख सिंह जीत)** कहानियां भी बहुत अच्छी लगीं.

▣ **रवींद्रनाथ ओझा, बेतिया (बिहार)**

एक शिकायत और

'कुत्ते की मौत' व **'दर्द का नाता'** जैसी सशक्त कहानियों के लिए धन्यवाद. मैं **सारिका** का क्रॉनिक पाठक हूं. मुहब्बत-शिकायत का नाता सारिका से इसी वजह से है जिसे उभय पक्ष ने मजबूत किया है, समय-समय पर. इसी अंक में **भीमसेन त्यागी** की कहानी **'अगला महीना'** पढ़कर आश्चर्य हुआ. आखिर इस तरह की सस्ती व हल्की रचना छापकर, सारिका के पाठकों का मूल्य व समय क्यों बर्बाद करते हैं. क्या सारिका के प्रबुद्ध पाठक वर्ग का अपमान नहीं है यह? कि सारिका को इतना हल्का कर देना चाहते हैं आप?

▣ **डा. नरेश कुमार अग्रवाल, नयी दिल्ली**

खून का रंग काला

शैवाल की कहानी **'बेबीलोन'** निम्न और उच्चतम आर्थिक वर्ग की चालाक मानसिकता तथा अर्थ के प्रति भागदौड़ के अनैतिक पक्ष को उजागर तो करती है, बड़ा बाबू का चरित्र भी खून के रंग की तरह चमककर काला होता दिखा. महत्वाकांक्षा में ऐसा भी हो सकता है—फैशन के नाम पर आत्मविद्रोह उभरे. पर महज ब्वॉय कट बाल जैसे मुद्दे पर पिनक जाने का कमजोर धरातल कहानी को शायद कमजोर करता है. वैसे अन्य कहानियों में 'काला हंस', 'गहरी नींद' और 'कुत्ते की मौत' अच्छी लगीं. महेश दर्पण की लघुकथा 'हादसा' एवं जगदीश कश्यप की 'उसका संरक्षक' के लिए मेरी ओर से हार्दिक बधाई.

▣ **रामकृष्ण, हजारीबाग**

यहां गरीबी के अलावा क्या है?

मुखपृष्ठ काफी उत्तेजक लगा, बधाई. **राजेंद्र सिंह बेदी** एवं **पं. श्यामलाल शर्मा** का हादसात्मक समाचार पढ़ा. दोनों को मेरी भावभीनी श्रद्धांजलि.

पंडितजी की व्यंग्यकथा **'किस्सा अंग्रेजी दां का'** काफी रोचक एवं अर्थपूर्ण लगी. **'एक पुरानी कहानी'** (कुर्तुल-एन-हैदर), **'परास्त'** (**नवनीत मिश्र**), **'विद्रोह'** (**गुरुमुख सिंह**) श्रेष्ठतम कहानियां लगीं.

साक्षात्कार के अंतर्गत **कृष्ण बलदेव** ने जिस उदारता एवं स्पष्टता से जवाब दिये हैं मित्तलजी के सवालों के, वह बार-बार पढ़ने के ही नहीं बल्कि स्मरण योग्य प्रतीत होते हैं. वास्तव में, यदि भारत में गरीबी विषय को छोड़ दिया जाये, तो यहां कुछ लिखने को रह ही नहीं जाता है. यथार्थवादी चिंतन के धरातल पर साहित्य इस अबाधगति से चलने में सक्षम है तो मात्र गरीबी के कारण. इसका दूसरा पक्ष भले ही राजनीति ने अपने नाम कर लिया है, वह अलग विषय हो सकता है.

▣ **नवीन नयन, खगड़िया (बिहार)** □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

राजनीति हमारी जिंदगी का एक जरूरी हिस्सा बन गयी है. हमारी सांस का उतार-चढ़ाव और रक्त का संचार तक राजनीति से प्रभावित है, लेकिन इस अंक के लिए हमने राजनीति को पारंपरिक और अभिधात्मक अर्थों से अलग हटाकर एक व्यापक अर्थ में देखने और समझने-परखने की कोशिश की है. हमने इस अंक के संयोजन में उन तमाम बातों को ध्यान में रखा है, जो कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में सत्ता संघर्ष से जुड़ी हुई हैं. चाहे वह सत्ता संघर्ष परिवार के बंटवारे या अन्य बातों को लेकर हो, चाहे वह ग्राम-प्रमुत्व का हो, चाहे सड़कों-गलियों-गलियारों का, स्कूलों-कालेजों का, कस्बों-शहरों का, राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय मसलों का हो. किसी भी तरह का मोह दुश्चिताओं और फरेबों की सृष्टि करता है, लेकिन सत्ता का मोह और लोभ दुश्चिताओं, द्वंद्वों और फरेबों को किस सीमा तक खींच ले जा सकता है, यह एक विचारणीय स्थिति और बात है. यही स्थिति और बात हमारे इस अंक का केंद्र रही है.

जब एकाधिकार की भावना टूटती है तो मोहग्रस्त व्यक्ति का संघर्ष बचे हुए को समेटने में लग जाता है. ये भी सत्ता संघर्ष का ही एक टुच्चा-सा रूपांतरण है. ये छोटे-बड़े तमाम संघर्ष किसी भी रचनाकार के लिए महत्वपूर्ण हो सकते हैं लेकिन सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण होती है सत्ता की दौड़ की दिशा. यदि यह अंक इस दिशा को रेखांकित कर सका तो मैं अपना और अपने साथियों का श्रम सार्थक समझूंगा.

इस अंक के संयोजन में रचनाओं के पूर्व प्रकाशित होने या अप्रकाशित होने की बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया. सिर्फ रचना की अर्थवत्ता और गुणवत्ता पर ध्यान दिया गया है. अर्थवती और गुणवती रचना कभी अपना महत्व नहीं खोती और न कभी पुरानी पड़ती है. किसी भी रचना का कालजयी होना उसकी अर्थवत्ता और गुणवत्ता पर ही निर्भर करता है. सार्वभौमिकता के चक्कर में हम किसी सत्य की तात्कालिकता और स्थानीयता को नकार नहीं सकते, क्योंकि किसी भी रचना का नकार या स्वीकार उसकी तात्कालिकता या स्थानीयता पर उतना निर्भर नहीं करता, जितना उस रचना की अपनी आंतरिक शक्ति पर.

रचना की शक्ति किसी भी भौतिक शक्ति से कम विनाशकारी या निर्माणकारी नहीं होती. इसीलिए हम आदिम साहित्य से आधुनिक साहित्य तक रचना की शक्ति को महत्व देते आये हैं. यह शक्ति भूचाल नहीं लाती, लेकिन भूचालों के सामने मजबूती से खड़े रहने का हौसला जरूर देती है. यह सही है कि मजबूत आधार और हौसला देने वाला साहित्य कम ही लिखा जाता है लेकिन जितना भी लिखा जाता है, वह अपने आप में विशिष्ट, महत्वपूर्ण और कालजयी होता है.

इस अंक के लिए रचनाओं के चुनाव का सिलसिला जब हम लोगों ने शुरू किया तो हमारे सामने अच्छी रचनाओं का, विशेष रूप से हिंदी की अच्छी रचनाओं का अभाव खड़ा हो गया. हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि राजनीतिक प्रतिबद्धता और राजनीतिक चेतना के सवाल उछालनेवाले हिंदी के कथाकार अधिकांशतः अच्छी राजनीतिक कहानियों की संरचना में कितने गरीब और अवश हैं. जिन लेखकों पर हमारा ध्यान केंद्रित हुआ उनके कहानी संग्रह हमें उपलब्ध नहीं हो पाये. इस अर्थ में हम भी लेखकों की तुलना में स्वयं को कम अवश नहीं पाते रहे. अपनी अवशताओं और सीमाओं में जितने भी सर्वोत्तम की तलाश हम कर सके, वह आपके सामने है. इन रचनाओं की गुणवत्ता और अर्थवत्ता को लेकर अलग-अलग व्यक्तियों के विचारों में भेद हो सकता है, लेकिन हमें विश्वास है कि उनकी महत्ता के संबंध में भेद नहीं होगा.

हमने अपने रजत जयंती वर्ष के प्रारंभ में ही कुछ नयी योजनाओं के संबंध में संकेत दिये थे. हम इस अंक से शरद जोशी का नया स्तंभ 'बतंगड़' शुरू कर रहे हैं. इस वर्ष के लिए हमारी कुछ और भी योजनाएं हैं, जिन्हें हम यथासमय घोषित कर देंगे. हमने पिछले अंक में सुधी पाठकों से बेबाक और तर्कपूर्ण प्रतिक्रिया भेजने का आग्रह किया था. हम उसी आग्रह को फिर से दोहरा रहे हैं और साथ ही यह अंक युवा चेतना और युवा शक्ति के नाम समर्पित कर रहे हैं.

सत्ता संघर्ष की दौड़ की दिशा और यह अंक

अ. भा. शुक्ल.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगला उपन्यास

मुख्यमंत्री

चाणक्य सेन

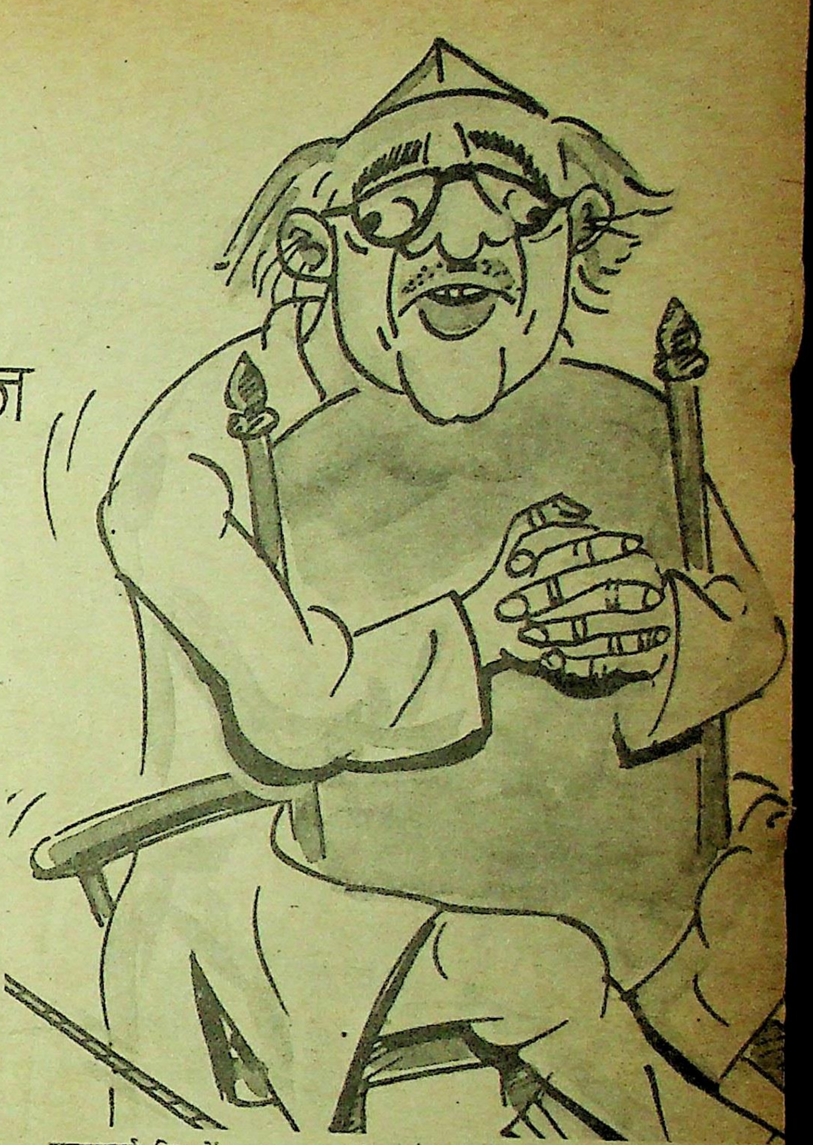

कैसा होता है सत्ता का मोह? कुर्सी के साथ-साथ आदमी की भूख किस तरह बढ़ती चली जाती है . . . ? मुख्यमंत्री जैसे महत्वपूर्ण पद पर काम कर रहे आदमी की जिंदगी में भी भय, आतंक और विषाद भरे क्षण कैसे नदी की लहरों की तरह आते-जाते रहते हैं. . . क्यों होता है ऐसा? क्या कुर्सी आदमी को भ्रष्ट बना देती है. . . . या आदमी कुर्सी पर बना रहने के लिए खुद भ्रष्ट हो जाता है? सरकार बनाने के लिए जिस तरह की राजनीति की जाती है, क्या वह आम आदमी की कल्पना में भी संभव है? प्रस्तुत है बंगला के बहुचर्चित उपन्यास 'मुख्यमंत्री' का सार-संक्षेप—

मैं जिस प्रांत की कहानी सुना रहा हूं उसका नाम है उदयाचल. इसी उदयाचल में मुख्यमंत्री के. डी. कौशल निष्कंटक शासन करते रहे हैं और छः साल बाद अब उनके मंत्रिमंडल का पतन हो गया.

कृष्ण द्वैपायन कौशल, केवल यही प्रांत नहीं, भारत के सभी प्रांतों के लोग उन्हें पहचानते हैं. लोग कहते हैं—के. डी. कौशल को कोई नहीं समझ सकता. कृष्ण द्वैपायन को अच्छी तरह मालूम है कि दूसरे लोग कितने भी उच्चाकांक्षी हों और हाईकमान के कितने भी पिछलग्गू हों, पर दल को एक साथ बांधकर शासन-सूत्र चलाने की शक्ति और किसी में नहीं है. यह सिर्फ एक आदमी कर सकता है, उसका नाम है—कृष्ण द्वैपायन कौशल. पर नहीं, एक और आदमी भी है. कृष्ण द्वैपायन उसके बारे में सोचते हैं.

काले रंग की गाड़ी फाटक के अंदर आयी. गाड़ी से जो सज्जन उतरे, उनका नाम है—सुदर्शन दुबे. दोनों जाकर पूर्णतः निजी मंत्रणा-कक्ष में बैठ गये.

"हरिशंकर त्रिपाठी गृह विभाग मांग रहे हैं." दुबेजी बोले.

"माधव पांडे?" कृष्ण द्वैपायन ने पूछा.

"वित्त मंत्रालय." दुबेजी बता रहे थे.

"महेंद्र बाजपेई?"

"वाणिज्य और उद्योग."

"प्रजापति खोवड़े?"

"वह जहां हैं, वहीं रहेंगे."

कृष्णा द्वैपायन उठकर खड़े हो गये, "और आप?"

"आप और मैं मिलकर यह घोषणा करेंगे कि प्रांतीय शासन के महत्त्वपूर्ण विषयों पर मुख्यमंत्री अब से प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष से भी सलाह लिया करेंगे."

"यानी आप मुझे परिचालित करेंगे!"

"मेरे प्रस्ताव पर विचार कीजिएगा. आज शाम को या कल सवेरे आपके फोन का इंतजार करूंगा." सुदर्शन दुबे उठ खड़े हुए.

कृष्ण द्वैपायन के पांच लड़के और तीन लड़कियां हैं. बेटियों की शादी हो गयी है. लड़कों में से चार पिता के साथ रहते हैं. बड़ा बेटा मातृका प्रसाद लॉ-कालेज में अध्यापक है. दूसरा लड़का शीतल-प्रसाद कपड़े के व्यापार में व्यस्त है. चौथा लड़का सूर्य प्रसाद राजनीति में है और विधान सभा का सदस्य है. पांचवां लड़का चंद्र प्रसाद कुछ करता-धरता नहीं. तीसरा लड़का समाजवादी दल में है उसका कहना है कि कांग्रेस लक्ष्यच्युत हो गयी है. सो, बगावत के कसूर में उसे निर्वासित कर दिया गया है.

सवेरे नाश्ते के समय कृष्ण द्वैपायन ने लड़कों से उनकी स्थिति जानने की कोशिश की. . . ताकि कल अगर वे मुख्यमंत्री न रहें तो क्या वे सब अपने पैरों पर खड़े रहेंगे. फिर सूर्य प्रसाद से विशेष बातचीत हुई. कृष्ण द्वैपायन ने उससे हरिशंकर त्रिपाठी के यहां हुई गुप्त बैठक से संबंधित जानकारियां हासिल कराने के लिए कहा, "दो घंटे बाद माधव पांडे मेरे पास आयेंगे. . . उससे पहले मालूम हो जाना चाहिए."

सूर्य प्रसाद कुछ और पास आ गया तो कृष्ण द्वैपायन ने सुदर्शन दुबे की सहायता से निकलने वाले विरोधी जुलूस, अपने बागी बेटे दुर्गा प्रसाद और उसकी पत्नी की असहनीय गतिविधियां जानीं. फिर वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदेशात्मक स्वर में बोले, "सुनो, महंत गणेश के यहां जाओ, उनसे कहना दो बजे आकर मुझसे भेंट करें, और बताना कि परसों इस जुलूस के विरोध में हमारा जुलूस निकलेगा. . . सभा होगी. सारी जिम्मेदारी महंतजी को लेनी होगी." और अब वे चंद्र प्रसाद की ओर मुड़ गये, "पांडेजी को खबर कर देना कि कल सवेरे मुझसे जरूर मिलें."

दफ्तर पहुंचकर 'पीपुल' को देखा. 'पीपुल' के खास प्रतिनिधि ने उनके वक्तव्य को तोड़-मरोड़कर दो कालम का लेख बना लिया है. थोड़ा मुस्कराकर कृष्ण द्वैपायन ने दूसरा अखबार 'मार्निंग टाइम्स' उठा लिया. अपना ही अखबार है. रिपोर्टर से जन-साधारण की जबान में मुख्यमंत्री की खालिस स्तुति करायी गयी है. अब वे बहुत खुश हुए. साथ में छपा उनका चित्र पुलिस की लाठी झेलते हुए था. उन्हें याद आया, बहुत दिन पहले इसी हिंदुस्तान में सैकड़ों वर्षों से छाये अंधकार को छेदकर किस तरह उस प्रकाश किरण ने देश को अनोखे गौरव से उद्भासित कर दिया था. . . और वे भी इस प्रवाह में बह गये थे.

वकालत के बाद जिला परिषद् का अध्यक्ष बनना और फिर कुषाण पुर की सड़क समस्या. . . सत्ता-शक्ति के साथ जनता की मांग का संघर्ष और फिर किसान नेता बन जाना. . . इस सब में व्यस्त रहते कृष्ण द्वैपायन घर पर समय न दे पाते थे. पत्नी पद्मा देवी के साथ संघर्ष की सीमा भी बढ़ती जा रही थी. मोहन लाल प्रसंग पर भी पद्मावती द्वैपायन के खिलाफ थीं, पर द्वैपायन ने मोहन लाल को गांव की बाल विधवा के साथ प्रणय के अभियोग में ही नहीं, राजनीतिक अपराधी के रूप में भी फंसा दिया. विदा होते मोहन लाल को पद्मावती और शहर की बीस-पच्चीस महिलाओं ने चंदन लगाकर मालाएं पहनायीं, द्वैपायन गुस्से से तिलमिला उठे थे.

जो झूठा कलंक द्वैपायन ने मोहन लाल के सिर पर थोप दिया था, वही एक दिन उनके अपने जीवन में सच हो गया. उनके साथ कौशल्या का नाम लेकर एक आंधी उठने लगी थी. . . और यह बात द्वैपायन अच्छी तरह जान गये थे. अब वे कौशल्या कांड को छिपाने के लिए किसी बड़े प्रकाश पुंज की खोज में लग गये थे.

1931 के स्वाधीनता आंदोलन की बाढ़ कुषाण पुर तक क्या पहुंची, द्वैपायन को उचित अवसर मिल ही गया. जुलूस अदालत की ओर बढ़ रहा था. किसी वीर की तरह आगे-आगे चलते द्वैपायन ने सीधे पुलिस सुपरिंटेंडेंट के सामने जाकर कचहरी के अंदर जाने की अनुमति मांगी. मांग नामंजूर होते ही युवक द्वैपायन ने जनता को लेकर वहीं पर सभा की. पुलिस की लाठी से जनता को तितर-बितर कर दिया गया. द्वैपायन के बलिष्ट शरीर पर भी लाठी पड़ी थी. . . जाने किसने वह फोटो खींच लिया. बस, फिर क्या था, फोटो सभी अखबारों में छपा. द्वैपायन को छः महीने का सश्रम कारावास हो गया.

दफ्तर पहुंचकर द्वैपायन ने कुछ फोन किये. राजनीति का खेल ही कुछ ऐसा है, विश्वास और अविश्वास पनपते देर नहीं लगती. फिर द्वैपायन अच्छी तरह जानते थे कि माधव देशपांडे, सुदर्शन दुबे, अवस्थी, मुख्य सचिव श्रीवास्तव, दुर्गाप्रसाद. . . आदि का कहां और किस जगह इस्तेमाल करना है. वहीं किया श्री. दुर्गाभाई, जो कृष्ण द्वैपायन की जगह ले सकते थे, काफी विचलित रहे. सत्ता का मोह उन्हें उतना नहीं था, जितना अपनी इज्जत का था. सो, कृष्ण द्वैपायन से ही उन्होंने मुख्यमंत्री बने रहने का आग्रह किया. राजनीति के पहले पर्व में कृष्ण द्वैपायन उस दिन दुर्गा भाई से मंत्री पद स्वीकार करने का वचन भी लेते आये थे.

मराठों को मिलाये रखने की राजनीतिक निपुणता में सर्वाधिक सहायता कृष्ण द्वैपायन को मिली है—माधव देशपांडे से. महाराष्ट्रीय वर्ग में माधव देशपांडे के प्रतिद्वंद्वी हैं प्रजापति शेवड़े. प्रजापति की उम्र अभी कम है, पर छात्रों और मजदूरों में उनका प्रभाव है.

दुर्गाभाई देसाई को मुख्यमंत्री बनाने के प्रयास के पीछे माधव देशपांडे का ही हाथ था. मंत्रिमंडल बनाने के पहले चरण में ही कृष्ण द्वैपायन ने कई बार माधव देशपांडे को चौंका दिया था. जिस तरह से उन्होंने दुर्गाभाई को अपने साथ लिया था. . उससे उनके बड़े-बड़े विरोधी भी हक्का-बक्का रह गये. सुना कि न तो कृष्ण द्वैपायन की सूची में उनका नाम है, न ही दुर्गाभाई का. . यही नहीं कृष्ण द्वैपायन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सूची में एक मराठा नेता का नाम है, शंकरराव पाटिल. माधव देशपांडे को एक बात और मालूम हुई कि कृष्ण द्वैपायन की सूची में प्रजापति शेवड़े भी मौजूद हैं.

मंदिर में कृष्ण द्वैपायन का छोटा लड़का चंद्र प्रसाद क्या मिला, माधव देशपांडे ने घर लौटकर कृष्ण द्वैपायन को फोन किया. रात को मुलाकात भी हुई. अब वे मंत्रिमंडल में सिंचाई तथा वित्तमंत्री बने. उन्हें खुश करने के लिए द्वैपायन ने शेवड़े को उपमंत्री पद पर उतार दिया. माधव देशपांडे की भर्ती पर दुर्गाभाई ने आपत्ति प्रकट भी की तो कृष्ण द्वैपायन ने उन्हें समझाया, "दुर्गाभाईजी, राजनीति की सबसे बड़ी प्रेरणा स्वार्थ और सुविधा है. आदर्श की बात उसके बाद आती है. आदर्श को लेकर जितना झगड़ा है, उससे ज्यादा झगड़ा है रास्ते को लेकर... दांव-पेंच और कूटनीति को लेकर.... महाभारत के उद्योग पर्व को याद कीजिए... सिनिक हुए बिना राजनीति करना संभव नहीं है." चार साल तक मंत्रिमंडल अच्छा चलता रहा. पांचवें साल से टूटन शुरू हो गयी. पहला संघर्ष प्रदेश कांग्रेस के नेतृत्व को लेकर हुआ. मंत्रिमंडल बनाते समय कृष्ण द्वैपायन स्वयं प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष थे. सुदर्शन सचिव थे. साल भर भी नहीं बीता होगा कि सुदर्शन ने प्रस्ताव रखा कि प्रदेश कांग्रेस और मंत्रिमंडल, दोनों का नेतृत्व एक ही आदमी के हाथों में रहना गैरमुनासिब है.

सुदर्शन दुबे का प्रस्ताव युक्ति संगत था. आखिरकार कृष्ण द्वैपायन की जगह सुदर्शन दुबे प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष चुन लिये गये.

मंत्रिमंडल के चौथे साल में कृष्ण द्वैपायन को सुदर्शन दुबे से बदला लेने का एक मौका मिल गया. गुप्तचर से सूचना मिली कि दुबे किसी खूबसूरत महिला पर आसक्त हो गये हैं. महिला सरोजनी सहाय है... ट्रेड यूनियन में काम करती है. जांच के बाद पता लगा कि दुबे ही नहीं, हरिशंकर त्रिपाठी भी फंसे हैं जाल में.

उधर सुदर्शन दुबे के दांव-पेंच शुरू हो चुके थे कृष्ण द्वैपायन के विरुद्ध. मंत्रिमंडल का पांचवां साल संकटों से घिरा हुआ था. विधान सभा में बताया गया था कि आठ हजार नलकूप लगाये गये हैं, जबकि 'भारत टाइम्स' में एकाएक खबर छपी कि चार हजार से ज्यादा नलकूप नहीं लगे हैं. उनमें भी केवल दो हजार तीस चालू हैं.

"हम जानते हैं, सरकारी दावा झूठा है!" एक विरोधी नेता ने कहा. मंत्रिमंडल में तहलका मच गया. दुर्गा भाई ने भी जानना चाहा कि काम सचमुच हुआ भी है या नहीं? माधव देशपांडे ने सारा दोष कर्मचारियों पर मढ़ दिया, दुर्गा भाई का कहना था कि सारा का सारा मंत्रिमंडल त्यागपत्र दे दे और कृष्ण द्वैपायन इतनी बड़ी गलती करते हुए सत्ता सुदर्शन के हाथों सौंप देने में बिल्कुल रुचि नहीं ले रहे थे.

उधर दुर्गाभाई को पता लगा कि 'सुखन लाल कॉटन मिल्स' के खिलाफ कार्रवाई इसलिए नहीं की जा रही है, क्योंकि मुख्यमंत्री की बेटा शीतला प्रसाद कृषाणपुर में 'सुखन लाल कॉटन मिल्स' की सोल एजेंसी लेना चाहता है.

कृष्ण द्वैपायन से संबंध ठंडा पड़ने के बाद पद्मा देवी ने घर-गृहस्थी से करीब-करीब हाथ खींच ही लिया था, पर कृष्ण द्वैपायन की एक-एक हरकत पर उनकी नजर गयी थी. फिर एक दिन अपनी

दुर्गाभाई की आंखों में झांकते हुए पद्मा देवी ने कहा.

"मेरे सहारे? .... कौशलजी के बाद मुख्यमंत्री कौन बनेगा?"

"आप में हिम्मत होगी तो आप बनेंगे...."

इस नाटकीय घटना के पांच दिन बाद दुर्गाभाई ने कृष्ण द्वैपायन कौशल को एक चिठ्ठी भेजी— "अगले हफ्ते विधान सभा के कांग्रेस दल की बैठक होगी. आप तो जानते ही हैं कि इस बैठक में बहस का एकमात्र विषय वर्तमान मंत्रिमंडल का परिवर्तन ही है. मैं बड़े खेद के साथ आपको सूचित कर रहा हूं... कि इस प्रस्ताव के विरुद्ध जाना मेरे लिए संभव न होगा. मेरी शुभकामनाएं."

गुप्त मतदान हुआ. कृष्ण द्वैपायन केवल पांच मतों से हार गये. सुदर्शन दुबे चाहते थे कि उसी समय नये नेता का भी चुनाव हो, पर कृष्ण द्वैपायन का कहना था कि नये नेता का चुनाव चार दिन के लिए स्थगित रहे. सुदर्शन दुबे ने दृढ़ता से आपत्ति की. महेंद्र बाजपेई, माधव देशपांडे और हरिशंकर त्रिपाठी ने उनका समर्थन किया. अध्यक्ष ने दुर्गाभाई की ओर देखा और बोले, "मैं मुख्यमंत्री के प्रस्ताव का समर्थन करता हूं."

चवालीस मतों से कृष्ण द्वैपायन का प्रस्ताव पास हो गया.

कृष्ण द्वैपायन ने माधव देशपांडे को बड़े सम्मान के साथ अपने निजी कमरे में बिठाया. फिर सहज भाव से सुदर्शन दुबे को लेकर उन्होंने माधव देशपांडे की आंखें खोल दीं. करीब आकर बोले, "अब यह सब मुझे अच्छा नहीं लग रहा है माधवभाई, देश स्वतंत्र हुआ. शासन का बोझ विदेशियों के हाथ से एकाएक हमारे कंधों पर आ गया था. नयी जिम्मेदारियां, नये कर्तव्यों को उठा लेने का साहस उन दिनों था भी और इसमें खुशी हुई थी. उन दिनों मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि इस नयी जिम्मेदारी के पीछे इतना बड़ा अंतर्विरोध छिपा है. नहीं सोचा था कि स्वतंत्रता के बाद इतनी जल्दी हम सत्ता के लिए इतने गंदे आपसी कलह में उलझ जायेंगे! अब मेरी सब साध पूरी हो गयी है माधव भाई... दुर्गाभाई को राजी कर सको तो यह जिम्मेदारी उन्हें दे दूंगा और अगर वह राजी न हुए तो सुदर्शन दुबे को सही... जरा देख लें कांटों की सेज किसे कहते हैं!"

"कौशलजी, एक बात कहना चाहता हूं," माधव देशपांडे बोले.

"कहिए!"

"आप ऐसा न सोचें कि मैं आपके खिलाफ चला गया हूं."

"आप आज मुख्यमंत्री के रूप में मुझे नहीं चाहते... पर आप मेरे खिलाफ क्यों चले जायेंगे भला! ऐसा तो मैं कभी नहीं सोचता माधव भाई! मैं जानता हूं कि कृष्ण द्वैपायन के साथ आपका कोई विरोध नहीं है... कैबिनेट मीटिंग का समय हो गया, आप अब कैबिनेट रूम में जाकर बैठिए!"

पिता की कुर्सी हिलते देख चारों भाई परेशान हैं... चंद्र प्रसाद के साथ तो कृष्ण द्वैपायन की खासी बातचीत भी हुई. इस बातचीत में चंद्र प्रसाद ने दुर्गाभाई की पत्नी की वह इच्छा भी बतायी,

बूढ़ी नौकरानी के माध्यम से उन्होंने दुर्गाभाई के पास खबर भिजवायी, "समय निकाल सकें तो शाम को चार बजे पद्मा देवी से भेंट कर लें."

दुर्गाभाई पद्मा देवी के अंतःपुर में पहुंचे.

"कौशलजी की पराजय केवल आपके सहारे हो सकती है!"

जिसके हिसाब से दुर्गाभाई को अब मुख्यमंत्री बन जाना चाहिए था. बातचीत के बीच में ही चंद्र प्रसाद ने कृष्ण द्वैपायन के कानों में यह बात भी उतार दी कि उनका बेटा सूर्य प्रसाद कांग्रेस का अन्यतम तरुण नेता है... और कांग्रेस का एम. एल. ए. होने के नाते उदयाचल का एक विशिष्ट व्यक्ति भी है. वह उनका विश्वासपात्र बने तो अच्छा ही होगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिशंकर त्रिपाठी के राजनीतिक जीवन का इतिहास विचित्र है. सन् 1930 के सत्याग्रह-आंदोलन के समय कपड़े की मिलों में आंदोलन हुआ. मजदूरों के सरदार हरिशंकर त्रिपाठी मजदूरों के नेता बन गये. फिर आसानी से वे सरदार पटेल की निगाह में भी चढ़ गये. उदयाचल के एक मंझोले जमींदार अयोध्याप्रसाद मिश्र के साथ हरिशंकर का परिचय हुआ. अयोध्याप्रसाद की तीसरी बेटी विमला देवी के साथ हरिशंकर की शादी हो गयी. शादी करने में हरिशंकर को कोई दुविधा भी नहीं थी. . .क्योंकि शादी के जरिये वे सामाजिक प्रतिष्ठा भर चाहते थे.

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब उदयाचल में कांग्रेसी राज आया तो शुरू-शुरू में हरिशंकर की कोई खास भूमिका नहीं थी, पर अगस्त आंदोलन के दौरान उदयाचल में जो कुछ हुआ, उसका श्रेय हरिशंकर को ही जाता है. रतनपुर की दोनों मिलों में हड़ताल हुई थी. . . खास कांग्रेसी ढंग से हरिशंकर जेल भी गये थे.

कृष्ण द्वैपायन का मंत्रिमंडल बनने ही वाला था कि हरिशंकर का उसमें आना बहुत जरूरी हो गया. उन दिनों हरिशंकर एक गड़बड़ मामले में फंस गये थे. इस मामले में एक खूबसूरत मुसलमान युवती थी. 'यूनियन जैक' उतरकर तिरंगा फहराने के उत्सव के करीब एक हफ्ता पहले ही हरिशंकर ने मंत्रिमंडल में शामिल होने का निर्णय ले लिया. ऐसा होने से भारत की पराधीनता के साथ-साथ उनका अपना कलंक भी अंधेरे में छिप जायेगा.

केवल दुर्गाभाई ने एक बार आपत्ति की, पर कृष्ण द्वैपायन ने हंसकर कहा था, "त्रिपाठीजी को मैं खूब जानता हूं. . . आप जो कह रहे हैं, वह सच है. . . फिर भी उन्हें मंत्रिमंडल में लेना ही पड़ेगा."

सचमुच वे श्रम मंत्री बन गये. . .पर एक कसक मन में रह गयी कि उद्योगों के साथ-साथ अगर खानों की भी जिम्मेवारी मिल जाती तो. . . पर कृष्ण द्वैपायन भी पूरे घाघ थे. नहीं दी, सो नहीं ही दी.

मंत्रिमंडल के तीसरे साल में एक दुर्घटना ऐसी हुई कि त्रिपाठी के साथ कृष्ण द्वैपायन की राजनीतिक शक्ति का पहला टकराव हो ही गया. पाकिस्तान में सांप्रदायिक दंगों के प्रतिक्रियास्वरूप हिंदुस्तान में भी कई जगह आग भड़क उठी. उदयाचल में जो कुछ हुआ, उस कांड के पीछे त्रिपाठी की निजी सेना का हाथ बताया गया.

कृष्ण द्वैपायन ने पूछताछ की तो हरिशंकर त्रिपाठी तुनक गये, "तो इसमें मैं क्या कर सकता हूं?"

"आप यह हंगामा बंद करा सकते हैं!" द्वैपायन दृढ़ थे.

"कैसे?"

"अपने अनुचरों के सहारे."

और सचमुच, हरिशंकर के इशारे पर दंगा बंद हो गया. तीन महीने बाद ही जब मंत्रिमंडल के बुजुर्ग सदस्य श्रीराम चौहान की मृत्यु हो गयी तो फेरबदल के वक्त कृष्ण द्वैपायन ने हरिशंकर त्रिपाठी को उद्योग मंत्री बना दिया.

हरिशंकर त्रिपाठी के उद्योगमंत्री बनने के थोड़े दिनों बाद ही कृष्ण द्वैपायन ने उनके पर काट दिये. श्रम मंत्रालय कृष्ण द्वैपायन ने अपने एक चहेते को थमा दिया. यह सज्जन निरंजन सिंह थे. फिर मुख्यमंत्री के कहने पर कांग्रेस की नयी नीतियों के हिसाब से हरिशंकर त्रिपाठी को प्रदेश मजदूर संघ के अध्यक्ष पद से भी इस्तीफा देना पड़ा, क्योंकि अब मंत्रियों में से कोई भी संगठन क्षेत्र में नेतागीरी नहीं कर सकता था.

रतनपुर में कपड़े की मिलों में हड़ताल क्या हुई, निरंजन सिंह की कार्यशैली के आगे मजदूरों में हरिशंकर का सम्मान बहुत गिर गया. बस, यही हरिशंकर के राजनीतिक जीवन में मजदूर नेता की भूमिका का पटाक्षेप था. इस नाटक के साल भर बाद ही राजनीतिक रंगमंच पर सरोजनी सहाय का आविर्भाव हुआ. मजदूर नेतृत्व पर सरोजनी सहाय ने अपना सिक्का ही बिठा लिया.

हरिशंकर त्रिपाठी और सुदर्शन दुबे ने मिलकर कृष्ण द्वैपायन के फिर से नेतापद की उम्मीदवारी पर विद्रोह किया था. सुदर्शन दुबे खुद मुख्यमंत्री बनने के इच्छुक थे, पर उन्होंने त्रिपाठी से कहा था कि मुख्यमंत्री बनने की ज्यादा योग्यता आप में है.

कृष्ण द्वैपायन जब अपने खास दफ्तर में चंद्र प्रसाद से बातचीत कर रहे थे, तब दोपहर के खाने के समय हरिशंकर त्रिपाठी के यहां भी द्वैपायन के खिलाफ एक चौकड़ी जमी थी—हरिशंकर, सुदर्शन दुबे, महेंद्र बाजपेई, प्रजापति शेवड़े आदि. चिंता यही थी कि कृष्ण द्वैपायन को किस तरह कमजोर किया जाये. बीच में माधव देशपांडे भी जा पहुंचे थे.

पद्मादेवी से कृष्ण द्वैपायन का शारीरिक संपर्क सालों पहले खत्म हो चुका है और आत्मिक संपर्क हो नहीं पाया.

चंद्र प्रसाद को लिये कृष्ण द्वैपायन दफ्तर से बाहर निकले तो अवस्थी ने तुरंत चौकड़ी की मीटिंग की सूचना दे डाली.

अब कृष्ण द्वैपायन ने चंद्र प्रसाद से पूछा, "तुम और बसंत अगर राजी हो तो मैं दुर्गाभाई से बात करूं!"

"आप खुद?" चंद्र प्रसाद का चौंकना स्वाभाविक था.

अब कृष्ण द्वैपायन पद्मा देवी के साथ भोजन कर रहे थे. बातचीत शुरू हुई तो पद्मा देवी ने सीधे-सीधे कह दिया, "अब तुम यह गद्दी छोड़ दो. जिन हथियारों से तुम जीतोगे. . . वे ही, तुम्हें एकदम नीचे ले जायेंगे."

खाना खत्म हो गया और कृष्ण द्वैपायन पानी पीकर सीधे बैठ गये, "मैं भी यह सब न सोचता होऊं, ऐसा नहीं है, पर अब कोई चारा नहीं रह गया है. . . हमने देश को चलाने की जिम्मेदारी ली है. जो मेरे नेतृत्व को तोड़ना चाहते हैं. . . उन्हें तोड़े बिना मुझे संतोष न होगा." पद्मा देवी देर तक चुप रहीं और फिर सूचित किया, "कल भोर मैं काशी जा रही हूं."

मंत्री बने पूरे पांच साल हो गये. आज एकदम नया संकट आ खड़ा हुआ है. दुर्गाभाई जानते हैं कि चाहें तो वे उदयाचल के मुख्यमंत्री बन सकते हैं. कांग्रेसी राज को वे ही संकट से बचा सकते हैं. उनके लिए तो कृष्ण द्वैपायन भी अपना ताज उतार देने को तैयार हैं. फिर भी वे कुछ निर्णय नहीं ले पा रहे हैं. आज सवेरे इसी बात को लेकर तो मनोरमा से झगड़ा हो गया था.

रात को सोने से पहले बसंत उन्हें एक गिलास दूध पिला जाती है. दुर्गाभाई ने बसंत के चेहरे पर खुशी का प्रकाश देखा. वह बसंत का भय, आशा और आशंका कुछ भी नहीं ताड़ पाये. उन्हें नहीं मालूम था कि बसंत ने कौशल परिवार के साथ अनुराग का एक पुल बांध रखा है. अगर द्वैपायन और उनमें प्रतिद्वंद्विता हो गयी तो यह पुल टूटकर ही रहेगा.

सवेरे नाश्ते के समय पत्नी ने कोंचा तो दुर्गा भाई के मुंह से निकल

व्यंग्यचित्र : चंचल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही गया, "मुख्यमंत्री कोई भी बने, मैं नहीं बनने जा रहा हूं."

"तुम क्यों नहीं बनोगे? प्रांत के लोग तुम्हें चाहते हैं . . . इतने लोगों की मांग की उपेक्षा करने का तुम्हें क्या हक है."

दुर्गाभाई कड़वा मन लेकर दफ्तर चले गये. औरतों के मन में जब उच्चाकांक्षा की आग भड़क उठती है तो शायद सर्वनाश दूर नहीं रहता.

दफ्तर में सुदर्शन दुबे और फिर हरिशंकर त्रिपाठी के फोन आये. दोनों का आग्रह यही था कि वे उदयाचल का नेतृत्व अपने हाथ में ले लें. त्रिपाठी ने सरोजनी सहाय से मिलने की बात चलायी तो वे 'शाम को चार बजे भेज दीजिए' कहकर खामोश हो गये.

दुर्गाभाई की धारणा बन चुकी है कि हिंदुस्तान में असली कमी चरित्र की है. वे देर तक इसी पर सोचते रहे.

चंद्र प्रसाद आया तो पता लगा कि कृष्ण द्वैपायन की पत्नी ने उनसे त्यागपत्र देने का अनुरोध किया था. और इसके लिए द्वैपायन तैयार नहीं हैं. पद्मा देवी ने चंद्र प्रसाद के हाथों एक पत्र दुर्गाभाई के लिए भिजवाया था कि "मैं कल काशी जा रही हूं. मैं उन्हें ईश्वर के सहारे छोड़ रही हूं. और कुछ आपके भी. . . . "

सूर्य प्रसाद के मन में भी राजनीति में जमने की धूनी रमने लगी थी, पर सब कुछ अपने बल पर करना चाहता था. इस पर विचार-विमर्श करने के लिए वह सरित सागर से मिलने भी गया. सरित सागर ने भी उसे नेतृत्व जुटाने की सलाह दी. उधर कृष्ण द्वैपायन ने सरित सागर से मंत्रिमंडल में शामिल होने की हामी भरवा ली. सरित सागर का मन कहीं और ही भाग जाने को आकुल था.

कृष्ण द्वैपायन दफ्तर में आकर कुछ देर पद्मा देवी के काशी-प्रवास पर विचार करते रहे. फिर दुर्गाभाई को फोन मिलाया, "नमस्ते दुर्गाभाईजी! आपका शरीर ठीक है न!"

"शरीर तो, जितना हो सकता है, उससे कहीं अधिक कर रहा है."

"आप पर मुझे पूरा विश्वास है. आप मुख्यमंत्री बनने को तैयार हों तो मैं हटने को तैयार हूं."

"मेरे मनोभाव को आप अच्छी तरह जानते हैं. मुझे मुख्यमंत्री बनने का लोभ नहीं है. ईश्वर आपकी सहायता करे कौशलजी, इससे और ज्यादा मैं कह नहीं सकता."

टेलीफोन रखकर देखा कि अवस्थी एक कोने में बैठा है. अवस्थी ने एक सील बंद लिफाफा थमा दिया. दुर्गा प्रसाद के आने की खबर मिली तो उसे ऊपर भेज देने को कहा.

अवस्थी नीचे गया और कृष्ण द्वैपायन ने दुर्गाभाई को फोन मिलाया. "अभी-अभी मुझे एक अनोखी रिपोर्ट मिली है. सुदर्शन दुबे समझौते के लिए तैयार हैं. आप और मैं सहमत होकर नया मंत्रिमंडल बनायेंगे, अभी कुछ सोचा नहीं. आप सलाह दीजिए!"

"सुदर्शन दुबे की असली चाल को समझना पड़ेगा."

बातचीत खत्म होने से पहले ही दुर्गा प्रसाद कमरे के भीतर था. एकाएक गंभीर होकर कृष्ण द्वैपायन ने कहा, "कुछ दिनों से तुम्हारी बहुत याद आ रही थी. मेरे बेटे हो, इसलिए नहीं, बल्कि उदयाचल की कांग्रेस में तुम्हारा स्थान बहुत ऊंचा हो सकता था, इसलिए."

"पिताजी, मैं आपका आदर करता हूं, पर मैंने अपना रास्ता चुन लिया है."

"मुझे पता चला है कि तुमसे सुदर्शन दुबे मिला था. मेरे खिलाफ तुमसे मदद मांग रहा था."

"यह तो स्वाभाविक है."

कृष्ण द्वैपायन ने एक बार उसके चेहरे की ओर देखा और सिर पर हाथ रखते हुए बोले, "अपने रास्ते पर आगे बढ़ने में मत डरना... मेरे किसी काम का मतलब न समझ पाओ, तब भी मुझ पर विश्वास रखना."

दुर्गा प्रसाद सीधा उतरकर फाटक पर पहुंचा ही था कि डिप्टी कमिश्नर के आदेश पर उसे गिरफ्तार कर लिया गया.

दुर्गाभाई को इसकी सूचना मिली तो वे विस्मित रह गये, "एक ही कारण हो सकता है, 'दुर्गा प्रसाद जरूर पिता के विरोधियों का साथ दे रहे होंगे!' उन्होंने सोचा और उनके मन में कृष्ण द्वैपायन के प्रति श्रद्धा कुछ और बढ़ गयी.

चंद्र प्रसाद के साथ संवाद हुआ तो वे बसंत प्रसंग को ठीक तरह से समझ सके. चंद्र प्रसाद से धैर्य बनाये रखने की कहकर वे चुप हो गये.

कृष्ण द्वैपायन के विशेष अनुरोध पर रतनपुर के आकाशवाणी केंद्र से यह समाचार भी रिले कर दिया गया कि मुख्यमंत्री भवन के फाटक पर ही दुर्गा प्रसाद गिरफ्तार कर लिये गये हैं. 'मॉनिंग टाइम्स' का एक विशेष परिशिष्ट भी जल्द ही छपकर बाजार में आ गया. सुभाष चट्टोपाध्याय ने मन ही मन कहा कि द्वैपायन घाघ राजनीतिज्ञ हैं.

'भारत टाइम्स' के संपादक गोपाल कृष्णन को करीब आधा घंटा इंतजार कराने के बाद द्वैपायन ने इंटरव्यू दिया, पूरी सूझ-बूझ और समझदारी के साथ. खास बात तो यह थी कि उन्हें अपने मुख्यमंत्री बने रहने की पूरी आशा थी. दुबे को लेकर कोई विवादास्पद कमेंट उन्होंने नहीं किया. . . और दुर्गा प्रसाद की गिरफ्तारी पर 'उदयाचल की शांति और व्यवस्था की निरापदता को बनाये रखना' ही कारण बताया.

गोपाल कृष्णन के जाते ही अवस्थी को आदेश मिला कि कल सबेरे 'भारत टाइम्स' हर कांग्रेसी एम. एल. ए. के पास पहुंच जाना चाहिए.

इसके बाद कृष्ण द्वैपायन ने बालकृष्ण शुक्ल, हरिसाधन हिंगले और तुलसीदास गौतम से आत्मीय बातचीत करते हुए यकीन दिलाया कि वे मुख्यमंत्री जैसे पद पर होते हुए भी उन लोगों के जीवन में कितनी दिलचस्पी लेते रहते हैं, लक्ष्मनपुर किसान सभा के अध्यक्ष रसूल मुहम्मद भी थे. . . वे तो अभिभूत ही हो गये.

दुर्गाभाई बसंत और चंद्र प्रसाद को लेकर विचार करते रहे और आखिरकार उन्होंने यही सोचा कि चंद्र प्रसाद ही बसंत के योग्य वर है. साथ ही उन्हें लगा कि शिकायत करने वाले चाहे जो कहें, पर कृष्ण द्वैपायन के विरुद्ध उनका कोई अभियोग नहीं है. . . पर मनोरमा इस विवाह को आसानी से स्वीकृति दे देगी, ऐसा नहीं लगता. हो सकता है उनके पुनः मुख्यमंत्री बन जाने से इस वैवाहिक संबंध को स्वीकृति दे ही दें!

अब वे सरोजनी सहाय से बात कर रहे थे, "आपके साथ मैं सहमत नहीं हूं. . .फिर भी कहिए, मैं सुन रहा हूं."

सरोजनी सहाय बोल रही थीं, "कृष्ण द्वैपायन से हमें कई शिकायतें हैं. व्यक्तिगत रूप से वे बहुत दंभी हैं और अपनी शक्ति को बहुत ज्यादा समझते हैं. विधान सभा और दल की बैठक में उन्होंने अशोक आप्टे को कई बार अपमानित किया है. इस संकट में हम उनके साथ समझौता करने को तैयार नहीं हैं. वह जमींदार और पूंजीपतियों के मित्र हैं."

"तो आपकी राय में सुदर्शन दुबे या हरिशंकर त्रिपाठी वर्त्तमान मुख्यमंत्री से अधिक योग्य हैं?"

"माफ कीजिएगा, उदयाचल में सिर्फ एक के अलावा सभी नेता प्रयास से या जबर्दस्ती बनाये हुए हैं और वह एक नेता आप ही हैं."

दुर्गाभाई ने प्रतिवाद करना चाहा, पर आवाज नहीं निकली.

सरोजनी सहाय कह रही थीं, "अगर कृष्ण द्वैपायन को हटाया न गया तो यही जहर एक दिन कांग्रेस को ले डूबेगा."

बात आगे बढ़ती, इससे पहले ही कृष्ण द्वैपायन का फोन आ पहुंचा कि चंद्र प्रसाद जल्द ही सिविल सर्जन को लेकर पहुंच रहा है. और यह भी कि उन्हें मालूम है, इस वक्त दुर्गाभाई की बातचीत किससे हो रही है.

सरोजनी चली गयी.

सरोजनी ने किस तरह रतनपुर आकर अपनी जगह बना ली, कोई नहीं जानता, पर यह सभी जानते हैं कि उन्हें रतनपुर लाने का श्रेय हरिशंकर त्रिपाठी को है. कृष्ण द्वैपायन को थोड़े ही दिनों में सरोजनी सहाय के बारे में काफी कुछ मालूम हो गया. वे जान गये थे कि अहमदाबाद की मिल के एक मामूली कर्मचारी स्यानेश्वर सहाय की तीसरी बेटी है सरोजनी. कॉलेज में पढ़ाई करते-करते ही उसने एक ईसाई लड़के से शादी कर ली थी. . . इसलिए उसे पिता के साथ संपर्क तोड़ना पड़ा. फिर दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साल बाद पति से भी संबंध विच्छेद हो गया. . . बंबई में हरिशंकर त्रिपाठी से मुलाकात क्या हुई, वह रतनपुर के स्कूल की संचालिका बनकर चली आयी. कृष्ण द्वैपायन को यह भी पता चला कि वामपंथी गुट की प्रेरणा भी सरोजनी सहाय ही है, पर जब इस गुट के साथ उन्हें सुदर्शन दुबे और हरिशंकर त्रिपाठी का संबंध पता लगा तो खतरा साफ नजर आने लगा. कृष्ण द्वैपायन को मालूम हुआ कि सुदर्शन दुबे सरोजनी सहाय को कांग्रेस कमेटी के उपाध्यक्ष पद पर चुने जाने की कोशिश में लगे हैं.

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद कांग्रेस अध्यक्ष रतनपुर आये तो दुर्गाभाई ने उनके सामने यह प्रसंग छेड़ा. सरोजनी सहाय की बदली कानपुर कर दी गयी.

. . .पर फिर वापस वह रतनपुर किस तरह आ गयी, यह कृष्ण द्वैपायन भी नहीं जानते. छः माह बाद उन्हें अखबारों के जरिये पता लगा कि सरोजिनी सहाय 'जिजर ग्रुप' के उद्योग से आयोजित सभा की अध्यक्ष होंगी. छः महीने बाद ही अखबारों में देखने में आया कि 'राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन' की प्रधान सचिव भी सरोजनी सहाय चुन ली गयी हैं.

कृष्ण द्वैपायन ने सुभाष चट्टोपाध्याय को बुलाया और अगले दिन के अखबार की राजनीतिक रिपोर्ट लिखवाते हुए कहा, "लिखो, उदयाचल मंत्रिमंडल का संकट दूर हो गया. आज शाम को संसदीय कांग्रेस दल की बैठक में कृष्ण द्वैपायन का फिर से चुना जाना निश्चित हो गया. आशा की जाती है कि यह चुनाव सर्वसम्मति से होगा. इसका श्रेय मुख्यमंत्री श्री कौशल और प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष श्री सुदर्शन दुबे की सम्मिलित चेष्टा को है. . . आशा की जा रही है कि आज की बैठक में श्री दुबे की ओर से मंत्री श्री प्रजापति शेवड़े नेता पद के लिए श्री कौशल का नाम प्रस्तावित और मंत्री निरंजन सिंह उनका समर्थन करेंगे. बैठक के अध्यक्ष वित्तमंत्री श्री दुर्गा भाई देसाई होंगे. . . नये मंत्रिमंडल का गठन करते समय श्री कृष्ण द्वैपायन कौशल विभिन्न मतों के प्रतिनिधियों का भी ध्यान रखेंगे. . . वर्तमान मंत्रिमंडल में पुराने नेताओं की संख्या बहुत अधिक है, इसलिए उनकी यही इच्छा है कि कांग्रेस के नवोदित नेताओं को मंत्रिमंडल में शामिल करके आगे बढ़ने का मौका दिया जाये. . . हमारे विशेष संवाददाता को मुख्यमंत्री ने एक विशेष भेंट में बताया कि कांग्रेस का एकमात्र आदर्श जन-सेवा है और एकमात्र लक्ष्य है जन-कल्याण. . ."

डिक्टेशन देने के बाद चट्टोपाध्याय से कृष्ण द्वैपायन ने कहा, "इसकी दो कापी टाइप कर लाओ. एक मेरे पास रहेगी, दूसरी तुम्हारे पास." खाना खत्म होने के थोड़ी ही देर बाद सरोजनी सहाय आकर कृष्ण द्वैपायन के सामने बैठ गयी. कृष्ण द्वैपायन को लगा, जैसे बहुत पहले उसे कहीं देखा है. घुमा-फिराकर बात मंत्रिमंडल में शामिल होने की ही हुई.

"मैं आपको स्थान दूंगा, पर हरिशंकर त्रिपाठी को नहीं."

"सुदर्शन दुबेजी को?" सरोजनी ने पूछा.

"आशा है, वह नये मंत्रिमंडल में रहेंगे."

"हमारे गुट के दूसरे आदमी को आप किस पद पर लेंगे?"

"संसदीय मामलों का सचिव."

"किसे लेंगे?"

"दूसरा व्यक्ति मैं चुनूंगा, पर लगेगा कि उसे आपने चुना है."

"ठीक है, ऐसा ही होगा. मैं तैयार हूं, आप नाम बताइए!"

"सूर्यप्रसाद कौशल."

सरोजनी के जाने के बाद कृष्ण द्वैपायन को लगा जैसे वह काफी हद तक कौशल्या की तरह ही है.

टेलीफोन की घंटी बजी तो उठाया, "कौशल, अच्छा दुबेजी. . . इतनी रात को कैसे?" फोन दुबेजी का था.

"सरोजनी से संदेश मिला, मैं अभी आपके पास आ सकता हूं?"

"जरूर, अगर आपको कष्ट न हो. . ."

"तब फिर आ रहा हूं. . . पंद्रह मिनट के भीतर पहुंच जाऊंगा."

आहट जब बिल्कुल पास आ गयी तो कृष्ण द्वैपायन उठे. दरवाजे तक आकर उन्होंने लगभग आलिंगन कर लिया, "आइए."

बातचीत के बीच शर्बत पीते-पीते एकाएक कृष्ण द्वैपायन ने घड़ी की ओर देखा और बोले, "मैं और आप अगर लड़ाई न करके एक-दूसरे के साथ मिलकर उदयाचल की सेवा करें तो अच्छा होगा?"

"जरूर!"

"कल के चुनाव में आप हार गये. मैं नहीं चाहता कि आप हार जायें. आप मंत्रिमंडल में आ जाइए. मैं आपका सहयोग चाहता हूं. अपनी मर्यादा मेरे हाथों में सौंप दीजिए!"

"यानी आपके सामने बिना शर्त आत्म-समर्पण करना पड़ेगा!"

"मेरे बाद आप ही मुख्यमंत्री बनेंगे, उसके लिए तैयार होइए."

"सरोजनी को मंत्रिमंडल में लेंगे क्या?"

"इच्छा है."

"वह तो सूर्य प्रसाद को भी मंत्रिमंडल में शामिल करना चाहती है!"

"मुझसे भी यही कह रही थी. . . और कुछ पूछना है दुबेजी?"

"नहीं."

"अब मुझे कुछ कहना है. सबेरे आपने मुझे एक वक्तव्य पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा था, अब रात को मैं आपसे किसी वक्तव्य पर हस्ताक्षर करने को कहूंगा."

"कैसा वक्तव्य?" डरी जबान में दुबेजी बोले.

"हम दोनों हस्ताक्षर करके पी. टी. आई. में दे देंगे. . . इसमें यही है कि उदयाचल के मंत्रिमंडल में जो मतभेद आ गया था, आप और मैंने मिलकर उसका समाधान कर लिया है. मुझे नेता मान लिया है."

सुदर्शन दुबे ने कुछ देर सोचा, फिर जेब से कलम निकालकर हस्ताक्षर कर दिया. फिर उसके नीचे कृष्ण द्वैपायन ने अपना हस्ताक्षर किया और अवस्थी को बुलाकर कहा, "ये लेकर तुरंत पी. टी. आई. चले जाओ. सुंदर राजन से कहना, कल सुबह मुझसे मिलेंगे."

अवस्थी कागज लेकर चला गया.

अवस्थी के लौटने से पहले ही सुदर्शन दुबे चले गये. द्वैपायन ने आकाश देखते-देखते ही दुबेजी की गाड़ी की आवाज सुनी थी.

"रात बहुत हो गयी. साढ़े बारह बज गये." अवस्थी ने निवेदन किया तो वे उठ गये. गुसलखाने तक पहुंचकर अवस्थी रुक गया. सामने ही कोई खड़ी थी. वह आगे बढ़ी. अवस्थी चला गया.

नहला-धुलाकर अब वह उनका माथा और कंधा दबा रही थी. वह अगाध शांत है. एक बात भी नहीं सुनती, एक बात भी नहीं समझती. जगमोहन अवस्थी की परित्यक्ता, गूंगी, सुंदरी बेटी.

"कल सबेरे रतनपुर के लोगों के आश्चर्य का पारावार नहीं रहेगा. लोगों ने सोचा था कि के. डी. कौशल का पतन हो गया, फिर से उसका उत्थान देखकर वे दंग रह जायेंगे. . . रमणी अच्छी है सरोजनी सहाय. बहुत हद तक कौशल्या जैसी दिखती है. मुख्यमंत्री की उपमंत्री बनने का आश्वासन पाकर खुश हो गयी है. . . सुदर्शन दुबे को तो मैं अपने साथ खींच सकता हूं. . . पर पुत्र दुर्गा प्रसाद मेरे काबू से बाहर है. तुम भी न जाने कैसी लास्यमयी हो उठी हो. तुम्हारी जबान में शब्द नहीं हैं, मन में कुछ है क्या?" उसके साथ की मधुर स्मृतियां भी कृष्ण द्वैपायन को याद हो आ रही थीं. फिर बोले, "तुम अच्छी लग रही हो, नरम-नरम; तुम्हारी शर्म मेरे मन को भा रही है. नींद से आंखें भारी हो रही हैं. . . मेरा नाम जानती हो?. . . कृष्ण द्वैपायन यानी वेदव्यास."

विचार फिर बह चले थे . . . .कल शाम को गांधी मैदान में जन-सभा होगी. कृष्ण द्वैपायन कौशल की विजय पताका फहरायेगी. सुदर्शन दुबे, दुर्गाभाई और सरोजनी सहाय भाषण देंगे.

जगमोहन अवस्थी दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया. देखा, निपट गूंगी-बहरी सुंदरी रोते हुए कृष्ण द्वैपायन के चेहरे की ओर देख रही है. उसे जरूरी नहीं लगता कि अपनी अस्तव्यस्त वेष-भूषा ठीक कर ले. ☐

संक्षिप्त रूपांतर : महेश दर्पण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी व्यंग्य

चमत्कार

वि. स. खांडेकर

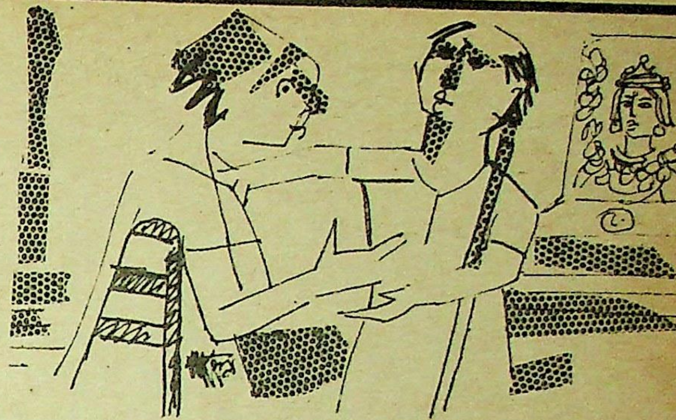

अगर भगवान भी भक्तों की राजनीति में आ फंसे? और भक्त भी कौन––एक अंधा, एक लंगड़ा! . . . तब क्या होगा . . . ? एक रोचक व्यंग्य–

बहुत ही भीड़-भड़क्केवाला रास्ता था वह! दिन-रात वहां लोगों की चहल-पहल रहा करती थी. पादचारियों के अलावा तांगे, कारें, ट्रक तथा अन्य वाहनों से भी वह रास्ता सदैव धड़कता रहता था.

उसी मार्ग पर बीच में एक पुल पड़ता था. पुल के पास ही प्रतिदिन एक लूला भीख मांगने बैठा करता था. राहगीरों से वह बार-बार अनुरोध करता, "अपाहिज को एक पैसा दे दो बाबू. . . ."

उसकी आवाज अनसुनी कर निकल जाते राहगीरों को वह बड़े ही अनमने भाव से देखा करता.

उससे कुछ ही दूरी पर एक सूरदास भी यही क्रम दुहराता और और कहता, "सूरदास को एक पैसा दे भगवान!" सूरदास पूरी कोशिश करता कि लूले से उसकी आवाज ऊंची हो. लूले के दिल में इससे काफी हलचल मच जाती! लूले को इस बात का कोई मलाल नहीं होता कि उसे दिन भर में एक पाई भी न मिली. लेकिन उसे तो चिंता यह थी कि कहीं अंधे को इकन्नी, दुअन्नी, चवन्नी न मिले.

फिर भी दोनों को पूरा एहसास था कि उनकी थाली खाली रहने से दोनों में से किसी का भी पेट नहीं भरने वाला. वे बैठे बैठे सोचते रहते कि 'हम तो बैठे रहते हैं और बैठे रहनेवालों की तकदीर भी सो जाती है. . . .'

एक दिन लूला सरकते-सरकते अंधे के पास जाने लगा तो अंधा भी उसकी आहट पाकर अपनी लकड़ी के सहारे लूले की ओर आगे बढ़ता गया. पुल पर बीच में ही दोनों की मुलाकात हो गयी.

काफी देर तक दोनों सुख-दुख की बातें करते रहे. लेकिन जब वे विदा हुए तो दोनों के चेहरे खिले हुए थे.

दूसरे दिन राहगीर बड़े आश्चर्य से देखते रहे. न वहां लूला था, न अंधा! लेकिन वहां की बजाय शहर के हर मोड़ पर और गली में वे दोनों अब लोगों को दिखाई पड़ने लगे. लूले के कंधे पर सवार अंधा पुकारता, "लूले को एक पैसा दे भगवान!" और अंधे का बोझ ढोते हुए भी लूला अर्ज करता, "सूरदास को एक पैसा दो बाबूजी. लाचार को एक . . . . ."

उन दोनों के परस्पर सहयोग से लोगों को आश्चर्य होता रहा. अब तक उनकी आवाज अनसुनी कर आगे निकल जाने वाले लोग भी अब उनकी थाली में पाई-दो पाई डालने लगे. इस प्रकार दिन भर में उन्हें चार-छह आने मिलने लगे.

दोनों को लगा कि भगवान उनसे प्रसन्न हो गया है. उन्होंने भगवान की एक तस्वीर खरीद ली और उसकी पूजा करने लगे.

एक त्यौहार के दिन तो छोटे सिक्कों को छोड़कर भी एक रुपये के लगभग उनकी कमाई हुई. और रुपल्ली का एक सिक्का भी. चांदी का रुपया.

किंतु रुपये का वह सिक्का ही झगड़े की जड़ बन गया. लूले की दलील यह थी कि– "अंधे को दिखाई तो पड़ता नहीं. होटल में अन्य पैसों के साथ ही वह रुपया भी दे डाले तो आश्चर्य नहीं . . . ."

अंधा यह सफाई देता कि– "रुपया मेरे पास ही रहना चाहिए. क्योंकि लूला दौड़ नहीं सकता; कोई मवाली झपट्टा मारकर रुपया उससे ले भागे तो . . . ."

उस रुपल्ली ने आग में घी का काम किया. देखते ही देखते दोनों में इतनी अनबन हुई कि मामला गाली-गलौज तक पहुंच गया.

"तेरे जैसे मोटे-तगड़े मुस्टंडे का बोझ ढोकर तो मेरे मुंह से झाग आने लगा था. . ."

"और तेरे जैसे गधे की पीठ पर सवार होकर मेरी पीठ अकड़ गयी है . . . . ."

जी भरकर कहा-सुनी होने के बाद दोनों के गले सूख गये तो अंत में भगवान की तसवीर के सामने सिक्का रखकर दोनों ने प्रार्थना की, "तू ही न्याय कर, भगवान!"

भगवान भी उनके झगड़े से असंतुष्ट थे! तसवीर के सामने रखा रुपया दलील दे रहा था, "मैं न तो लूले का हूं, न अंधे का, मैं दोनों का हूं! मुझे बचा लो भगवान . . . ."

भगवान भी चक्कर में पड़ गये कि मामला सुलझाएं तो कैसे! एकबारगी भगवान को लगा कि लूले को हाथ-पैर और अंधे को आंखें दे दी जायें तो झगड़ा खत्म हो जायेगा. फिर दोनों मेहनत और अमन-चैन से रहेंगे! भगवान ने सपने में लूले से अनुरोध किया, "मैं तुझे एक वर दूंगा, तू जो चाहे मांग ले." उन्हें यकीन था कि वह अपने लिये मजबूत पैरों की ही मांग करेगा. किंतु लूले ने कहा "भगवान, मेरी तो इच्छा यही है कि कोने में सो रहे अंधे को लूला कर दे . . . . ."

लेकिन भगवान इसके लिए तैयार नहीं हो रहे थे.

भगवान ने सपने में अंधे से भी ठीक वही अनुरोध किया, "मैं तुझे एक वर दूंगा, तू जो चाहे मांग ले." भगवान उसको दिव्य दृष्टि देने के लिए इच्छुक थे. अंधे ने भी वैसी ही इच्छा व्यक्त की, "लूले को अंधा बना दे भगवान . . . "

इस बीच रात हो गयी. सिक्का वहीं छोड़कर दोनों सोने के लिए चले गये. दूसरे दिन सवेरे जल्दी ही भगवान की तस्वीर के पास आकर रुपया टटोलने लगे. लेकिन वह किसी के भी हाथ न लगा. अंततः मायूस होकर दोनों ने एक साथ कहा, "बड़ा चमत्कार है भाई! भगवान भी रुपया चोर हो गया है. . . . ."

दूसरे ही क्षण उन्होंने भगवान की वह तसवीर चूर-चूर कर दी और दोनों अपनी-अपनी जगह जाकर पूर्ववत भीख मांगने लगे.

उस दिन से हमारी झोली सदैव फैली रहती है और हम बखुशी पाई-पैसा मांगते रहते हैं. . . □

● अनुवाद : प्रकाश भातंब्रेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंदन की एक रात

निर्मल वर्मा

काले आदमी . . . गोरे आदमी . . . गेहुंए आदमी . . . फर्क तो केवल चमड़ी के रंग का था, खून का रंग तो एक ही था. तो फिर क्यों आज पूरी दुनिया की राजनीति इन चमड़ी के रंगों को ही प्रमुख मानती आ रही है? मानवता के स्तर पर भी क्या रंगों का यह भेद कहीं आड़े आता है? यदि ऐसा होता तो लंदन की उस रात को गोरा विली, गेहुंआ कथा-नायक 'मैं' और काला जार्ज एक ही नियति को क्यों प्राप्त होते? क्यों वह रात उन तीनों के लिए एक समान कहर बनकर आती?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं दूसरी बार वहां गया था. पहली रात देर से पहुंचा था. जाने से पहले ही सारा काम बंट चुका था. मैं फिर भी अनिश्चत-सा गेट के बाहर खड़ा था. सोच रहा था, शायद आखिरी क्षण उन्हें किसी आदमी की जरूरत पड़ेगी और वे मुझे बुला लेंगे. देर तक घड़घड़ाती मशीनों के भीतर सोडे की बोतलों का स्वर सुनाई दे रहा था. हममें से जिन्हें काम मिल गया था, वे जल्दी-जल्दी अपने सूट उतारकर काम के कपड़े पहन रहे थे.

बाहर दालान में बोतलें थीं—फीकी चांदनी में चमकती हुई, एक के ऊपर दूसरी —सिलसिलेवार, फैक्टरी की दीवार से सटी हुई. दूर से देखने पर लगता था जैसे कांच के किसी लंबे टीले पर बहुत-सी बिल्लियां एक-दूसरे का गला पकड़े बैठी हों.

मैं खड़ा रहा. फिर कुछ देर बाद एक अंग्रेज मेरे पास आये, "तुम अभी तक खड़े हो?. . .मैंने कहा न, आज भी कुछ भी नहीं है. . ." उसने अपना हाथ मेरे कंधे पर रख दिया.

"नहीं, मैं सिर्फ देख रहा था . . .' मैंने धीरे-से उसका हाथ अपने कंधे से अलग कर दिया.

"कल पंद्रह मिनट पहले आ जाना. अगर कुछ लोग कल नहीं आये तो तुम्हें ले लिया जायेगा. गुड नाइट." और वह चला गया.

यह दूसरी रात थी. ट्यूब-स्टेशन की सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आया तो देखा, कल की चांदनी आज पूरी तरह निखरकर फैली है. दूर मिल की चिमनियों के बीच लंदन का धूमिल आकाश सिमट आया है.

मुझे दुबारा रास्ता टटोलना पड़ा. मैं उन सड़कों पर दुबारा चलने लगा, जिन पर कल चला था, जो अब परिचित थीं, किंतु चांदनी में अजीब-सी, अजानी दिखाई दे रही थीं.

किंतु नार्थ एक्टन से जरा आगे चलकर मेरे पांव खुद-ब-खुद ठिठक गये. सोचा, आज मैं जल्दी आ गया हूं और गेट पर मेरे अलावा कोई दूसरा नहीं होगा, किंतु मेरा अनुमान सही न था. वहां पहले से ही बीस-पच्चीस बेरोजगार युवकों की भीड़ जमा थी. अंग्रेज लड़के, कुछ छात्र, जो देखने में बर्मी जान पड़ते थे, दक्षिणी अफ्रीका और वेस्ट इंडीज के नीग्रो—सब अलग-अलग गुच्छों में खड़े थे. सबकी आंखें गेट पर टिकी थीं. कुछ के चेहरे जाने-पहचाने लगते थे. उन्हें शायद कल रात देखा था. उन सबकी आंखें मुझ पर उठ आयीं, खामोश और तनी हुई. मुझे लगा, जैसे उस खामोशी में एक अजीब-सा भय उभर आया है, मेरे प्रति उतना नहीं जितना उस अज्ञात नियति के प्रति, जिसका निर्णय अगले चंद लमहों में होनेवाला था.

मैं भी उनके संग एक कोने में खड़ा रहा—उनसे डरता हुआ, फिर भी उनसे बंधा हुआ.

पौने नौ के करीब मैनेजर हमारे पास आये. मुझे तनिक निराशा हुई. वह कलवाले सज्जन नहीं थे, जिन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रखा था. उनके हाथ में कागज का एक पुरजा था. हम सब उनके पास खिसक आये —चिड़ियाघर के उन मूक, निरीह जंतुओं की भांति, जो कुछ भी पाने के लालच से यंत्र-चलित गति से सींखचों के पास घिसटते आते हैं. एक क्षण के लिए उन्होंने हमें देखा. हमारे खुले, नंगे, भावहीन चेहरे उन्हें अजीब-से भयावह लगे होंगे, क्योंकि उन्होंने अपनी आंखें जल्दी ही कागज पर झुका लीं और तेजी से एक के बाद एक नाम पढ़ने लगे.

वे सब लोग छांट लिये गये, जिन्होंने पिछली रात काम किया था. उनके अलावा सिर्फ तीन और लड़कों को चुना गया—दो लावारिस-से दीखनेवाले अंग्रेज युवक और एक दक्षिणी अफ्रीका का विद्यार्थी, जो सबसे आगे खड़ा था और बार-बार झुककर मैनेजर के कानों में कुछ फुसफुसा देता था.

"आज इतना ही–" उन्होंने सहानुभूतिपूर्ण भाव से हमारी ओर देखा, "आप लोग कल आइए, शायद कुछ आदमियों की जरूरत पड़ेगी."

भीड़ में से तीन-चार युवकों ने आगे बढ़कर उनसे बहस करने की कोशिश की, किंतु उन्होंने बहुत असहाय भाव से अपने हाथ हिला दिये और मुस्कराती आंखों से हमारी ओर देखते हुए भीतर चले गये.

हमारी प्रतीक्षा का अंत आ पहुंचा है, इसे जानते हुए भी हममें से कोई उस पर विश्वास नहीं कर सका. मैनेजर के जाने के बाद भी हममें से कोई अपनी जगह से नहीं हिला. लगता था, जैसे पिछले तीन मिनटों में जो कुछ भी घटा-बढ़ा है, वह अभी अपूर्ण है, एक ऐसा अवास्तविक तथ्य, जिसका शायद हमसे कोई वास्ता नहीं. . .अभी कुछ ऐसा है, जो बाकी है, जो प्रतीक्षा के बाद भी अपने दरवाजे खुले रखता है. . .हममें से बहुत-से ऐसे थे जो ट्यूब में तीन या चार शिलिंग का टिकट लेकर लंदन के सुदूर कोनों से यहां आये थे. हम सबके हाथों में एक-एक थैला था, जिसमें हमने रात की ड्यूटी के कपड़े और खाने का सामान बांध रखा था. हममें से किसी के लिए भी यह विश्वास करना कठिन था कि हमें अगली ट्यूब से वापस लौट जाना होगा. पाइप से निकलता गुनगुना पानी, चांदनी में झिलमिलाते कीचड़ के गढ़े. . .यहां तक कि नाली में पड़ी एक खाली बोतल हमें काफी अप्रासंगिक और बेतुकी-से जान पड़े—हम शायद यह भी भूल गये कि हम यहां किसलिए आये थे. चंद लमहों पहले जो नौकरी न मिलने का दुःख था, अब वह सिर्फ एक बेडौल, विकृत बोझ-सा हमारी टांगों के इर्द-गिर्द लिपट गया था, जिसे हमें दुबारा घर तक घसीट ले जाना होगा.

उस क्षण भूख और निराशा के बावजूद हमारे मन में कहीं भी कोई खीझ या कटुता नहीं थी.

किंतु कुछ लमहों के लिए ही. सहसा वह मायावी क्षण टूट गया. हम फिर वापस अपने-अपने में लौट आये. एक लंबी, बोझिल-सी सांस उस अदृश्य, बेडौल भीड़ के ऊपर उठी और चंद अश्लील, अनर्गल गालियों में खो गयी. एक-दूसरे की देह की गंध—जिसे हम पास-पास खड़े सूंघ सकते थे, गालियों के बावजूद अपना सकते थे—अब अलग-अलग रास्तों पर छितराने लगी थी. केवल हम तीन व्यक्ति अब भी अहाते के भीतर अनिश्चित-सी मुद्रा में खड़े रहे. मेरे पीछे हल्की-सी

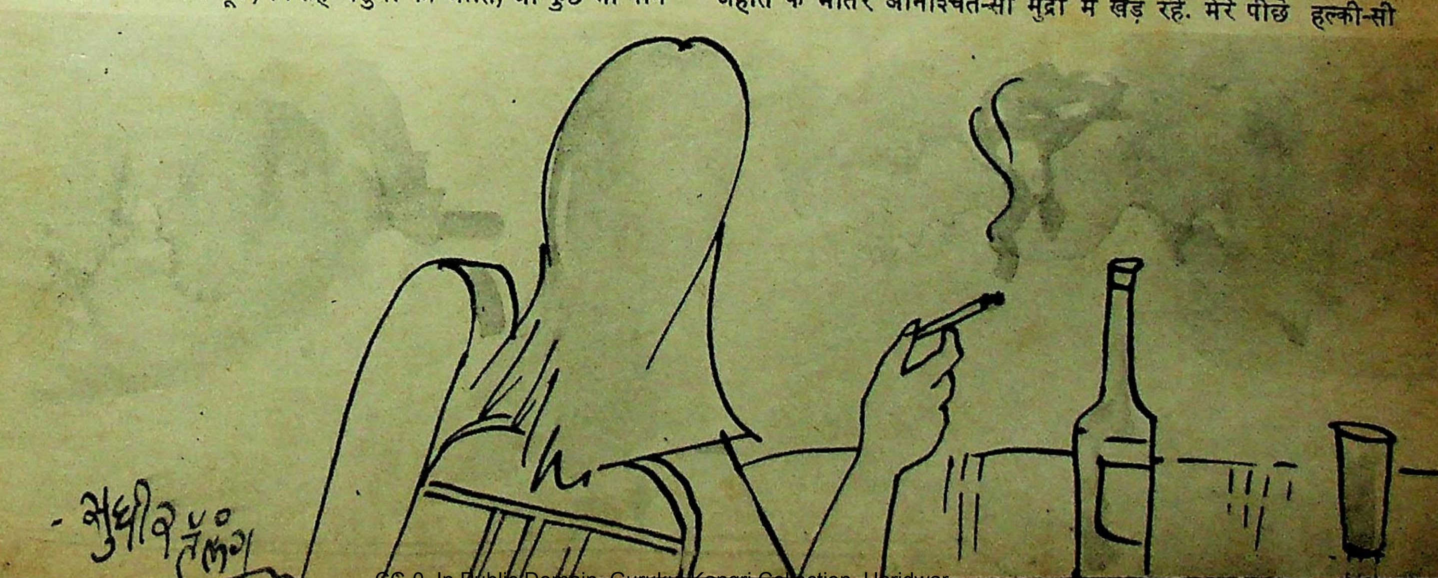

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरसराहट हुई.

"ब्लडी-बास्टर्ड!" पहले व्यक्ति ने कुछ दबे, कुछ भर्राये-से स्वर में कहा. वह आगे बढ़ गया. भयभीत, आशंकित आंखों से चारों ओर देखा और फिर बोतल की टोकरियों के ढेर से सोडे की एक बोतल निकालकर पीने लगा. दूसरी बोतल उसने तीसरे व्यक्ति के हाथ में जबरदस्ती पकड़ा दी, "पियो यार, उन सालों को कुछ भी पता नहीं चलेगा."

तीसरा व्यक्ति, जो कम उम्र का नीग्रो छात्र-सा दीखता था, बोतल लेने में झिझक रहा था, किंतु फिर न जाने क्या सोचकर उसने अपने सिर को हल्का-सा झटका दिया और एक दूध-पीते शिशु की तरह बोतल को दोनों हाथों से पकड़कर होंठों से लगा लिया. एक लंबा घूंट लेकर उसने नंगी बांह से अपना मुंह पोंछा और बोतल मेरे सामने कर दी.

"यह तीसरी बार है जब यहां मैं आया हूं. कल जिस बाबू ने काम देने का वायदा किया था, आज वह दिखाई नहीं दिया."

"कल भी ऐसा ही होगा. कोई नया बास्टर्ड आयेगा और उसे पता नहीं चलेगा कि हम आज रात आये थे."

"कल कौन आयेगा—मैं तो इस तरफ झाकूंगा भी नहीं. डैम दीज..."

पहले व्यक्ति ने अपने ओवरकोट के बटन खोल दिये. इतनी गरमी में ओवरकोट पहने था—इससे मुझे खास आश्चर्य नहीं हुआ. उसका व्यक्तित्व कुछ ऐसे ढंग से ओवरकोट से जुड़ा था कि एक दूसरे को अलग करना ही आश्चर्यजनक होता. वह एक लंबा हृष्ट-पुष्ट युवक था, छोटी-सी, 'गोरी' दाढ़ी थी, जिसके पीछे आंखें एक सूखी, तिक्त बौखलाहट में झपकती रहीं. बौखलाहट भी नहीं, एक अजीब-सा नर्वस तनाव जो अक्सर शिकार किये जाने वाले जानवरों में मिलता है. हालीवुड के विलेन-सा उसका डील-डौल अंधेरे में किसी भी अजनबी को काफी भयावह लग सकता था.

हम धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए नार्थ एक्टन के पुल पार आ गये थे. लंदन की डबल-डेकर बस हमारे पास से गुजर गयी. अगस्त महीने के पीले-करारे पत्तों का रेला देर तक बस के पीछे भागता रहा.

तीसरा व्यक्ति, नीग्रो युवक, अब भी काफी उदास था और चुपचाप सड़क पर आंखें झुकाये चल रहा था.

"लंदन में कब से हो?" दाढ़ीवाले युवक ने (बाद में उसने अपना नाम विली बताया था) नीग्रो के कंधे पर हाथ रखकर पूछा.

वह चुप रहा.

"कहां से आये हो?"

"दक्षिणी अफ्रीका से... यहां पढ़ता हूं."

वह शायद बात को यहीं खत्म करना चाहता था. उसने जेब से सिगरेट का पैकेट निकाला और हम दोनों के आगे कर दिया. हमने धन्यवाद देकर आंखें मोड़ लीं. यह उसकी आखिरी सिगरेट थी और अपनी भूखी लालसा के बावजूद हममें इतनी शिष्टता बाकी थी कि उसे लेने से इंकार कर दें. किंतु यह शिष्टाचार अधिक देर तक न चल सका. कुछ देर बाद हम तीनों उस सिगरेट को बारी-बारी से पी रहे थे.

सामने लंदन की रात थी—बोझिल, गंदली, शांत. वह शहर का एक उजाड़ कोना था और सड़क खाली थी—खाली, लेकिन वीरान नहीं. पत्तों की सरसराहट, पुराने मकानों की बासी गंध—लगता था, जैसे बीच में हम अनेक निष्प्राण चीजों को ठेलते हुए आगे बढ़ रहे हैं—हालांकि बीच में हवा और लैंप-पोस्ट के दायरों के अलावा कुछ भी न था...

"तुम कहां जाओगे?"

"वारेन स्ट्रीट." उसने कहा, "पिछले दो दिनों से आ रहा हूं. अब तक पांच पॉप्स आने-जाने में खर्च हो गये. इतने पैसों से तो मैं टेनिस खेलने जा सकता था."

उस समय टेनिस खेलने की चर्चा काफी विचित्र जान पड़ी—उसके चेहरे से भ्रम होता था कि पिछले कई दिनों से उसे भर-पेट खाने को भी नहीं मिला है."

"मेरे दोस्त को काम मिल गया है!" नीग्रो छात्र ने तनिक उत्साह-पूर्वक कहा, "हम दोनों साथ रहते हैं. कल शायद वह मुझे कुछ शिलिंग उधार दे सकेगा."

"डैम हिम—इफ ही डजंट!" विली ने अजीब खीझे स्वर में कहा, "मैं तो कल किसी हालत में नहीं आऊंगा. . .प्लीज कम टुमारो!" मैनेजर की नकल उतारते हुए उसने मुंह सिकोड़ लिया, "टुमारो बि डैम्ड! तुम कब आओगे?" उसने पहली बार मेरी ओर उन्मुख होकर पूछा.

"शायद आऊंगा—" मैंने जान-बूझकर उसे कुछ अधिक खिझाने के लिए कहा. उसके इस समय 'कल' की बात करने से मुझे काफी अफसोस हुआ था.

"साले कितना देते हैं?"

"ढाई पाउंड." नीग्रो ने कहा.

"हर सुबह?"

"हां, हर सुबह. आधी रात के समय चाय और सैंडविचेज भी देते हैं. . .मेरा दोस्त बता रहा था. कल मैं और वह संग आये थे, उसे ले लिया गया, मैं रह गया."

"नीग्रो था?"

"नहीं, वह बर्मी है."

"और आप?" विली ने संदिग्ध भाव से मेरी ओर देखा, जैसे अपनी नजरों से मुझे तौल रहा हो, "आप क्या जापानी हैं?"

मैंने सिर हिला दिया. इतनी-सी बात पर उसका प्रतिवाद करना मुझे निरर्थक जान पड़ा.

कुछ देर तक हम चुपचाप ट्यूब-स्टेशन की ओर चलते रहे. जब कभी गरम हवा का झोंका आता, हम सिहर जाते. तब हमारी भूख अपने सब पैबंद तोड़कर उघड़ जाती. लगता, जैसे हवा लैंप-पोस्ट के पीले, मद्धिम आलोक को तोड़ जाती हो, तोड़कर अपने संग वहा ले जाती हो. . .

"गरमी काफी है. . .पिछले पांच साल से ऐसी गरमी नहीं देखी."

"पिछले पांच साल से लंदन में हो?"

"शायद ज्यादा. . .तब से कई काम कर चुका हूं. अब ज्यादा नहीं रहूंगा."

"क्या वापस घर जाओगे?" विली ने पूछा.

"घर?" नीग्रो छात्र, जार्ज के स्वर में एक सूना-सा खोखला-पन उभर आया, मानो 'घर' शब्द बहुत विचित्र हो, जैसे उसने पहली बार उसे सुना हो, "मैं चाहता था, यहीं रहूं. लेकिन वे हमें चाहते नहीं."

"वे. . .आह!" विली ने कहा.

वे. . .अनायास हमने चारों ओर देखा. कोई भी न था, हालांकि वे हर जगह हर समय हमारे संग थे. हमारे बाहर उतने ही, जितने भीतर. . .

"तुम यहीं थे, जब जार्रिंग हिल में फसाद हुआ?" विली के सफेद दांत चमक उठे.

"नहीं, तब मैं लंदन नहीं आया था."

"मैं वहीं रहता हूं. तीन दिन तक एक अंग्रेज लड़की के घर छिपा रहा. जब वे एक-एक नीग्रो को चुनकर लिंच कर रहे थे, मैं उस सफेद 'ह्वोर' के संग सोता रहा. उसने सोचा था, मैं उसे चाहता हूं. . .लेकिन मैंने उसे उसके बाद देखा तक नहीं. उसे नहीं मालूम, मैं बदला ले रहा था. . . उसकी सफेद चमड़ी के संग. . .और उसने हाथ से इशारा किया—अश्लील उतना नहीं जितना जुगुप्सामय.

दूर कारखानों के धुएं के परे ट्यूब-स्टेशन की बत्तियां चमक रही थीं. लगता था, जैसे धरती का कोई टुकड़ा अचानक बीच में से फट गया हो और उसके नीचे से हीरों की चमचमाती झालर ऊपर निकल आयी हो.

"तुम यहां पढ़ते हो?"

"हां. . .लेकिन गरमियों की छुट्टियों में काम करता हूं. पहले डांस के लिए जाता था." जार्ज ने कहा. उसका स्वर भी काफी उदास था, जैसे काम न मिलने का दुःख अभी पूरी तरह न मिटा हो.

"कांटीनेंट में क्यों नहीं जाते, यार?" विली ने कहा, "मेरा एक दोस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मनी गया है, वहां नौकरियों की कमी नहीं. सुना है, वहां लड़कियां काले रंग के पीछे भागती हैं—सिर्फ इशारा करने की देर है."

"शायद पिछली लड़ाई की वजह से." जार्ज ने कहा, "कुछ साल पहले मेरे फ़ादर वहां गये थे. कहते थे, कहीं आदमी नजर नहीं आता. हर तरफ औरतें. . ."

"ओह, हाउ आई विश फार एनदर वार. . .एनदर एंड देन एनदर!" विली ने कहा.

जार्ज ने आश्चर्य से विली की ओर देखा, फिर मेरी ओर. वह शायद कुछ कहना चाहता था, किंतु फिर कुछ सोचकर उसने सिर्फ सिर हिला दिया. कहा कुछ भी नहीं.

और शायद यह ठीक भी था. लंदन की उस खामोश गरम रात में 'वार' बहुत दूर की चीज लगती थी—अर्थहीन और हास्यास्पद. उस पर बहस करना कोई भी मानी नहीं रखता था. हुआ भी यही. हम बहुत जल्दी विली की बात को भूल गये. उसके बाद हम देर तक अलग-अलग देशों की लड़कियों के बारे में बातें करते रहे. लगता था, जैसे पुरानी भूख के भीतर से एकाएक नयी भूख जाग गयी हो.

"मैं स्पेन जाना चाहता था. उधर की लड़कियां . . .आह. पैशन! लेकिन सालों से बीसा नहीं दिया. अपने देश की कुंवारियों की वर्जिनिटी का उन्हें बहुत खयाल है!"

स्पेन. . .किसी ने जैसे कुछ बहुत पुरानी राख कुरेद दी हो.

थे जो मैंने ट्यूब के लिए बचा रखे थे. जार्ज का हाल ज्यादा बेहतर नहीं दिखाई दिया. विली के प्रस्ताव को सुना-अनसुना किये वह अंधेरे में सीटी बजा रहा था.

विली शायद समझ गया. जार्ज के कंधे पर हाथ रखकर उसने कहा, "फिक्र की कोई बात नहीं. यहां के लोग मुझे जानते हैं. . .एक जमाने में मैं अक्सर आता था.

जार्ज का उपेक्षा-भाव अचानक मिट गया, एक अजीब बचकानी-सी खुशी चेहरे पर फैल गयी.

"मैं थोड़ी-सी जिन लूंगा. आशा है, कल मेरा मित्र कुछ शिलिंग उधार दे सकेगा."

हमारे पांव पब की ओर मुड़ गये.

दरवाजा खोलते ही आवाजों के एक गरम उफनते रेले ने हमें अपने में समेट-लिया—धुएं में गुंथती, उलझती, एक-दूसरी को छीलती आवाजें जो कहीं निस्तार न पाकर गंदले, उबलते पानी की तरह एक ही गड्ढे में इकट्ठी होती गयी थीं. रोशनी थी, मद्धिम, धुएं के घेरे में घिरी, जिसमें किसी एक चेहरे को पहचानना, उसे दूसरे से अलग कर पाना असंभव था.

नीचे बेसमेंट था, कुछ सीढ़ियां उतरकर. कभी-कभार नाचते हुए जोड़ों की छायाएं जीने पर गिर जाती थीं. कभी बेडौल और लंबी, कभी इतनी छोटी कि लगता, जैसे पारदर्शी जल-तले मछलियां ऊपर उठती

हममें से कुछ ऐसे थे जो ट्यूब में तीन या चार शिलिंग का टिकट लेकर लंदन के सुदूर कोनों से यहां आये थे. हम सबके हाथों में एक-एक थैला था जिसमें हमने रात की ड्यूटी के कपड़े और खाने का सामान बांध रखा था. हम में से किसी के लिए भी यह विश्वास करना कठिन था कि हमें अगली ट्यूब से वापस लौट जाना होगा. . . . चंद लमहों पहले जो नौकरी न मिलने का दुख था, अब वह सिर्फ एक बेडौल, विकृत बोझ-सा हमारी टांगों के इर्द-गिर्द लिपट गया था, जिसे हमें दुबारा घर तक घसीट ले जाना होगा.

"तुम गये हो?"

"मैं जाना चाहता था—बहुत पहले."

"सिविल वार में?"

"तब मैं बहुत छोटा था."

"सिविल वार हमारे देश में शायद. . ." और जार्ज अचानक चुप हो गया था. उसके घुंघराले बालों पर पसीने की बूंदें चमक रही थीं.

"आई डोंट लाइक सिविल वार." विली ने कहा.

हमारी बात फिर वहीं आ अटकी थी—बैगाटोल की उस गोली की तरह जो चारों ओर घूम-फिरकर एक ही छेद में आ फंसती थी. हमारा उससे कोई वास्ता नहीं था. वह लंदन की बहुत खामोश और गरम रात थी और वार बहुत दूर की चीज लगती थी. . .

रास्ते के दायीं ओर एक पुरानी टेवर्न से हंसी और संगीत का मिला-जुला स्वर बह रहा था. टेवर्न के पीछे गली—गली के अंधेरे कोने में दो छात्राएं—एक दूसरे से लिपटी हुई—बार-बार हिल उठती थीं. ऊपर उठी हुई स्कर्ट के नीचे एक सुडौल टांग रह-रहकर कांप जाती थी और फिर टटोलते हुए विह्वल हाथों के नीचे भिंच जाती थी.

"चलो, कुछ बियर पी जाये. बिना कुछ खाये-पिये मैं ठीक से सो नहीं सकता." विली ने कहा.

मुझे हल्की-सी दुविधा हुई. मेरी जेब में आखिरी दो शिलिंग पड़े

हों और दूसरे क्षण ही डूब जाती हों.

हम कोने की मेज के इर्द-गिर्द बैठ गये. विली कुछ देर के बाद बियर की तीन बोतलें और गिलास ले आया. हम पीने लगे.

"पहले मैं यहां काम करता था. कुछ महीने रहा, फिर मन ऊब गया. इस पब का मालिक इटालियन है. बुरा नहीं है, लेकिन डरता बहुत है. इस तरफ आया तो तुमसे मिलवाऊंगा." विली ने कहा.

"काफी टिप मिलता होगा?"

"अंग्रेज ज्यादा नहीं देते. बहुत हुआ तो एक छहपेनी. लेकिन कांटीनेंट से जो टूरिस्ट आते हैं, उनकी बात दूसरी है. दिल उनका खुला होता है, लेकिन बेवकूफ वे भी होते हैं."

"मुझे अब कोई भी काम मिल जाये मैं कर लूंगा." जार्ज ने कहा.

मीतर की गांठों बीच बियर ने रास्ता बनाया है—जहां पहले बंद सींकचा था, अब वहां फड़फड़ाते पंख हैं—उड़ने को आतुर.

"मैं अब ज्यादा दिन यहां नहीं रहूंगा." विली ने कहा, "मेरा दोस्त जर्मनी में है. हो सका, तो एक दिन वहां जाऊंगा." विली ने गिलास खतम कर दिया. फिर उसे मेज पर उल्टा कर दिया, एक भी बूंद नहीं गिरी. बियर का झाग दाढ़ी पर छितर आया था, जैसे रेत के कण हों—नीले और सफेद.

"मैं जर्मनों को नहीं सहन कर सकता." जार्ज ने फिर कहा.

"देयर इज, रियल लाइफ. हर कोने पर जवान लड़कियां खड़ी रहती हैं." विली ने कहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं जर्मनों को सहन नहीं कर सकता." जार्ज ने कहा.

मैं हंसने लगा.

जार्ज ने मेरी ओर देखा. उसकी आंखें बहुत निरीह-सी हो आयी थीं.

"सब लोग एक जैसे ही हैं." विली ने कहा.

"लेकिन वे लोग. . ." जार्ज ने इशारा किया—बाहर की ओर, दरवाजे के बाहर, जहां महज अंधेरा था.

"वे लोग भी. . .तुम सिर्फ डरते हो." विली ने कहा.

एक पल के लिए जार्ज का हाथ जो गिलास पर टिका था, सिहर गया.

"यू आर ए राटर—" जार्ज ने कहा.

उसके स्वर में कुछ रहा होगा कि विली का चेहरा अचानक पीला पड़ गया.

"देखो, मैं काफी बुरा आदमी हूं. इस लफ्ज को दुबारा मुंह पर कभी न लाना."

"ओह! . . .सचमुच?" जार्ज की आवाज कांप रही थी, जैसे वह हवा में लटकी रस्सी पर चल रही हो और नीचे गड्ढा हो, जहां वह कभी भी फिसल सकती है, "यस, यू आर ए राटर."

विली गिलास लेकर अचानक खड़ा हो गया, जैसे यह कोई खेल हो, और नियम के अनुसार उसे खड़ा होना ही हो.

"एक बार फिर कहो. .." उसका गिलास जार्ज के सिर के पास सरक आया था. कांच पर चिपकी बियर का फेन रोशनी में चमक रहा था.

जार्ज की अधमुंदी आंखें उस पर उठ आयीं, "यह, यू आर ए राटर, ऑल राइट."

गिलास-तले उसका सिर हिल रहा था. आदमी का सिर पूरे धड़ से अलग होकर केवल अपनी धुरी पर इस तरह कांप सकता है, यह मुझे काफी हास्यास्पद-सा लगा.

विली ने गहरे विस्मय से उसकी ओर देखा और फिर हंसने लगा, "शायद तुम ठीक हो. . .मे बि, आई एम—" वह फिर अपनी कुरसी पर बैठ गया.

हमने ज्यादा नहीं पी थी—सिर्फ किसी ने हमारे इर्द-गिर्द एक भयावह-सा फंदा डाल दिया, जिसे छूते ही खून बहने लगता था.

कुछ देर बाद पब का मालिक हमारी मेज के पास आकर खड़ा हो गया. गोल-मटोल देह, किंतु काफी सुगठित, रंग काफी पीला. छोटे-से माथे पर तेल से भीगे, स्याह घुंघराले बाल झुक आये थे.

"अभी है. . .बाद में," विली ने कहा. उसके स्वर में पहले-सा तनाव नहीं था, हालांकि तिरस्कार का स्पर्श हमसे छिपा नहीं रह सका, "ये मेरे दोस्त हैं."

इटालियन ने हमारी ओर देखा, किंतु उसकी आंखों में कोई उत्सुकता नहीं लगी.

"विली हमारे यहां काम करता था." उसने गर्व से विली की ओर देखा, मानो उसे हम लोग विली की तुलना में काफी तुच्छ जान पड़ रहे थे.

"काफी देर से हो?" उसने पूछा.

जार्ज चुप रहा (ईश्वर भला करे, उसका सिर अब नहीं कांप रहा था) मैं खाली गिलास से खेल रहा था, मेरे हाथ रुक गये.

"सिर्फ कुछ दिन—" मैंने कहा.

"इजंटिट फाइन?"

"इट इज फाइन." मैंने कहा.

"कोई काम?" वह मेरी कमीज के कालर को देख रहा था. न जाने कितने देशों की धूल उस पर जमा थी.

"अभी कुछ नहीं. . ."

"विली को काम मिल सकता है, लेकिन यह एक जगह टिकता नहीं." उसने विली की ओर देखा, कुछ प्यार से, कुछ उलाहने से.

"मैं तुम्हारे यहां रह सकता था. सिर्फ तुम. . ." विली ने कहा.

इटालियन का चेहरा अचानक क्षुब्ध-सा हो आया, "तुम जानते हो . . ." उसने कहा.

"आह—"विली ने कहा, "तुम सब लोग एक-जैसे ही हो."

"बहुत गर्मी है." जार्ज ने कहा.

"तुम जानते हो. . ." इटालियन ने बहुत आग्रह से कहा.

"न. . .मैं कुछ भी नहीं जानता. मैं सिर्फ इतना जानता हूं कि मैं अभी डांस करूंगा." विली ने अपनी कुरसी पीछे ठेल दी और उठ खड़ा हुआ.

किंतु इटालियन ने झपटकर उसे कंधों से पकड़ लिया. उसकी आंखें सहसा आक्रांत-सी हो उठीं. विली की लंबी, पतली देह के सम्मुख उसका ठिगना, गेंदनुमा शरीर एकाएक बहुत दयनीय सा दीखने लगा.

"विली! . . .तुम जानते हो, यहां पर. . ."

विली ने धक्का देकर झटके से अपना कंधा छुड़ा लिया. उसकी पीठ हमारी मेज के सहारे टिक गयी. जार्ज ने बियर की बोतल को हाथों से पकड़ लिया. एक क्षण के लिए लगा, जैसे हम किसी जहाज के डगमगाते डेक पर बैठे हों.

आरकेस्ट्रा शुरू होते ही पब के अलग-अलग कानों के लड़के-लड़कियों के जोड़े बेसमेंट की सीढ़ियों पर उतरने लगे थे.

इटालियन ने पीछे मुड़कर भी नहीं देखा. वह सिर्फ हवा में ताक रहा था.

विली कहीं भी नहीं था.

उसका खाली गिलास हमारी मेज पर रखा था. जार्ज ने बोतल से हाथ उठा लिया. उसकी हथेली के पसीने की पूरी छाप कांच पर एक सफेद धब्बे की तरह अंकित हो गयी थी.

इटालियन ने हमारी ओर देखा. लगा, जैसे वह हमें पहचान न पा रहा हो. फिर अवश भाव से दोनों हाथ फैला दिये थे.

"पागल है. . .है नहीं?"

हम चुप रहे, उस समय वहां कुछ था, जिनका हमसे कुछ संबंध नहीं था, जिसकी म्लान छाया चुपचाप हमारे बीच आ सिमटी थी. वह भारी थके कदमों से काउंटर की ओर मुड़ गया.

"बहुत गर्मी है." जार्ज ने कहा, "तुम्हारे पास कितने पैसे हैं?"

"क्यों?" मुझे अचानक खीझ-सी हो आयी. सब पर.

"डेढ़ शिलिंग मेरे पास है. इसमें लागर आ सकती है?" उसने पूछा.

मैं विली के खाली गिलास को देख रहा था. . .कहां हो सकता है?

मद्धिम रोशनी के नीचे जूतों और सैंडिलों की खटखटाहट, इर्द-गिर्द टूटती, बेशक्ल, आवाजों का सैलाब फैल गया था, जिसके एक छोर-पर हम थे—एक मेज, जार्ज, लागर के दो गिलास. सब-कुछ वैसा ही था, जैसा हमने पहले-पहल देखा था.

सिर्फ अब एक कुर्सी खाली थी.

"शायद वह नाराज था. . .मैं अपने को रोक नहीं सका." जार्ज ने कहा.

"तुमने उसे कुछ भी नहीं कहा?"

"मैं अपने को रोक नहीं सकता." उसने मेज पर पड़ा मेरा हाथ जोर से पकड़ लिया. मेरी उंगलियां उसकी हथेलियों-तले चिपचिपाने लगीं.

"तुम्हें नहीं मालूम. . .मुझे बॉक्सिंग का बहुत शौक है. . .जब मैं पहले-पहल लंदन आया था और बेकार नहीं था तो मैं हर रोज बॉक्सिंग के लिए जाता था. लेकिन मैं आज तक एक बार भी नहीं जीत सका हूं. सुनते हो, एक बार भी नहीं. . .मुझमें एक अजीब-सा तनाव फैलने लगा है. मैं प्रतीक्षा करता हूं, कुछ लहमों तक कि दूसरा आदमी मुझे हिट करे . . .और जब वह नहीं करता तो मेरा खून खौलने लगता है. मैं आनेवाले खतरे का मुंह नहीं जोह सकता. ठीक मौका आने से पहले ही मैं अंधाधुंध टूट पड़ता हूं. . .हालांकि मैं जानता हूं, यह गलत है कि लड़ना इस तरह नहीं होता. और इसीलिए मैं घर से भागकर यहां आ गया हूं. . .मैं अपने पिता की तरह प्रतीक्षा नहीं कर सकता."

"और वह. . .तुम्हारे पिता किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुझे नहीं मालूम. . .मुझे राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं है." उसका माथा लागर के गिलास के पीछे छिप गया.

मैंने अपना हाथ धीरे-से छुड़ा लिया. . .वह पसीने में भीगा था. मैं उसे अपने पास ले गया, जैसे वह कोई पालतू चीज हो—उंगलियों से गुंथा हुआ, एक सफेद मांस का लोथ, उसके ऊपर भूरे बाल, बहुत-से बाल, जो उसके स्पर्श से अभी तक दबे थे. और मैंने सोचा, हम सचमुच कितनी कम बार अपने हाथों को इस तरह देखते हैं, जैसे वे हैं, जैसे वे असल में हैं और तब भ्रम होता है कि जो भी चीज उनकी पकड़ में आयेगी वह हमारी नहीं हो सकती.

"जानते हो, मैंने विली को राटर क्यों कहा?"

"इट इज नथिंग." मैं उसके चेहरे को सीधी आंखों से नहीं देख पा रहा था.

"क्योंकि. . .असल में मैं खुद एक हूं. मैंने अभी तुमसे कहा था कि मैं अपने पिता की बहुत कद्र करता हूं (हालांकि यह उसने मुझे कभी नहीं कहा था), तुम उन्हें नहीं जानते. वह जीवित भी हैं या नहीं, मुझे नहीं मालूम. वे उनके पीछे थे."

"वे कौन?"

"वे. . ."एक बहुत ही ठंडा आतंक, सांप की कुंडली-सा उसकी आंखों में बैठ गया था.

"तुमने नहीं देखा." उसने मेरे हाथ को अपनी हथेलियों में बहुत ही सख्ती से जकड़ लिया. उसके काले चेहरे पर सिर्फ सफेद दांत नजर आ रहे थे—एक कान से दूसरे कान तक खिंचे हुए—और मैं समझ नहीं सका कि वह हंस रहा है या सिर्फ एक भूले क्षण में उसके दांत खुद-ब-खुद खुले रह गये हैं.

"मैं यहां सुरक्षित हूं. . .एंड फॉर दैट,, आई हेट हिम, आई हेट हिम लाइक हेल."

हम चुपचाप पीते रहे. मेरे आगे घड़ी की डायल थी, जिसे मैंने पहली बार देखा था. मैं सोचता हूं, मुझे एक सिगरेट पीनी चाहिए. . . मुझे लगता है, मैंने लंबी मुद्दत से सिगरेट नहीं पी.

"तुम क्या सोचते हो?" उसके स्वर में बच्चों का-सा आग्रह था.

"कुछ भी तो नहीं."

"यदि तुम मेरी जगह होते तो क्या करते?"

"तुम्हारी जगह पर?" मैं हंसने लगा. मुझे आज तक यह भी नहीं मालूम कि मुझे अपनी जगह पर क्या करना चाहिए.

"लेकिन तुमने अवश्य निर्णय कर लिया होगा. . .अपना देश छोड़ने से पहले?"

"शायद बचने के लिए."

"किससे बचने के लिए?"

"अपने देश के लोगों से. . .शायद और चीजों से भी, जो अब मुझे याद नहीं."

और तब उस क्षण मुझे लगा कि ज्यादा पीना शायद संभव नहीं होगा. सुबह से कुछ भी नहीं खाया था. खाली अंतड़ियों को लागर भिगो गयी थी. एक नीली-हरी-सी धुंध कहीं भीतर से रास्ता टटोलती हुई हर उस खिड़की के आगे जमा हो गयी थी, जहां से मैं बाहर देख सकता था. वहां घड़ी की डायल थी. . .बहुत सफेद. . .हवा में डोलते हुए एक बहुत पुराने मुरदे की मानिंद, जो न जाने कब से मेरे संग घिसट रहा था. . .

"तुम हंस क्यों रहे हो?"

मुझे यह जानकर काफी आश्चर्य हुआ कि मैं हंस रहा हूं और जब मैंने जान लिया कि मैं हंस रहा हूं, तो फिर अपने को रोकना बेमानी-सा लगा.

"क्या बात है?"

"कुछ नहीं, कुछ याद आ गया था." मैंने टहलते हुए कहा. याद मुझे कुछ भी नहीं आया था.

"क्या याद आ गया था?" वह मुझ पर झुक आया, जैसे अभी गले पर लटक जायेगा, "बताओ, क्या याद आ गया था?"

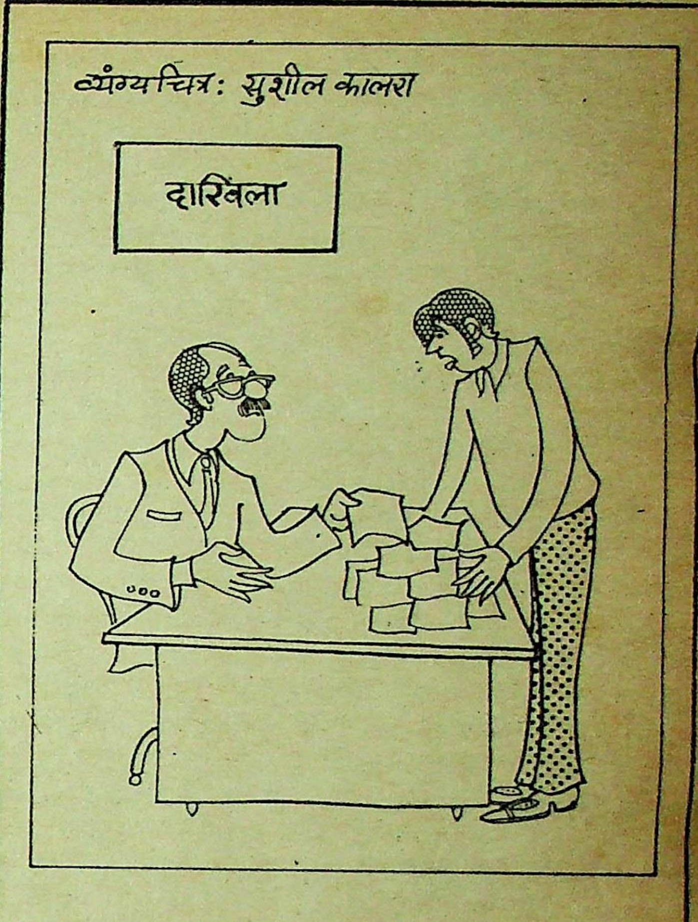

'ये रहीं सिफारिशी चिट्ठियां; सर्टीफिकेट तो मैं घर पर ही भूल आया हूं।'

"जानते हो. . .तीन दिन पहले मैं जेल जाने वाला था. मैं बाल-बाल बच गया."

असह्य दबाव-तले कोई भी चीज याद की जा सकती है. . .और मुझे सचमुच तीन दिन पहले की एक घटना याद हो आयी.

"हां, सचमुच मैं बाल-बाल बच गया." (मुझे इस तरह के मुहावरे बहुत पसंद हैं, और मैं उन्हें मौके-बेमौके दुहराता रहता हूं.)

"जानते हो, लंदन में मैं अपने एक दोस्त के घर ठहरा हूं. पिछले कुछ दिनों से उसकी गर्ल-फ्रेंड फिनलैंड से उसके संग रहने आयी थी. कमरा एक ही था, इसलिए मैं बाहर रहता था. मैं दिन-भर म्यूजियम की लाइब्रेरी में रहता और रात को सोने के लिए यूस्टेंड स्टेशन चला जाता था. हर रोज नियत समय पर मेरा मित्र मुझे कुछ शिलिंग दे जाता था. उस शाम किसी कारणवश वह मेरे पास नहीं आ सका. मेरे पास सिर्फ दस पेनी बचे थे. दिन-भर म्यूजियम में बैठे भूख का कुछ पता नहीं चला, लेकिन रात होते-होते मैं अपने को नहीं रोक सका. उस समय तक किंग्स क्रॉस के सस्ते रेस्तरां बंद हो चुके थे और बस में बैठकर शहर के 'सेंटर' में जाने की सामर्थ्य नहीं थी. मैं काफी देर तक वारेन स्ट्रीट स्टेशन के इर्द-गिर्द बदहवास-सा घूमता रहा. आखिर में एक ग्रीक रेस्तरां दिखाई दिया, जो ऊपर से काफी सस्ता दिखाई देता था. आलू के चिप्स और टोस्ट का आर्डर देकर मैं भीतर बैठ गया. तुम जानते हो ये चीजें सबसे सस्ती होती हैं—ज्यादा-से-ज्यादा आठ पेनी. मैं काफी निश्चिंत था. कुछ देर बाद अनायास मेरी निगाह सामने दीवार पर जा पड़ी प्राइस लिस्ट पर, जिसे शुरू में घबराहट के कारण मैं नहीं देख सका था. टोस्ट और चिप्स के दाम डेढ़ शिलिंग थे. . .और मेरे पास दस पेनी से आधी पेनी भी ज्यादा नहीं. . . फिर जानते हो, मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या किया? मैं एकदम खड़ा हो गया (इस तरह मैं जार्ज के सम्मुख खड़ा हो गया) और जोर से चिल्लाया, 'गुड ईवनिंग. अरे बाहर कैसे खड़े हो?' (और मैं सचमुच चिल्ला रहा था—जार्ज के मुंह पर) होटल का मालिक उत्सुकता से मेरी ओर देख रहा था. मेरे एक दोस्त बाहर खड़े हैं... उनसे मिलकर अभी आता हूं. टोस्ट और चिप्स की प्लेट मेज पर छोड़कर मैं आगे बढ़ा, दरवाजे की तरफ, बिलकुल सधे कदमों से इस तरह (और मैं सचमुच चल रहा था—मेजों के बीच) और दरवाजा पार करते ही... तुम जानते हो, मैंने फिर मुड़कर नहीं देखा. (मैं फिर मुड़कर जार्ज के पास आ गया था... लागर का एक लंबा घूंट पीकर मैं बैठ गया था.) मैं बहुत देर तक भागता रहा था."

"और वह तुम्हारे पीछे था?"

"नहीं. हंसी की बात तो यही है कि वह मेरे पीछे नहीं था और फिर भी मैं एक अंधेरी गली से दूसरी अंधेरी गली में भागता रहा था... और देखो, मेरी जेब में दस पेनी बच गये थे, हालांकि मेरी भूख बिलकुल मिट गयी थी."

"तुम भी खूब हो." जार्ज ने हंसते हुए कहा.

मुझे काफी खुशी हुई कि वह हंस रहा है. मेरा मित्र और उसकी प्रमिका भी इसी तरह हंसने लगे थे. जब दूसरे दिन मैंने उन्हें यह घटना सुनायी थी. हालांकि मुझे हमेशा आश्चर्य होता है कि लोग, विशेषकर वे लोग जिन पर ऐसी घटनाएं बीतती हैं, बाद में किस तरह आसानी से उन्हें हलका-सा रंग दे देते हैं. क्योंकि देखो, उस घड़ी में, बिलकुल उस घड़ी में, जब घटना सचमुच घट रही होती है, आदमी कितना बदहवास-सा हो जाता है, बगलों में ठंडा पसीना टपकता हुआ कमीज से चिपक जाता है और भीतर विह्वल-सी कातरता भर आती है, बावजूद हमारी उम्र के, बावजूद हमारे अनुभव के... मैं तो जानता हूं कि उस रात जब मैं दस पेनी जेब में दबाकर अंधेरी सड़क पर भाग रहा था, तो कोई बार-बार मुझसे कह रहा था—यू फकिंग फूल... यू ईडियट... यू....

"तुम भी कमाल हो!" जार्ज ने कहा. जब उसने तीसरी बार यही बात कही, तो मुझसे नहीं बैठा गया. आंखों के आगे घड़ी का डायल फिर घूमने लगा और मैं टायलेट की तरफ बढ़ गया. टायलेट नीचे बेसमेंट में था. मैं जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतरने लगा. मुझे डर था कहीं, सीढ़ियों पर कुछ न हो जाये. मैंने मुंह पर हाथ रख लिया और बहुत रहस्यमय ढंग से मुस्कराने लगा.

हुआ कुछ भी नहीं—न सीढ़ियों पर, न वाश-बेसिन में, जिस पर मैं देर तक झुका रहा था—इस इंतजार में कि कुछ बाहर आयेगा और अब घड़ी की सफेद डायल नहीं घूम रही थी. मैंने पंप खोल दिया था ताकि मैं निश्चित होकर एक-एक चीज याद कर सकूं और अपनी आवाज न सुन सकूं (रात की इस घड़ी में मैं यहां क्या कर रहा हूं? नहीं, ऐसे नहीं चलेगा, मुझे इस सिलसिले से ब्योरेवार हर चीज याद करनी चाहिए—जैसे यह बहुत महत्वपूर्ण हो, जैसे कोई बड़ा 'सत्य' इस पर निर्भर हो.) 'ब्योरेवार'... यह शब्द मुझे जंच गया था और मैं बार-बार इसे जबान पर फेर रहा था, क्योंकि मैं कितनी देर तक चीजों को याद करने की बजाय यही दुहराता रहा कि मुझे हर चीज—'ब्योरेवार' याद करनी चाहिए.

टायलेट से बाहर आया, तो पांव ठिठके-से रह गये. नाचते हुए जोड़ों के भंवर में मैं घिर गया था. लोग धक्का देकर आगे निकल जाते थे और मैं कभी दायें, कभी बायें, एक कठपुतली की तरह घूम जाता था. जब कभी अपने पांव जमाने का यत्न करता, तो डांसिंग-फ्लोर पैरों-तले सिकुड़ने लगता और लगता, जैसे मैं एक बहुत तेजी से घूमते लट्टू पर खड़ा हूं, तभी मुझे अपने कंधों पर एक अजीब-सा बोझ मालूम हुआ.

"तुम यहां हो?"—विली की दाढ़ी मेरे माथे को छू रही थी, "और जार्ज?"

"वहीं है." मैंने ऊपर की ओर इशारा किया.

जिस लड़की के संग वह नाच रहा था, उसका चेहरा उसके सीने-तले छिप गया था—सिर्फ उसके ब्लोंड बाल दिखाई दे जाते थे.

"तुम आओगे नहीं?... तुम्हारी लागर..." मैंने कहा.

"आऊंगा... तुम नाचोगे नहीं?"

इस बार लड़की ने चेहरा ऊपर उठाया. उसके नंगे कंधों पर पाउडर के हलके निशान थे और उसने सस्ती छींट की समर-स्कर्ट पहन रखी थी. होंठों पर पसीने की बूंदें थीं, जो शायद देर तक नाचने के कारण लिपस्टिक के ऊपर छितरा आयी थीं.

भीड़ में खड़े रहना असंभव था. वे मेरे नजदीक ही बहुत धीमे कदमों से नाचने लगे थे—एक बहुत तंग घेरे के भीतर—कभी विली का सिर मेरे पास सरक आता, कभी लड़की के ब्लौंड बाल.

"कैसी है?" विली ने धीरे से उसके बालों को झिंझोड़ दिया. वह हंस रही थी.

"यह बहुत खराब है... है न?" उसने हंसते हुए कहा और पहली बार मुझे लगा, जैसे उसकी आंखें सोती-जागती गुड़िया-सी हैं, जो सिर पीछे होते ही खुद मुंद जायेंगी और सीधा होते ही खुल जायेंगी.

"नाचोगे?... मे बि विद हर." विली ने कहा.

वे दोनों ही घूम रहे थे... बहुत ही हलके स्टेप्स के संग. जब जिसका चेहरा मेरे पास आता, वह मेरे कानों में कह देता.

"इसके हमजोली वहां बैठे हैं. मर जायेंगे मुझे इसके संग देखकर." विली ने कहा.

"तुम नाचोगे नहीं? मे बि विद मी." लड़की ने कहा.

"वह इटालियन मना करता था.." मैंने विली से कहा.

"मरने दो उसे..." विली ने कहा.

आरकेस्ट्रा की उस घिसी-पिटी धुन में जाने कैसे मोत्सार्ट के 'लिट-लनाइट' म्यूजिक की हलकी-सी आहट ऊपर तिर जाती थी—महज आधे मिनट के लिए—और तब मुझे लगता था, जैसे किसी ने मेरी सांस को धागे की तरह उंगली में लपेटकर खींच लिया हो.

"जिन पियोगे?... पैसे यह देगी." विली ने धीमे स्वर में फुस-फुसाते हुए कहा.

"मे बि विद मी." लड़की ने वैसे ही उदासीन स्वर में कहा.

इससे पहले कि मैं कुछ कह पाता, नाचते हुए जोड़ों की भीड़ उन्हें मुझसे बहुत दूर घसीट ले गयी. वे अचानक आंखों से ओझल हो गये.

मेरा सिर अब भी घूम रहा था, किंतु यह चकराहट वैसी नहीं थी, जैसी टायलेट जाने से पहले. अब इस चकराहट में एक विचित्र-सा हलकापन था. जैसे धुंध की जगह वहां सिर्फ छितरे, बरसे हुए बादल हों. और असीम खुलापन हो.

भीड़ के भीतर रास्ता टटोलना सुगम नहीं था. बेसमेंट की सीढ़ियों के पास आकर मैं रुक गया. एक अदम्य इच्छा हुई, वहीं सीढ़ियों पर लेट जाने की, सो जाने की.

"हलो!" मेरे हाथ को किसी ने जकड़ लिया था. पीछे मुड़कर देखा, पब का मालिक इटालियन खड़ा था. शायद वह दूर से भागकर मेरे पास आया था. हाथों पर कमीज की मुड़ी हुई बाहें लटक आयी थीं. वह हांफ रहा था, जैसे आस-पास की हवा उसके सांस लेने के लिए बिल्कुल नाकाफी हो.

"सुनो, वह तुम्हारा दोस्त है?"

मैंने कंधे सिकोड़ लिये.

"क्या तुम उसे यहां से नहीं ले जा सकते. ..मेरा मतलब है, इस जगह से?"

हमारे चारों ओर नाचते हुए लोगों का दायरा कभी बहुत तंग हो जाता, कभी एकदम फैल जाता था. बैंड के आगे कोई व्यक्ति लाउड स्पीकर को दोनों हाथों से पकड़कर गाने लगा था.

हम दोनों के बीच हमारी निगाहों के अलावा कोई और नहीं था.

"तुम क्यों नहीं कह देते?" मैंने कहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं उससे कुछ भी नहीं कह सकता. . .वह मेरी बात कभी नहीं मानेगा."

"लेकिन क्यों. . . वह यहां क्यों नहीं रह सकता?"

"यह जगह उसके लिए ठीक नहीं है." एक अवश-सी कातरता उसके स्वर में उभर आयी, "मैं उसे पहले भी कई बार मना कर चुका हूं."

मेरे मन में फिर इच्छा हुई. . .वहीं सीढ़ियों पर लेट जाने की.

"देखिए. . . मैं कुछ भी नहीं कर सकता. हमारी मुलाकात कुछ घंटे पहले हुई थी. आप विश्वास नहीं करते?—एक क्षण के लिए मुझे उसके दयनीय चेहरे से घृणा हुई, जैसे मैंने किसी गिलगिली-सी चीज को छू लिया हो—मैं उसे ठीक से भी नहीं जानता, यह भी नहीं जानता कि उसका पूरा नाम क्या है—मैंने कुछ इस तरह कहा, जैसे जिंदगी में पूरा नाम जानना बहुत महत्वपूर्ण हो, जैसे उसके बिना कुछ भी नहीं हो सकता.

एकाएक उसने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये. वह बिल्कुल मेरे पास सरक आया. "तुम. . . तुम यहीं रहोगे?"

"हां." मैंने सिर हिलाया. "जब तक तुम बाहर न फेंक दो."

उसकी पकड़ ढीली हो गयी. किंतु उसकी आंखें अब भी मुझे टटोल रही थीं. मैं सीढ़ियां चढ़ने लगा. . . मुझे बराबर यह लगता रहा कि अब भी उसने मुझे पीछे से पकड़ रखा है. . . हे ईश्वर. मैं एक सिगरेट पी सकता. . . लगता है, मैंने एक मुद्दत से सिगरेट नहीं पी.

उठती थी और पानी पीने के बहाने मुझे देखती थी. अपने घर की छत पर मेरी आखिरी रात थी. . .—वह जुलाई की रात थी और मुझे दूसरे दिन चले जाना था. . . और बाबू मेरे बिस्तर के पास खड़े रहे थे, सोचा था, मैं सो रहा हूं. . . मैं सब-कुछ देख सकता था. . वैसे भी हमारे शहर में जुलाई की रातें बहुत उजली होती थीं—आंखें मूंद भी लो तो भी सब-कुछ दीखता था . . फिर सहसा इच्छा हुई कि मैं बाहर चला जाऊं. यह बहुत आसान था. पहले मैं अपनी कुरसी से उठ खड़ा हूंगा. फिर दरवाजा खोलूंगा और बाहर चला जाऊंगा. . . जस्ट टू कम आऊट. . यह बड़ी बात है, मैंने सोचा. . उसके मुंह पर थूक फिर बह रह आया था, होंठों से बहता हुआ ठुड्डी तक, जहां नीले कांटों-से बाल उग आये थे. . . मैं रूमाल से उसका मुंह पोंछ देता हूं. . . .

आवाजें—एक बदहवास-सी चीख!

बेसमेंट की दीवार पर छायाएं डोलती जाती हैं—एक भयंकर दुःस्वप्न-सी. कुरसियों को खींचने की आवाज, अटपटी-सी हंसी. . . लेकिन है कुछ नहीं. मैं उठता नहीं गिलास में अब भी लागर बची है और मैं उठ नहीं सकता. . . और तब अचानक उस क्षण मुझे अपने में एक अजीब-सी शांति महसूस होती है. . घनी चिलचिलाती, गरम रेत के अंतहीन फैलाव-सी और मैं उसे पकड़े रहता हूं .

जस्ट टु कम आउट, जस्ट टु. . .

मैं पूरी शक्ति से जार्ज को झिंझोड़ने लगता हूं.

एक एकदम हड़बड़ाकर उठ बैठा और विमूढ़ भाव से मुझे देखने

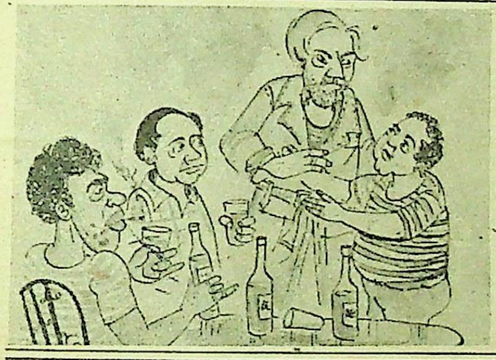

मैंने जिंदगी के इतने बरस बिता डाले और कभी इसे नहीं जाना. लगता है मेरी चेतना ने इस पीड़ा का एक छोर पकड़ लिया है और घिसटती जा रही है. . . . कभी सिर्फ चेतना रह जाती है—पीड़ा से अलग. तब लगता है जैसे मैंने कुछ खो दिया है. . . .मेरी देह के विभिन्न अंगों में—बिल्कुल नये किस्म का दर्द है, जो अपने में संपूर्ण है और जिसे आज तक मैंने नहीं पहचाना. बीच-बीच में चेतना का पर्दा खुल जाता है और मुझे आश्चर्य होता है कि यह मैं हूं.

जब मैं धक्के खाता और अपनी सामर्थ्य के अनुसार दूसरों को धक्के देता हुआ अपनी मेज के पास पहुंचा, तो जार्ज सबके प्रति तटस्थ होकर सो रहा था. उसका सिर मेज के किनारे पर टिका था, उसकी देह कुर्सी पर सिकुड़ गयी थी, अधमुंदी आंखों के बीच सफेद पुतलियां मैली रुई के फाहों -सी उभर आयी थीं. पहले मुझे भ्रम हुआ कि वह मुझे देख रहा है, जो सच नहीं था. उसके होंठों के कोरों पर थूक बह आया था—चाक की महीन रेखा-सा, सूखा और सफेद, जो मैंने रूमाल से, सबकी आंख बचाकर पोंछ दिया.

उस रात पहली बार मुझे लगा कि वह उम्र में बहुत छोटा है—हास्यास्पद रूप से छोटा और अनजान.

मेरा गिलास खाली था. . . मैंने थोड़ी-सी लागर उसके गिलास से अपने गिलास में उंडेल दी. एक क्षण के लिए लगा, जैसे वह अधमुंदी आंखों से मुझे देखता हुआ मुस्करा रहा है. . . और उसमें हल्का-सा व्यंग्य छिपा है. शायद बन रहा है, मैंने सोचा, सो नहीं रहा और मुझे देख रहा है. . . लेकिन शायद यह भी मेरा भ्रम हो, मैंने सोचा और पीने लगा फिर मुझे कुछ अकेला-सा लगा. सोचा, अपने मित्र को टेलीफोन कर दूं, हो सकता है, उसकी गर्ल फ्रैंड अब तक चली गयी हो और मैं उसके कमरे में सो सकता हूं लेकिन यदि वह हुई तो उसे बुरा लगेगा. . . इसे उठा दूं, यह कब तक ऐसे सोता रहेगा, मैंने सोचा, इतनी उम्र में घर से भाग आया है और अब—अब सो रहा है. . . मुझे एक बहुत पुरानी बात याद हो आयी. यूरोप आने से पहले वह घर में आखिरी रात थी. मां बार-बार

लगा—कुछ-कुछ उस ट्रेंड जानवर की तरह, जो ऐन मौके पर अपना 'पाठ' भूलकर आस-पास खड़े तमाशबीनों को देखने लगता है. फिर सहसा उसकी आंखें अजीब-सी आतंक-ग्रस्त हो आयीं.

"बात क्या है?"

"चलो. . . यहां से चलना होगा."

"लेकिन क्या अभी. . .?"

वह कुछ भी नहीं जानता. मैं जल्दी में निश्चय नहीं कर पा रहा था कि क्या उसे कुछ भी बताना उचित होगा.

"क्या मैं सो गया था?" उसने पूछा. न जाने मेरे चेहरे पर क्या था कि वह एकाएक शंकित-सा हो उठा.

"यह शोर कैसा है?"

उसका चेहरा बिल्कुल वैसा हो गया, जब हम सोडा-फैक्ट्री के बाहर अंधेरे में खड़े थे. . अब वह घड़ी कितनी दूर लगती है और कितनी अप्रासंगिक.

"हमें चलना होगा. . . बाहर. . . "

बाहर लंदन की रात है. . हमारी प्रतीक्षा करती हुई—हमें निगल जाने के लिए आतुर

"विली कहां है?. . . हम उसके बिना नहीं जा सकते."

"वह. . . वह आ नहीं सकता."

पब का दरवाजा खुलता है. . . कुछ लोग हड़बड़ाकर भीतर घुसते हैं.

"आर देयर. . . द डम्ड. . . "एक बहुत ही भद्दी गाली और आवाजें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मक्खियों की भिनभिनाहट की मानिंद अर्थहीन.

मैं उसका हाथ पकड़कर घसीटता हूं.

"मैं जाऊंगा नहीं. . . "

"तुम पागल तो नहीं हो?"

"वे कहां हैं?"

"वे." मैं गुस्से में उसे उठा देता हूं. वह बिल्कुल मेरे सामने खड़ा है, "बताओ, वे कौन?," मैं उनके कंधे हिलाता हूं. और वह. . .

"बोलो, वे कौन?"

"यू आर ड्रंक." उसने कहा और एक झटके से अपने को छुड़ा लिया.

शायद यह सच है, मैंने सोचा. . . शायद मैंने बहुत पी ली है. इस खयाल से मुझे बहुत सांत्वना मिली है.

"तुम यहीं रहोगे?"

"मैं कहीं भी रहूं." उसने कहा.

"सुनो." मैं बीच की कुरसी हटाने की चेष्टा करता हूं.

"यू आर ड्रंक!" वह पीछे हट गया.

मैं जाने लगा. वह भी, लेकिन मुझसे अलग. लगा, जैसे यह कोई खेल है, जिसमें दो व्यक्ति आंखों पर पट्टी बांधकर चलते हैं और वे समझते हैं कि वे एक-दूसरे से दूर जा रहे हैं, लेकिन दरअसल वे एक दूसरे के निकट सरकते आते हैं.

दरवाजे की तरफ. . . पहले मेजें आती हैं, अधजली सिगरेटों के टोटे, खाली गिलास और बोतलें, कुरसियों पर रखे शाम के अखबार, फर्श के एक कोने में गिरी हुई लिपस्टिक की डिब्बी, जिसे हड़बड़ाहट में कोई स्त्री उठाना भूल गयी थी. . . और मुझे लगा जैसे कोई घटना अचानक हुई होगी, बिलकुल अप्रत्याशित रूप से, और सब लोग बिना किसी तैयारी के भागती भीड़ के भंवर में फंस गये होंगे.

विली कहां है?

और यह इटालियन. . . .

आगे सोचना नहीं हुआ. दरवाजा झपाटे से खुला था और मुझे लगा, जैसे एक झटके से जार्ज मुझसे अलग हो गया है—आखिरी लमहे में (या सबसे शुरू के लमहे में). मैंने कोशिश की कि उसे अपने से जकड़े रखूं, जैसे यह अपने में एक महत्त्वपूर्ण चीज है, किंतु मेरा सिर सनसनाता हुआ नीचे की तरफ घूम गया. जो हाथ मैंने जार्ज को पकड़ने के लिए फैलाया था, वह मुड़ता गया. छत, न यह छत नहीं है, सिर्फ रोशनी है—एक अजीब ढंग से झूलता हुआ बल्ब. . . और मेरी बांह मुड़ती गयी, (डोंट लेट देम एस्केप) एक फूत्कारती-सी आवाज, फिर वह भी नहीं) और वह एक तख्ते की तरह कांप रही थी और उसे मैं देख सकता था. . . कांपते हुए. . . जैसे वह मेरी बांह न हो. कोई कसता जा रहा है आखिरी बिंदु तक और वहां पहुंचने से पहले ही टूट जाती है. . . समूची देह में. . . न, यह पीड़ा नहीं है, पीड़ा की एक सीमा होती है और उसके परे उसकी पहचान खत्म हो जाती है. . .

"आई से . . . लीव हिम एलोन. . . "यह क्या इटालियन की आवाज है? मुझे हल्का-सा आश्चर्य होता है. मेरे ऊपर झुके हुए चेहरे एक-एक करके उठ रहे हैं, लेकिन मैं उन्हें देख नहीं सकता. . सिवाय उनकी गरम सांसों के, तो गर्दन को बार-बार छू जाती हैं—फिर वह भी नहीं.

"तुम उठ सकते हो?"

मैं अपनी बांह को देखता हूं. . . वह अब फर्श पर पड़ी है—आश्चर्य है, वह अब तक मुझसे जुड़ी है.

मैं बैठ गया हूं. फिर आनायास मेरे हाथ गालों पर चले जाते हैं. वे गीले हैं. . . वे आंसू हो सकते हैं, इस पर मैं विश्वास नहीं कर सका—वे बेहूदा ढंग से खुद-ब-खुद निकल आये थे और मुझे पता नहीं चला था . . . कुछ उस व्यक्ति की तरह जो सुबह ,अपने बिस्तर को गीला पाता है और विश्वास नहीं कर पाता कि उसने ही. . .

"कुछ पियो!" इटालियन मेरे इर्द-गिर्द मंडरा रहा है.

"विली कहां है?" मैंने पूछा.

"वे उसे मार डालेंगे. . . मैंने तुमसे क्या कहा था?" उसका गला अजीब ढंग से रुंध गया है.

"क्या कहा था?" मुझे अब कुछ भी याद नहीं आता.

"तुम्हें मालूम है. . . तुम अगर उसे अपने संग ले जाते तो कुछ भी नहीं होता."

"कुछ भी नहीं होता. . . लेकिन जो हुआ है, इसे कोई रोक सकेगा, यह कोई भी नहीं जानता."

"अब मैं जाऊंगा." मैंने कहा.

"कहां?" इटालियन दरवाजे के सामने खड़ा था..

"कहीं भी. . . बाहर." चारों ओर देखा, जार्ज कहीं भी नहीं था. मुझे हल्की-सी खुशी होती है.

"बाहर?" इटालियन को शायद विश्वास नहीं हुआ, वह शायद निश्चय नहीं कर पा रहा था कि किस सीमा तक मैं पी चुका हूं. . किस सीमा तक वह मुझे गंभीरता से ले सकता है.

"इस समय नहीं. . वे बाहर खड़े हैं."

"सुनो—" मैंने बहुत सहज भाव से कहा, "मैं कुछ भी नहीं करूंगा. मैं सीधा घर चला जाऊंगा."

कैसी बात करते हो? इस बार वह एकदम भभक-सा उठा, "वे जानते हैं, तुम किसी विली के संग आये हो . . . तुम उनसे बचकर नहीं जा सकते."

बहस करना व्यर्थ था, वह मानेगा नहीं.

बाहर एकाएक कोलाहल बढ़ गया है. . . एक क्षण के लिए टेढ़ी-सी उमठन मेरी पीठ पर सरकने लगती है— बर्फ के डले की तरह. इसे मैं पहचानता हूं. डर है . . . बहुत शुरू का डर, अपने में बिलकुल नंगा—बिलकुल नीरव.

मुझे लगा, जैसे मैं मुस्करा रहा हूं.

"देखो. . . तुम मुझे एक छोटी व्हिस्की दे सकते हो?"

वह कुछ देर तक मुझे घूरता रहा. आगे घिसट आया था. हम दोनों के चेहरे पास थे कि बाहर के शोर के बावजूद मैं उसकी सांसों को सुन सकता था.

"तुम जाओगे नहीं!" संदेह और अनिश्चय से उसका स्वर एक तनाव में खिंच आया था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं पागल नहीं हूं."

वह कुछ देर तक चुपचाप मुझे घूरता रहा.

"तुम्हें यहां छोड़कर मैं नहीं जा सकता." उसने कहा.

एकबारगी जी में आया कि मैं उसके पसीने में लथपथ गोल-मोल गदराये चेहरे को अलग-अलग हिस्सों में तोड़ दूं. . . किंतु मैं वैसे ही मुस्कराता रहा.

"मैं यहीं रहूंगा . . . तुम्हारे लिए नहीं तो ह्विस्की के लिए. तुम मेरा इतना भी विश्वास नहीं करते?"

इस बार उसके होंठ एक अप्रत्याशित हंसी में फैल गये. उस हंसी में एक विवश निरीहता छिपी थी, मानों वह हंसकर खुद अपने को विश्वास दिला रहा हो कि उसने मुझ पर विश्वास कर लिया है.

वह काउंटर की ओर बढ़ा, जहां विभिन्न शराबों और बियर की बोतलें रखी थीं. वह बार-बार पीछे मुड़कर मेरी ओर देख लेता था.

मैं खड़ा रहा.

स्कॉच की बोतल उसने काउंटर पर रख दी. फिर मेरी ओर देखा जैसे हम दोनों के बीच कोई रहस्यमय समझौता हो

हमारा मौन जैसे इन आवाजों में बड़ा था, जो लहरों की मानिंद उठतीं थीं—एक दूसरे से उलझी हुई. . . उठती थीं, दरवाजे से टकराती थीं और फिर अंतहीन अंधकार में बिखर जाती थीं.

वह गिलास धो रहा था. पंप से बहता पानी . . . और चमकीले गिलास पर फिसलती हुई उसकी एक-एक बूंद—मैं उन बूंदों को देखता रहा और मुझे बराबर महसूस होता रहा कि मैं उलटी करूंगा. मैं नंगे कांच पर बहते पानी को नहीं देख सकता . . . मेरे भीतर एक अजीब-सी झुरझुरी फैलने लगती है . . . मैं आगे बढ़ता हूं, दरवाजे की तरफ. उसकी पीठ अब भी मेरी तरफ थी. . . . पंप से बहते पानी की आवाज मेरे दिल की धड़कन को ढकती रही . . . और तब उस लमहे अचानक मुझे लगा, जैसे अब मैं चाहूं तो भी नहीं मुड़ सकता, जैसे खुद मेरा अपनी टांगों पर, अपने पर, कोई नियंत्रण नहीं रहा था. . . . जैसे मैं खुद अपने से मुक्त हूं.

और दरवाजा खुल गया. . . दूसरे क्षण मैं बाहर था. बाहर अंधेरे में.

जस्ट टू आउट . . . मैंने अपने से कहा.

वह गर्मियों की एक खुली और नरम रात थी. . . . एक विराट, वनैले जंतु की तरह खामोश . . . जो दिन भर की थकान के बाद अपनी मांद में समूची देह फैलाकर सो गया हो.

पसीना सूख रहा था. मैंने भरपूर सांस ली एक बार . . दो बार . . . हलका-सा पछतावा होता है . . . मैं ह्विस्की छोड़कर चला आया था . . . इस समय यदि वह मेरी देह के भीतर होती . . . मैं फिर सांस खींचता हूं . . . काश, मैं एक सिगरेट पी सकता! . . . मैं बड़ी सड़क छोड़कर एक संकरी लेन में चला आया हूं . . . अक्सर गलियों के नुक्कड़ पर सिगरेटों की ऑटोमशीनें लगी रहती हैं . .

"हियर ही इज . . . द सन आॅव ए बिच."

मैं रुक जाता हूं . . . न, यह डर नहीं है. मैं बहुत शांत हूं . . . सिर्फ एक ठंडी-सी चीज मेरी रीढ़ की हड्डी पर फिसल रही है—एक गिलगिली छिपकली की तरह तटस्थ.

वे वहां थे. . . दीवार से सटी छायाएं आगे सरकती हैं.

"होल्ड हिम!" एक फटी सी चीख और मैं अचानक पीछे मुड़ गया हूं . . . एक सरसराती-सी हवा मेरी बगलों के बीच से निकल जाती है.

"गॉडेम्ड निगर . . ."

"वेट, जस्ट वेट . . ."

वह पीछे से आया था—मुझे पता भी नहीं चला कि मेरा सिर पीछे की ओर मुड़ता गया है. . . . एक क्षण और . . . और मैं दो हिस्सों में बंट जाऊंगा. . . .

काश, मैं उसके चेहरे को देख पाता? . . .

हाथ है, जो नम है. . . . मैं अपनी कनपटियों में सरसराता खून सुन सकता था. मैं थोड़ा-सा हिलता हूं. . . . और कुछ आगे की तरफ घिसट आता हूं. वह भी मेरे संग घिसट आता है—यह कोई अन्य व्यक्ति है, इसने सिर्फ मेरे हाथ पकड़ रखे थे.

एक क्षण के लिए मुझे गहरा आश्चर्य होता है—यह क्या मेरी देह है, जो इस तरह थरथरा रही है?

"यू शिटिंग स्वाइन!"

मैं एक झटके से अपने को खींचता हूं . . . लेकिन मेरे बाल . . . मेरे बाल उसके हाथों में फंस गये हैं—उसकी नंगी बांह मेरे हाथ के सामने हिलती है . . . और अनायास मैं अपने दांत उसमें गड़ा देता हूं . . . ओह, लीव इट, बगर! . . . एक टूटती-सी सांस . . . वह मुझे हिलाता है एक बार, दो बार—और हर बार मैं शराबी-सा उसकी बांह पर झूल जाता हूं.

"लीव हिम एलोन, यू सन आॅव ए ह्वाइट ह्वोर्स."

क्या यह विली की आवाज है? . . . मैं पूरी शक्ति से चीखने की चेष्ठा करता हूं, किंतु सिवाय एक भयावह घर्र-घर्र के मेरे मुंह से कोई भी स्वर नहीं निकलता पाता.

और तब सहसा मुझे लगा, उसकी पकड़ ढीली पड़ गयी है . . . मैं अपने को उठा सकता हूं. मेरी आंख खुलती है. अंधेरे का एक नीला दरिया मेरे सामने से गुजर जाता है और उसके परे लाल, हरे, गुलाबी धब्बे तिरते जाते हैं—मैंने इन्हें कभी देखा है, मुद्दत पहले कभी देखा है. जैसे यह कोई पहचाना-सा दुःस्वप्न है, जिसे मैं दुहरा रहा हूं. . . . शुरू से अंत तक.

मुझसे दो गज के फासले पर वह खड़ा था—गली की दीवार से सटा हुटा. एक क्षण के लिए विश्वास नहीं हो सका कि वह विली है, वही व्यक्ति जिसके संग कुछ देर पहले मैं लागर पी रहा था.

किंतु क्या वह मुझे पहचान सकता है? . . .

और वह ब्लौंड लड़की . . . और जार्ज . . . क्या वे स्मृति के घेरे से बाहर कहीं रात में डूब गये हैं . . . हमें यहां छोड़कर . . . जो इस क्षण खुद अपने को नहीं पहचान पाते?

सिर्फ दो गज . . . और बीच का अंधेरा.

भीड़, आधा चेहरा और एक लंबा युवक जो विली पर झुका है . . . विली की कमीज का कालर हाथ में पकड़कर वह उसे दीवार के पास घसीट लाता है—खटाक . . . खटाक . . .

वह स्कार्फ फूल जाता है. . . स्कार्फ जो उस लंबे व्यक्ति के गले में बांध रखा है— रंगीन. उस पर गुलाब के फल छपे हैं . . .

गुलाब के फूल और खून, जो विली के होंठों से फिसलता हुआ उसकी 'गोटी' तक बह आया है . . .

एक क्षण के झलमले में सब-कुछ उभर आया है . . . आवाजें पसीना, लेन की खट्टी-सी गंध . . . और हंसी . . .

और तब वह आया था . . . एक ठिगना-सा व्यक्ति जो अभी तक भीड़ के अंधेरे में छिपा था. उसकी घनी भौंहों के बीच छोटी अस्थिर आंखें चमक रही थीं . . . भौंहों के बाल इतने लंबे और घने होकर उसकी आंखों पर झुक आये थे कि लगता था, जैसे उसने अपने चेहरे पर किसी कुत्ते का मास्क पहन रखा हो . . .

वह बहुत ही धीमे कदमों से विली की ओर बढ़ रहा था . . .

"कहां गयी तुम्हारी डार्लिंग?" उसने झटके से विली की ठुड्डी को ऊपर उठा दिया.

"बोलो . . . कहां गयी?"

हर बार 'कहां गयी' कहते समय वह विली के सिर को दीवार पर धकेल देता था . . . हर बार विली की देह एक शराबी की तरह झूम जाती थी.

और वे हंस रहे थे . . .

"बश हिम देयर!" दूसरे ने अपने . . . की ओर इशारा किया. खट-खट सिर के दीवार से टकराने की आवाज. खट-खट मेरे दिल की पगली ज्वर-ग्रस्त धड़कन. पसीने और खून से लिथड़ी विली की कमीज

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शनि का इलाज

—विनय विश्वास

"तुम्हारे ऊपर शनि की कष्टकारी दशा चल रही है." ज्योतिषी ने उसकी कटी-फटी जन्मपत्री पर आंखें गड़ाये-गड़ाये कहा. "अब क्या हो सकता है?" उसकी आवाज निराशा के समंदर से जैसे-तैसे बाहर आयी.

"तुम्हारे पास सवा रुपया है?" ज्योतिषी ने पूछा.

"नहीं." उसने छोटा-सा जवाब दिया.

"फिर तो तुम मजे करो. जब तुम्हारी जेब में सवा रुपया भी नहीं है तो शनि तुमसे क्या ले सकता है." ज्योतिषी ने बात खत्म की और वह उठकर मुस्कराते हुए चल दिया. □

और एक अनवरत, कभी न खत्म होनेवाली खट-खट और एक भुतैली-सी हंसी...

"बोलो, कहां गयी? ...स्पीक! स्पीक! स्पीक! यू फिल्दी... हा-हा-हा..." खट-खट-खट...

स्कार्फ में झूलते हुए रंगीन गुलाब के फूल...

मुझे अब कुछ भी याद नहीं...सच पूछो, तो मुझे यही नहीं मालूम कि मैं स्वयं चिल्लाया था या कोई बाहर की चीख मुझे सहसा झिंझोड़ गयी थी. (नहीं...आज भी मैं विश्वास नहीं कर पाता कि वह भयावह चीख मेरे गले से निकली होगी) मुझे सिर्फ इतना-भर लगा कि मेरी सांस...एक अंधे चिमगादड़ की तरह मेरी छाती की दीवार से टकराती हुई बेतहाशा फड़फड़ाने लगी थी. और मैंने एक धक्के से उन दोनों हाथों को अपनी गर्दन से छुड़ा लिया, जिन्होंने अब तक मुझे रोक रखा था...

सिर्फ दो गज...और बीच का अंधेरा.

मैं विली की तरफ बढ़ा था. मैं उससे कुछ कहना चाहता हूं. उसे छूना चाहता हूं. मुझे लगता है यह बहुत महत्वपूर्ण है.

बीच का अंधेरा—और वे ठंडे हाथ और तब वह चीख...

मेरा सिर उस अदृश्य व्यक्ति की ठुड्डी से टकराया था, जिसने मुझे बीच में पकड़ लिया था. दूसरे हाथ से उसने मेरा चेहरा भींच लिया...मेरा मुंह उसकी कमीज पर घिसटता गया. "आई विल टीच यू—हाउ टु रन...बास्टर्ड..." न जाने क्यों मैं अपनी टांगों को बेतहाशा, मिरगी के मरीज की तरह, हवा में घुमाने लगा—कुछ नहीं होगा...मैंने सोचा...वह मुझे छोड़ेगा नहीं...और तब मुझे लगा, जैसे अब मैं सांस नहीं ले सकूंगा. किंतु यह गलत था, हर दूसरी सांस पहली सांस की गिरफ्त से अपने को छुड़ाकर ऊपर आती थी और फिर मुझसे चिपक जाती थी और मैं सोचता था, यह आखिरी है, लेकिन तीसरी सांस फिर छटपटाते हुए अपने को दूसरी सांस के पिंजरे से छुड़ा लेती थी और मुझे आश्चर्य हुआ कि कोई भी सांस पीछे रहकर आखिरी नहीं बनना चाहती...और तब तक भयंकर-सी खुशी ने मुझे अपने में लपेट लिया, जैसे मैं अब तक सिर्फ इस लमहे के लिए जी रहा था और अब वह आ गया है और आनेवाली घड़ियों में कोई भी ऐसी चीज नहीं होगी, जिसके मानी वही होंगे, जो पहले थे, कोई भी डर पहले जैसा डर नहीं होगा...मैं भूल गया था कि मैं अकेला हूं...मैं सिर्फ यह जानता था कि वे मुझे अकेला नहीं छोड़ेंगे और मैं बच नहीं सकता और उस रात मुझे पहली बार लगा कि अकेला होना ही काफी नहीं है...काफी नहीं है क्योंकि वे हर जगह हैं और यह मैं जानता था, सिर्फ यह नहीं जानता था कि एक दिन वे मुझे पकड़ लेंगे...अब वह पहले-जैसा आकारहीन नहीं था—वह डर. अब वह ठोस था और सीमित था—उतना ही बड़ा जितना मैं हूं. हम दोनों अंधेरे में जानवरों की तरह सांस ले रहे थे और मुझे लगा, जैसे मैं आखिर तक अपनी टांगों को इसी हवा में घुमाता रहूंगा. आह डियर, हाऊ फनी इट इज...हाऊ फनी! कोई हंस रहा है—(क्या यह मैं हूं?) हंसी, जिसकी कोई आवाज नहीं. घूंसे...गालियां...और फिर वही हंसी.

वे मुझे घसीटते ले गये हैं—गली के कोने तक.

मैं उठने की कोशिश करता हूं और बैठ जाता हूं. फिर इच्छा होती लेट जाने की. वहीं सड़क पर. लेकिन आंखें बंद करते ही लगता है जैसे एक और चीज ज्वार की तरह ऊपर उठती है—मेरी टांगों में, छाती में, बांहों के जोड़ों में—उठती है और बह जाती है...क्या यह पीड़ा है? और मुझे हलका-सा आश्चर्य होता है कि मैंने जिंदगी के इतने बरस बिता डाले और कभी इसे नहीं जाना. लगता है, मेरी चेतना ने इस पीड़ा का एक छोर पकड़ लिया है और घिसटती जा रही है... कभी सिर्फ चेतना रह जाती है—पीड़ा से अलग. तब लगता है जैसे मैंने कुछ खो दिया है. बारिश की शाम है और मैं दुबारा अपने शहर की सड़क पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक भाग रहा हूं...एक छोटा-सा खोखल मेरे सामने खुल गया है और एक उत्कट भयंकर-सी आकांक्षा मन में जगती है उसमें छिप जाने की...जैसे उसमें छिप जाने से ही सब-कुछ सुलझ जायेगा; सब-कुछ बहुत सहज हो जायेगा... लेकिन यह खोखल नहीं है. यह पीड़ा है, जो बराबर-बराबर से बंट गयी है, मेरी देह के विभिन्न अंगों में—बिलकुल नये किस्म का दर्द, जो अपने में संपूर्ण है और जिसे आज तक मैंने नहीं पहचाना. (हाऊ फनी इट इज...हाऊ वंडरफुल फनी!) बीच-बीच में चेतना का परदा खुल जाता है और मुझे आश्चर्य होता है कि यह मैं हूं...और मुझे सहसा विश्वास नहीं होता कि मैं बाहर आ गया हूं...अपने से बाहर जहां मुझे कोई नहीं बचा सकता.

अंधेरे से बाहर—जहां वे हैं.

वह शुरू अगस्त की एक रात थी. वे मुझे गली के एक गंदले, खामोश कोने में छोड़ गये थे. कितनी देर तक मैं वहां पड़ा रहा, मुझे कुछ भी याद नहीं. बीच-बीच में मेरी आंख खुल जाती थी, एक पतली और पारदर्शी धुंध के पीछे लंदन का आकाश घिर आता था. फिर आंखें मुंद जाती थीं और... मुझे लगता था, जैसे मैं एक धुंध को छोड़कर दूसरी धुंध में सिमट आया हूं.

कितनी देर ऐसे ही रहा. फिर मैं सतर्क हो गया. पैरों की आहट मेरे पास चली आयी थी. बहुत मंद गति से. मैं ऊंघने लगा था. शायद यह सपना हो. देर तक मालूम नहीं हो सका कि कोई बराबर मेरे कंधों को हिला रहा था.... "क्या ज्यादा चोट आयी?"

"नहीं...ज्यादा नहीं." आंखें खुल गयीं. मेरे ऊपर जार्ज का चेहरा झुका था. लागर की हलकी-सी गंध मुझे छू गयी. न जाने क्यों, उस गंध के संग एक दूसरी स्मृति उभर आयी...मोत्सार्ट के सेरेनाड की एक बहुत पुरानी ट्यून—ट्यून भी नहीं, महज एक टूटी टहनी-सी थिरकन, जिसे कुछ घड़ियों पहले 'पब' में अचानक पहचाना था...

"तुम यहां हो?"

"मुझे मालूम था, वे तुम्हें यहां लाये हैं... मैं देख रहा था," उसने कहा.

"विली कहां है?"

"लेट हिम गो टु हेल... अगर वह नहीं होता... तो कुछ भी नहीं होता."

"क्या कुछ नहीं होता?"

अचानक बड़ी सड़क से एक कार गुजर गयी. हमारी आंखें चुंधिया गयीं. मेरा ध्यान पहली बार अपनी ओर खिंच आया—कमीज का कॉलर उपर से फट गया था, पैंट पर गर्द, धूल और बियर के धब्बे थे और मुझे लग रहा था कि बदन के पसीने से चिपकी मेरी बनियान से एक बोझिल, गीली-गीली-सी भाप निकल रही हो.

"तुम वापस क्यों आये?"

"मैं भीतर आना चाहता था—तुम लोगों के पास, लेकिन तुम जानते हो..."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इट इज ऑल राइट, जार्ज." मैंने उसे बीच में ही रोक दिया. मेरे मुंह का स्वाद एकदम कसैला-सा हो आया, जैसे मैं एक लंबे बुखार के बाद उठा होऊं. पास ही लैंप-पोस्ट का पीला दायरा था. मैंने उसके बीचोंबीच थूक दिया—बिल्कुल लाल, जैसे पान की पीक हो. यह खून है. . . मुझे बहुत अजीब-सा लगा. मैंने एक बार फिर थूका, इस बार अपने खून को दुबारा देखने का लोभ संवरण न कर सका.

"तुम्हें ज्यादा चोट तो नहीं आयी?" जार्ज ने कहा. उसके स्वर में एक बंधी-बंधी-सी कुंठा थी. मुझे वह कुछ अजीब-सी लगी.

मैं चुप रहा और फिर खड़ा हो गया. एक क्षण तक गली की दीवार से मेरा सिर टिका रहा. . .

खट-खट-खट. . .

अब भी वह आवाज मेरी नसों के बीच फड़फड़ा रही थी.

हम चुपचाप ट्यूब-स्टेशन की ओर चलने लगे. मेरी जेब में अब भी दो शिलिंग पड़े थे. अनायास मेरी कांपती उंगलियां उन्हें सहला देती थीं.

बाहर सड़क पर अगस्त के पत्ते थे. . . लंदन का धुआं रात के परे गिरता जा रहा था.

"तुम मेरा विश्वास नहीं करते. . .तुम समझते हो. . ." जार्ज ने जबरदस्ती मेरा कंधा पकड़ लिया.

"इट इज ऑल राइट." मैंने उसका हाथ कंधे से अलग कर दिया. काश. वह इस समय मेरे संग न होता.

हम ट्यूब-स्टेशन की सीढ़ियां उतरने लगे.

प्लेटफार्म उजाड़ पड़ा था. बेंचों पर इक्के-दुक्के आदमी बैठे ऊंघ रहे थे. हमारे बिल्कुल पास खंभे की आड़ में एक जोड़ा दीवार से सटा था. . . लड़की अपने बालों पर बार-बार हाथ फेरती थी. उसके सामने खड़ा युवक कुछ दबे स्वर में फुसफुसा रहा था. लड़की बार-बार हंसने लगती थी और फिर चौंककर दोनों ओर देख लेती थी.

टिकट खरीदकर हम पास की खाली बेंच पर बैठ गये.

"तुम लंदन में ही रहोगे?"

वह चुप रहा. उसकी आंखें बत्तियों के परे अंडर ग्राउंड की सुरंग पर थिर थीं.—अंधेरी, सीली. लगता था, सुरंग का अंधेरा ऊपर शहर के अंधेरे से कट गया हो. . . जैसे गंदले पानी का ठहरा चहबच्चा हो.

"न जाने विली कहां चला गया?"

"विली. . . मैंने उसे देखा नहीं." उसने कहा.

"लेकिन तुम बाहर खड़े थे, तुमने अभी कहा था?"

"मैंने कुछ भी नहीं देखा."

हम फिर चुप्प हो गये. किंतु उस चुप्पी में एक बोझिल-सा तनाव था, जैसे कोई चीज बार-बार हमारे बीच आ जाती हो और हम बार-बार उसे अलग ठेल देते हों.

"तुम समझते हो. . . मैं झूठ बोल रहा हूं?" उसने कहा.

मैं दूसरी ओर देखने लगा.

"तुम कुछ भी समझो, मुझे कतई परवाह नहीं." उसने कहा.

"डोंट बि सिली." मैंने कहा.

"तुम मेरा विश्वास नहीं करते." इस बार उसने मेरी ओर देखा, "तुम सोचते हो मैं भाग गया था. . ."

उसके होंठ कांप रहे थे.

"डैम इट, आई से डैम इट!"

"उन्होंने मुझे पकड़ रखा था. . और मैं तुम्हारे पास. . ."

"इट इज ऑल राइट, जार्ज."

"ओ नो. . . इट इज नॉट ऑल राइट—" वह जैसे चीख रहा हो, पास की बेंच पर ऊंघता हुआ आदमी उठ बैठा और हमारी ओर देखने लगा.

"जार्ज, सुनो."

मैंने उसके कंधे पर हाथ रख दिया. बेंच के हत्थे पर उसका चेहरा दोनों हाथ के बीच दबा था और बार-बार हिल उठता था.

"आई वॉज अफ्रैड, टेरिब्ली अफ्रैड."

हम दोनों कांप रहे थे.

"अफ्रैड. . ."

मैं सामने देखता रहा. . . अंडर ग्राउंड का अंधेरा जैसे धीरे-धीरे हिल रहा हो—एक परदे के मानिंद जो अभी उठ जायेगा. मैं उस क्षण जार्ज से डरने लगा. खुद अपने से डरने लगा. मुझे लगा जैसे अब कभी उसकी ओर नहीं देख सकूंगा. उस क्षण मैं कोई भयंकर चीज कर सकता था—मैं उससे बहुत-कुछ कहना चाहता था, कुछ भी . . .किंतु अब हम दोनों एक संग होते हुए भी अचानक अकेले पड़ गये थे और वह रो रहा था और मैं कुछ भी नहीं कर सकता था. . . शायद इससे भयंकर और कोई चीज नहीं, जब दो व्यक्ति एक संग होते हुए भी यह अनुभव कर लें कि उनमें से कोई भी एक-दूसरे को नहीं बचा सकता, जब यह अनुभव कर लें कि बीती घड़ियों की एक भी स्मृति, एक भी क्षण उनके मौजूदा. . इस गुजरते हुए क्षण के निकट अकेलेपन में हाथ नहीं बंटा सकता, साथ नहीं हो सकता. . . .

तब हम चौंक गये. दूसरे प्लेटफार्म पर वॉरेन स्ट्रीट जानेवाली ट्यूब आ रही थी. जार्ज को इसी में जाना था. हमारे आस-पास की बेंचों पर ऊंघते हुए लोग सहसा उठ खड़े हुए. ट्यूब की तेज हेडलाइट में न्यू एक्टन की अगली सुरंग का अंधेरा जरा पीछे खिसक गया. सीढ़ियों से कुछ लोग भागते हुए नीचे प्लेटफार्म पर उतर रहे थे, ताकि वॉरेन स्ट्रीट जानेवाली आखिरी ट्यूब को पकड़ सकें.

जार्ज खड़ा हो गया. उसने एक बार भी मुझे नहीं देखा और दूसरे ऑटोमेटिक दरवाजे क्षण-भर के लिए खुले और भीड़ को अपने भीतर-निगलकर दूसरे क्षण ही बंद हो गये.

पहियों की भड़भड़ाती आवाज धीरे-धीरे मंद पड़ती गयी और फिर सब पूर्ववत शांत हो गया. सुरंग के जिस अंधेरे को ट्यूब की हैड लाइट ने पीछे खिसका दिया था, वह फिर वापस लौट आया.

सिर्फ प्लेटफार्म की खुली छत के परे न्यू एक्टन की रोशनियां अंधेरे में चुपचाप झिलमिलाती रहीं.

खंभे की आड़ में युवक ने कहा, "अगली गाड़ी से—" और उसे चूम लिया. लड़की की आंखें मुंद गयीं.

उसने देखा भी नहीं. . . .

और मुझे लगा जैसे मुद्दत से मैंने सिगरेट नहीं पी. □

—14ए/20 डब्लू. ई. ए. करोल बाग, नयी दिल्ली-110048.

चलते-चलते

साथ-साथ काम करनेवाले दो पत्रकार मित्रों की एक बुरी आदत थी, वह यह कि जब भी राज्य का कोई नया मुख्यमंत्री चुना जाता, वे दोनों नये मुख्यमंत्री के अगल-बगल खड़े हो जाते और तस्वीर खिंचवाते. वह तस्वीर अपने अखबार में प्रकाशन हेतु संपादक के पास भेज देते.

उनकी इस खास आदत से संपादक भली-भांति परिचित थे. यह बात उन्हें जरा भी पसंद न थी. पर, वे उन्हें सीधा कुछ बोल नहीं पाते थे.

एक बार, राज्य का मुख्यमंत्री बदल जाने के बाद, सदा की भांति वे पत्रकार मुख्यमंत्री के अलग-बगल खड़े हो गये और वह तस्वीर लेकर वे संपादक के पास गये. संपादक ने तस्वीर को निहारा, उंगली से इशारा करते हुए वे बोले, "इस बार की तस्वीर में बीचवाला ही व्यक्ति बदला है. कभी अगल-बगल वालों को भी तो बदल दिया करो. []

—वसंत खेडेकर

CC-0. In Public D...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"खींच ले ब्राह्मण की शिखा, खींच ले, परंतु यह शिखा नंद कुल की कालसर्पिणी है, यह तब तक न बंधेगी, जब तक नंद कुल निश्शेष न होगा." . . .और यह प्रतिज्ञा करनेवाले ब्राह्मण चाणक्य ने अपने शिष्य चंद्रगुप्त के शौर्य और अपनी कूटनीति के बल पर नंदवंश का विनाश कर किस तरह यवनों को नेस्तनाबूद कर टुकड़ों-टुकड़ों में बंटे समस्त आर्यावर्त को एक शासक, एक झंडे के नीचे ला कर, चंद्रगुप्त को सम्राट बनाया. . . प्राचीन भारत की दशा-दुर्दशा को उजागर करते प्रसादजी के ऐतिहासिक नाटक 'चंद्रगुप्त' का कथा रूपांतर—

चंद्रगुप्त

• जयशंकर प्रसाद

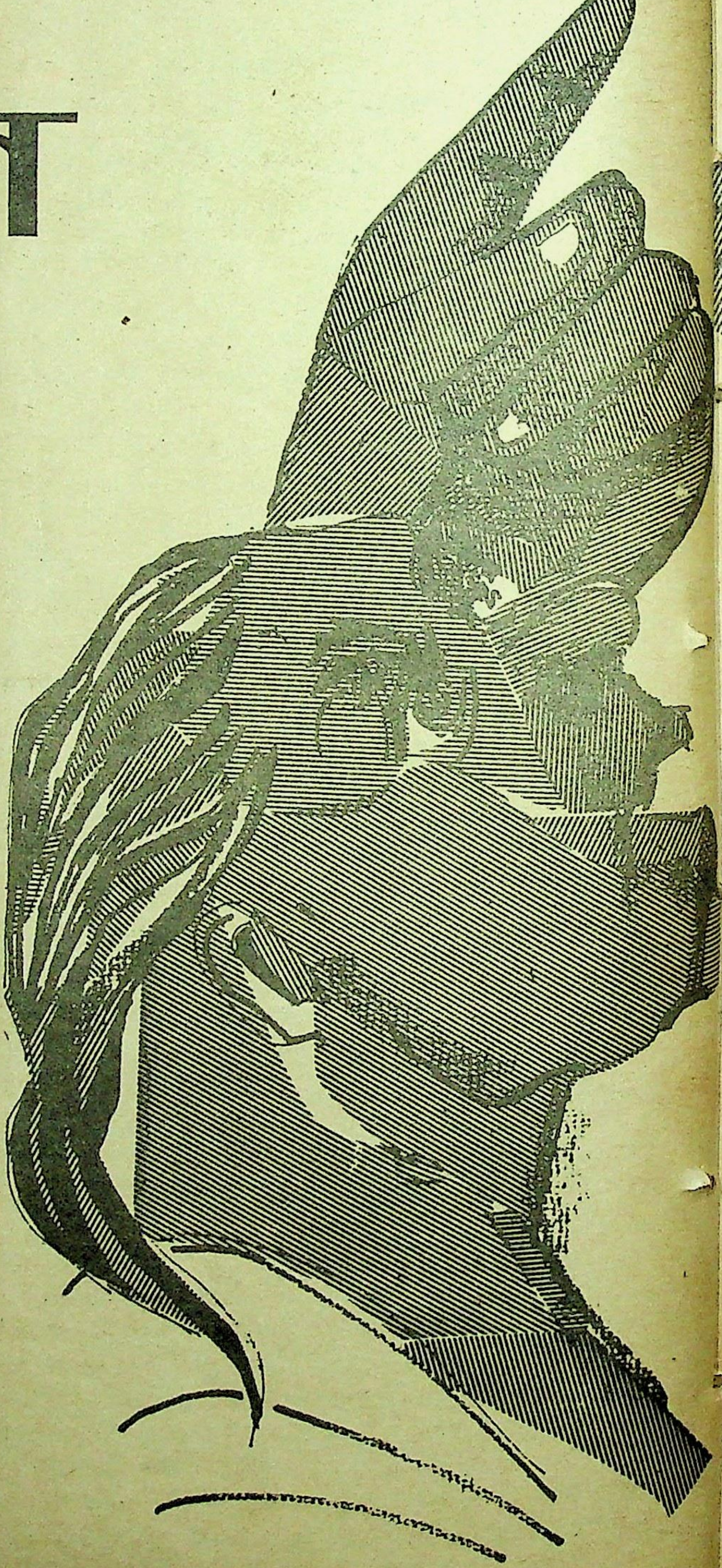

तक्षशिला के गुरुकुल मठ से स्नातक हुए चाणक्य को भावी स्नातकों को अर्थशास्त्र पढ़ाकर गुरुदक्षिणा चुकानी है. इसके पश्चात कुलपति उसे गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा दे देंगे. इन स्नातकों में सिंहरण ऐसा छात्र है, जिसका विचार है कि मालवों को अर्थ-शास्त्र से ज्यादा जरूरत अस्त्रशास्त्र की है, क्योंकि उत्तरापथ के खंड राज्य द्वेष से जर्जर हैं और उसे आशंका है कि शीघ्र ही भयानक विस्फोट होगा. वह चाणक्य को बताता है कि उसके जिम्मे तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने की आज्ञा है. इन दोनों की बातें गांधार नरेश के पुत्र आंभीक और पुत्री अलका सुनते हुए उधर से गुजरते हैं. आंभीक को लगता है कि चाणक्य गुरुकुल के शिक्षार्थियों को राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र करने के लिए उकसा रहे हैं. वह क्रोधोन्मत्त हो उठता है. अलका उसे समझाती है कि यह कोई विशेष बात नहीं है, जाने दो. लेकिन आंभीक उसे डपट देता है और कहता है, "यह ऐसी बात नहीं है कि जो यों ही उड़ा दी जाये. इसमें कुछ रहस्य है." उसकी बात सुन चाणक्य मुस्कराते हैं लेकिन सिंहरण उसे करारा जवाब देता है, जिससे उत्तेजित हो आंभीक तलवार निकाल लेता है और चीखकर कहता है, "युवक तुम बंदी हो."

तभी चंद्रगुप्त वहां आकर आंभीक को समझाते हुए कहता है, "प्रत्येक निरपराध आर्य स्वतंत्र है राजकुमार! उसे कोई बंदी नहीं बना सकता."

"तो तुम सब इस कुचक्र में लिप्त हो." ऐसा कहकर आंभीक सिंहरण को मृत्युदंड देने के उद्देश्य से उस पर तलवार का वार करता है जिसे चंद्रगुप्त अपनी तलवार पर रोकता है. आंभीक की तलवार गिर जाती है.

तब चाणक्य अलका की ओर उन्मुख होते हैं. "राजकुमारी, मैं गुरुकुल का अधिकारी हूं. मैं आज्ञा देता हूं कि तुम क्रोधाभिभूत कुमार को लिवा जाओ."

अलका और आंभीक के प्रस्थान करने पर चाणक्य चंद्रगुप्त से कहते हैं कि वह और सिंहरण शीघ्र ही तक्षशिला का परित्याग कर दें और समझें कि उनका पाठ समाप्त हो चुका. चंद्रगुप्त निवेदन करता है कि उसे सिंहरण, जो कि मालव है, के आत्मसम्मान की रक्षा के लिए यहीं रहने दिया जाये और शस्त्र परीक्षा भी ले ली जाये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

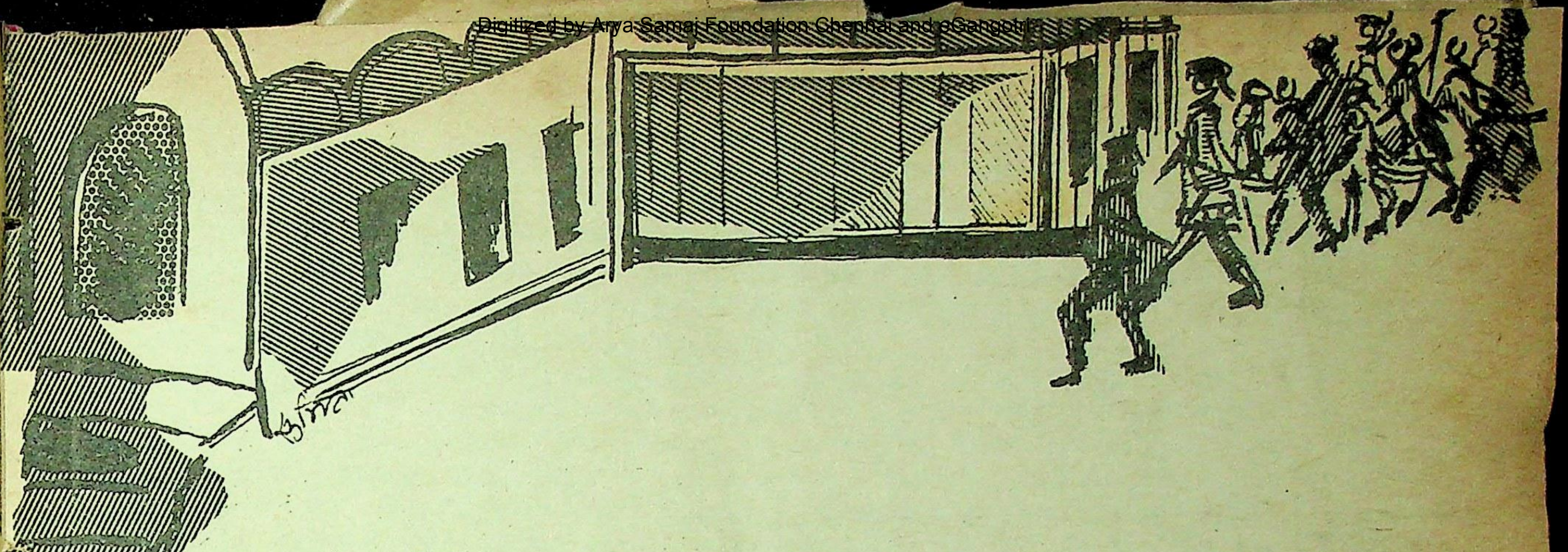

चाणक्य समझाते हुए कहते हैं, "आत्म-सम्मान इतने से ही संतुष्ट न होगा. मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे तभी वह मिलेगा. क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दिवसों में आर्यावर्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनंतर दूसरे विदेशी विजेता से पददलित होंगे. आज जिस व्यंग्य को लेकर इतनी घटना हो गयी है वह बात भावी गांधार नरेश आंभीक के हृदय में शल्य के समान चुभ गयी है. पंचनद नरेश पर्वतेश्वर के विरोध के कारण यह क्षुद्र हृदय आंभीक यवनों का स्वागत करेगा और आर्यावर्त का सर्वनाश होगा."

चंद्रगुप्त के यह विश्वास दिलाने पर कि ऐसा कुछ नहीं होगा, चाणक्य कहते हैं, "इसके लिए पहले तुम मगध जाकर साधन संपन्न बनो. मैं भी पंचनद नरेश से मिलता हुआ मगध आऊंगा."

चाणक्य पाटलिपुत्र के अपने घर में पहुंचते हैं तो पता चलता है कि उनके पिता चणक को राजा नंद ने राजद्रोह के आरोप में मगध से निर्वासित कर दिया है और अब उनका कुछ पता नहीं. चणक का मित्र शकटार बंदी है और शकटार के सातों पुत्र भूख से तड़पकर मर चुके हैं, सिर्फ एक पुत्री—सुवासिनी जो अभिनय करके अपना पेट पालती है, इस समय कहां है, पता नहीं.

"ओह," चाणक्य सोचते हैं, 'एक साथ दो-दो कुटुंबों का सर्वनाश मगध! मगध! सावधान! इतना अत्याचार सहना असंभव है. मैं तुम्हें उलट दूंगा. नया बनाऊंगा, नहीं तो नाश ही करूंगा.' सोच रहे हैं चाणक्य.

मगध में नंद की राजसभा में तक्षशिला से स्नातक हुए छात्र इकट्ठे हैं. नंद ने अमात्य वररुचि को आदेश दिया है कि वह स्नातकों की परीक्षा लें लेकिन वररुचि संकोच में हैं. उनका निवेदन है कि इन स्नातकों की परीक्षा लेना तक्षशिला के गुरुजनों का अपमान करना है. लेकिन नंद के दूसरे अमात्य राक्षस का विचार है कि यह ब्राह्मणों को सिर चढ़ाने जैसी बात है. राक्षस बौद्ध मत के समर्थक और उसी की महत्ता सिद्ध करने में लगे हैं.

इस बहस के दौरान सहसा प्रवेश किया चाणक्य ने और टोककर कहा, "बौद्ध धर्म की शिक्षा मानव व्यवहार के लिए पूर्ण नहीं हो सकती."

"मगर यह अनधिकार चर्चा करनेवाले तुम कौन हो?" आश्चर्य से नंद ने पूछा.

"मैं तक्षशिला से लौटा हुआ एक स्नातक ब्राह्मण हूं." चाणक्य ने सगर्व जवाब दिया, "यदि अमात्य राक्षस ने ब्राह्मण विनाश का विचार किया हो तो मातृभूमि की भलाई के लिए उसका परित्याग करें, क्योंकि राष्ट्र का शुभ चिंतन केवल ब्राह्मण ही कर सकते हैं. यवनों की विकट वाहिनी निषध पर्वतमाला तक पहुंच गयी है. तक्षशिला की भी उसमें अभिसंधि है. संभवतः समस्त आर्यावर्त पदाक्रांत होगा. उत्तरापथ में जो छोटे-छोटे गणतंत्र हैं, वे यवन बल को रोकने में असमर्थ होंगे. अकेले पर्वतेश्वर ने साहस किया है, इसलिए मगध को पर्वतेश्वर की सहायता करनी चाहिए."

"उद्धत पर्वतेश्वर अपने गर्व का फल भोगें," राक्षस ने पलटकर जवाब दिया, "और ब्राह्मण चाणक्य स्नातक होने से ही कोई साम्राज्य नीति समझ लेने का अधिकारी नहीं हो जाता."

"सच है बौद्ध अमात्य," चाणक्य मुस्कराये, "परंतु यवन आक्रमणकारी बौद्ध और ब्राह्मण का भेद न रखेंगे."

"चुप रहो," राक्षस ने गरजकर कहा, "चणक के पुत्र हो न, तुम्हारे पिता भी. . . ."

"क्या?" महराजा नंद आश्चर्य से उछल पड़े.

"उस विद्रोही ब्राह्मण की संतान? निकालो इसे यहां से."

प्रतिहारी के आगे बढ़ने पर चंद्रगुप्त ने नंद से प्रार्थना की कि चाणक्य का अपमान न किया जाये. इस पर नंद ने चंद्रगुप्त को भी बाहर निकालने के लिए आज्ञा दी. प्रतिहारी ने दोनों को निकालना चाहा तो चाणक्य गुस्से से बोले, "सावधान नंद! तुम्हारी धर्मांधता से प्रेरित राजनीति आंधी की तरह चलेगी. उसमें नंद-वंश समूल उखड़ेगा."

नंद का क्रोध उन्मत्त हो उठा. उसने प्रतिहारी को आदेश दिया कि चाणक्य की शिखा पकड़कर, धक्के मार बाहर निकाल दिया जाये. प्रतिहारी ने चाणक्य की शिखा पकड़ी और उन्हें घसीटने लगा. तब चाणक्य ने गरजकर कहा, "खींच ले ब्राह्मण की शिखा, खींच ले, परंतु यह शिखा नंद कुल की कालसर्पिणी है, यह तब तक न बंधेगी, जब तक नंद कुल निश्शेष न होगा."

नंद के आदेश पर चाणक्य को बंदी बनाकर मगध के बंदीग्रह में डाल दिया गया.

मगध के बंदीग्रह में बैठे चाणक्य सोच रहे हैं. 'एक बार निकल पाता तो दिखा देता कि इन दुर्बल हाथों में साम्राज्य उलटने की शक्ति है.'

तभी बंदी ग्रह का द्वार खुलता है और अमात्य वररुचि तथा अमात्य राक्षस प्रवेश करते हैं. राक्षस एक प्रस्ताव लेकर आया है कि चाणक्य तक्षशिला में मगध के गुप्तचर बनकर जाने को तैयार हों तो उन्हें मुक्त किया जा सकता है. चाणक्य प्रस्ताव ठुकरा देते हैं. राक्षस प्रस्ताव न मानने पर अंधकूप भेज देने की धमकी देता है कि तभी रक्तपूर्ण खड्ग लिये चंद्रगुप्त का प्रवेश होता है. चंद्रगुप्त ने प्रहरियों को मार डाला है. राक्षस को शोर न मचाने की धमकी देते हुए चंद्रगुप्त चाणक्य को लेकर बंदी ग्रह से निकल जाता है.

चाणक्य पर्वतेश्वर की राजसभा में उपस्थित हुए. उनका प्रस्ताव है कि अगर पर्वतेश्वर सैनिक सहायता दें तो चंद्रगुप्त के नेतृत्व में मगध राजा नंद के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया जाये. मगध को जीतने के बाद मगध की सेना आगामी यवन युद्ध में पर्वतेवर की पताका के नीचे युद्ध करे. पर्वतेश्वर चाणक्य के प्रस्ताव का उपहास उड़ाते हुए चाणक्य को आज्ञा देते हैं कि वह तुरंत राज्य की सीमा से बाहर चले जायें. चाणक्य जाते हैं और क्षुब्ध तथा आहत होकर पर्वतेश्वर से कहते हैं, "स्मरण रखना, जब यवनों के द्वारा समग्र आर्यावर्त पदाक्रांत होगा, उस समय तुम मुझे स्मरण करोगे."

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंद्रगुप्त चाणक्य के साथ भटकते-भटकते बुरी तरह थक चुका है. प्यास से कंठ सूख रहा है. चक्कर भी आ रहे हैं. पसीने से तर चंद्रगुप्त को जमीन पर लिटाकर चाणक्य उसके लिए पानी खोजने निकलते हैं. उसी समय एक व्याघ्र चंद्रगुप्त को खाने निकट आता है और उसी समय वहां से गुजरता यवन सेनापति सिल्यूकस यह दृश्य देख ठिठकता है. वह व्याघ्र को मार डालता है. चाणक्य पानी लेकर आते हैं और चंद्रगुप्त पर जल के छींटे देते हैं. सिल्यूकस दोनों को अपने शिविर में आमंत्रित करता है.

इस ग्रीक शिविर में एक बार सिकंदर की मुलाकात चंद्रगुप्त से होती है. मगध को नंद के अत्याचारी शासन से मुक्ति दिलाने के चंद्रगुप्त के उद्देश्य को जान सिकंदर प्रस्ताव रखता है कि यह कार्य चंद्रगुप्त सिकंदर की सेना की सहायता से संपन्न कर ले, लेकिन यवन लुटेरों का यह प्रस्ताव चंद्रगुप्त को स्वीकार नहीं. सिकंदर चंद्रगुप्त को बंदी बनाने का आदेश देता है, लेकिन चंद्रगुप्त उसके सैनिकों को घायल कर शिविर से निकल भागता है. सिकंदर के सेनापति सिल्यूकस की बेटी चंद्रगुप्त के तेज और साहस पर मोहित हो जाती है.

झेलम तट के वन पथ पर चाणक्य और चंद्रगुप्त सिंहरण की प्रतीक्षा कर रहे हैं. उनके साथ अपना घर छोड़ आयी गांधार नरेश की बेटी अलका भी है. तभी सिंहरण भी आता है. गांधार नरेश के साथ, जो अपने पुत्र आंभीक के विश्वासघात के कारण राज्य छोड़ आये हैं, अलका अपने पिता को देख प्रसन्न होती है और उन्हें वहीं स्थित झोंपड़ी में ले जाती है. चंद्रगुप्त और सिंहरण अगले कदम के लिए चाणक्य की आज्ञा चाहते हैं. चाणक्य का कहना है, "केवल शौर्य से काम नहीं चलेगा. एक बात समझ लो, चाणक्य सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसे ही हों. बोलो, तुम लोग प्रस्तुत हो?"

उन दोनों की स्वीकृति पर चाणक्य सलाह देते हैं कि सिंहरण और अलका नट और नटी बनें, चंद्रगुप्त बने सपेरा और चाणक्य ब्रह्मचारी का वेष धारण करेंगे. चारों लोग पर्वतेश्वर की सेना के साथ रहेंगे.

उधर नंद की पुत्री कल्याणी अपने पिता को किसी प्रकार तैयार कर पुरुष वेश में सेना साथ लेकर युद्ध क्षेत्र में आ डटी है. उसकी रणनीति यह है कि जब पवतेश्वर यवन सेना द्वारा चारों तरफ से घिर जाये उस समय उसकी सहायता कर उसे नीचा दिखाया जाये. पर्वतेश्वर की सहायता कर उसे नीचा दिखाने का कारण यह है कि नंद ने कल्याणी के विवाह का प्रस्ताव पर्वतेश्वर को भेजा था, जिसे पर्वतेश्वर ने यह कहकर ठुकरा दिया था कि "प्राच्य देश के बौद्ध और शूद्र राजा की कन्या से वह विवाह नहीं कर सकते." कल्याणी इसी अपमान का बदला लेने आयी है.

युद्ध क्षेत्र में पर्वतेश्वर से सामना होने पर पुरुष वेषी कल्याणी पर्वतेश्वर को बताती है कि मगध की बड़ी सेना का एक छोटा-सा वीर युवकों का दल यवनों से युद्ध करने अपनी स्वेच्छा से रणभूमि में आया है. पर्वतेश्वर हंसकर इस बात की आज्ञा देते हैं कि यह दल उनकी रक्षित सेना के साथ बना रहे.

इतने में चंद्रगुप्त, सिंहरण और अलका वेष बदलकर प्रवेश करते हैं और पर्वतेश्वर से अनुरोध करते हैं कि वह नागों का खेल देख ले. पर्वतेश्वर के पूछने पर सिंहरण और चंद्रगुप्त बताते हैं कि अभी-अभी वे लोग ग्रीकों के शिविर से लौटे हैं, कि यवनों के भाले भारतीय हाथियों के लिए वध समान हैं, कि रातों-रात यवनों की सेना वितस्ता नदी को पार कर चुकी है और अब समीप ही है. वह पर्वतेश्वर को सावधान होकर सैन्य परिचालन करने की सलाह देते हैं और उसके इस संदेह को मिटा देते हैं कि वे गुप्तचर हैं. पर्वतेश्वर उन्हें शिविर में ही रहने का हुकम दे उद्विग्न भाव से रणभूमि में प्रवेश करता है. उसके चले जाने पर कल्याणी चंद्रगुप्त को पहचान लेती है, मगर चुप रहती है. वह सिर्फ एक सवाल करती है, "चंद्रगुप्त, यदि मेरी मगध सेना तुम्हें विद्रोही जानकर बंदी बनाये?"

चंद्रगुप्त ने जवाब दिया, बिना संकोच के, "बंदी सारा देश है राजकुमारी, मुझको इसकी चिंता भी नहीं है, परंतु राजकुमारी का युद्ध क्षेत्र में आना अनोखी बात है."

चंद्रगुप्त के जवाब से प्रसन्न और उस पर पहले से मोहित कल्याणी अपनी सेना को चंद्रगुप्त के अधीन रखने का प्रस्ताव करती है, जिसे चंद्रगुप्त सहर्ष स्वीकार करता है.

उधर युद्ध क्षेत्र में यवनों के साथ लड़ते पर्वतेश्वर की मदद के लिए आया सिंहरण घायल होकर गिरता है. दूसरी ओर से चंद्रगुप्त और कल्याणी सैनिकों के साथ आते हैं और सिकंदर युद्ध बंद करने का आदेश देता है, क्योंकि पर्वतेश्वर युद्ध में घायल होकर गिर पड़ा है. सिकंदर पूछता है, "भारतीय वीर पर्वतेश्वर, अब मैं तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करूं." रक्त पोंछते हुए पर्वतेश्वर ने सगर्व जवाब दिया, "जैसा एक नरपति दूसरे नरपति के साथ करता है."

सिकंदर मैत्री चाहता है, लेकिन चंद्रगुप्त और कल्याणी पर्वतेश्वर से अनुरोध करते हैं कि वह युद्ध जारी रहने दें, उनकी सेना यह युद्ध कर लेगी. पर्वतेश्वर के इनकार करने पर कल्याणी पुनः स्त्री वेष में आ जाती है और विक्षोभ के साथ कहती है, "तुम्हारे पतन में तुम्हारी रक्षा न करने से निराशा हुई. जाती हूं मैं."

यह जानकर कि जाती हुई युवती मगध की राजकुमारी कल्याणी है, पर्वतेश्वर गहरे दुख और अपमान से बुदबुदाता है, "ओह पराजय! निकृष्ट पराजय!" सिकंदर आश्चर्य से कल्याणी और चंद्रगुप्त को जाते हुए देखता है. अलका घायल सिंहरण को उठाने आगे बढ़ती है कि तभी आंभीक आकर दोनों को बंदी बना लेता है.

इधर मालवों के स्कंधावार की युद्ध परिषद में मालव सेना के बलाधिकृत सिंहरण, आर्य चाणक्य और अन्य सेना नायकों के विचार विमर्श के उपरांत आम सहमति से चंद्रगुप्त को मालवों और शूद्रकों की सम्मिलित सेना का नायक बना दिया गया है. उधर पर्वतेश्वर के पास सिकंदर का निवेदन नहीं, आदेश पहुंचा है कि आठ सहस्त्र अश्वारोही लेकर रावी तट पर मिलो.

पर्वतेश्वर के रावी तट पर पहुंचने पर अलका एक नाव में सवार हो भाग निकलती है और सिंहरण तथा चंद्रगुप्त आदि के शिविर में आ मिलती है. वह उन्हें सावधान करती है कि पर्वतेश्वर ने प्रतिज्ञा भंग कर दी है और सिकंदर की सहायता के लिए आ गया है.

राजकुमारी कल्याणी मगध वापस जाना चाहती है, क्योंकि अमात्य राक्षस उसे लेने आ पहुंचा है. लेकिन उसके वापस जाने का मतलब है उसके साथ आयी सेना का भी वापस लौटना. चाणक्य कल्याणी को रोकने के लिए एक चाल चलते हैं. वह कल्याणी से कहते हैं कि उसके चले जाने से चंद्रगुप्त का हृदय टूट जायेगा, क्योंकि चंद्रगुप्त कल्याणी से प्रेम करते हैं और राक्षस से कहते हैं कि वह भी इस वक्त अपने साथ लायी नयी सेना के साथ यहीं रहे. राक्षस के न मानने पर चाणक्य पैंतरा बदलते हैं, "सोच लो, इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है. मैं आज भी मगध को स्नेह करता हूं और उसे हत्यारों से बचाना चाहता हूं." राक्षस को विचार करने का वक्त दे चाणक्य ताजा समाचार लेने रणक्षेत्र में जाते हैं और लौटकर राक्षस को बताते हैं, "राक्षस! सिंह पिंजड़े में बंद हो गया है. जल यात्रा में इतने विघ्न उपस्थित किये चंद्रगुप्त ने कि सिकंदर को स्थल मार्ग से मालवों पर आक्रमण करना पड़ा. अपनी अतीत की विजयों पर फूलकर उसने ऐसा किया, किंतु जा फंसा उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंगुल में. अब इधर शुद्रकों और मागधों की तुम्हारी नवीन सेना से उसको बाधा पहुंचानी होगी. तुम अपनी संपूर्ण सेना लेकर विपाशा के तट की रक्षा करो और मैं क्षुद्रकों को साथ लेकर पीछे से आक्रमण करने जाता हूं."

"अगर मैं यह प्रस्ताव स्वीकार न करूं तो?" राक्षस ने पूछा.

"तो तुम्हारा अनिष्ट होगा." चाणक्य के उर्वर मस्तिष्क ने नयी चाल फेंकी. "नंद को अपनी प्रेमिका सुवासिनी से तुम्हारे अनुचित संबंध का विश्वास हो गया है. सोच लो कि अभी तुम्हारा मगध लौटना ठीक होगा क्या?" चाणक्य तीर-सा छोड़ तेजी से निकल जाते हैं और राक्षस का सिर घूमने लगता है. उसके पास चाणक्य का प्रस्ताव स्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है. मालवा दुर्ग पर सिकंदर का आक्रमण भीतर से अलका और सिंहरण निष्प्रभावी बनाते हैं और युद्ध में सिकंदर घायल होता हैं, लेकिन इस बीच दुर्ग का द्वार टूट जाता है और यवन सेना भीतर घुसती है. उस सेना के पीछे ही घुसती है मार-काट मचाती चंद्रगुप्त की सेना. यवन सेनापति सिल्यूकस ने एक बार चंद्रगुप्त को व्याघ्र से बचाया था, इसलिए चंद्रगुप्त सिल्यूकस को प्रतिदान स्वरूप सिकंदर के साथ वापस लौट जाने की सहमति देता है. यवन सेना की वापसी पर चंद्रगुप्त का जयघोष होता है. यह सब सुन राक्षस चाणक्य की बुद्धि पर आश्चर्य प्रकट करता है.

इस समूचे प्रकरण की जानकारी पर्वतेश्वर को मिली तो वह बौखला गया. अपमान से उसका चेहरा काला पड़ गया. उसने छुरा निकालकर आत्महत्या करनी चाही कि तभी चाणक्य ने आकर उसे रोक दिया और कुटिलता से कहा, "पौरव, ब्राह्मण राज्य करना नहीं जानता, करना भी नहीं चाहता. हां, वह राजाओं को बनाना जानता है. इसलिए अभी तुम्हें राज्य करना होगा. जिन यवनों ने तुमको पददलित और अपमानित किया, उनसे प्रतिशोध लेना अभी बाकी है. तुम राज्य करो. सिंहरण को अपना भाई समझो और अलका को बहन. तुम्हारा दुश्मन सिर्फ सिकंदर है, जो अपनी लूट-पाट को साम्राज्य के रूप में देखना चाहता है. चाणक्य जीते जी यह न होने देगा."

पर्वतेश्वर चाणक्य के वचनों से प्रभावित हो चाणक्य की आज्ञा मान सिर झुका लेता है.

इसके बाद आर्य चाणक्य अमात्य राक्षस के पास पहुंचे और बोले, "अब तुम और कल्याणी मगध लौट सकते हो. और हां, तुम्हारी प्रेयसी सुवासिनी को नंद ने कारागार में डाला हुआ है. मैं कोशिश करूंगा कि उसे मुक्त कराकर तुमसे भेंट करा दूं, लेकिन इसके लिए तुम्हारी पहचान चाहिए."

राक्षस सहर्ष चाणक्य को अपनी मुद्रा सौंप देता है और कल्याणी के साथ प्रस्थान कर जाता है.

रास्ते में राक्षस को अपना विश्वस्त अनुचर मिल गया, जिसने सूचना दी कि आर्य चाणक्य ने धोखा दिया है. न तो महाराज नंद ही राक्षस से नाराज हैं और न ही सुवासिनी कारागार में है.

"ओह! चाणक्य की चाल!" राक्षस ने अपना माथा पकड़ते हुए कहा, "मेरी मुद्रा दिखाकर कहीं सुवासिनी के साथ कोई अत्याचार न हो. मुझे शीघ्र पहुंचना चाहिए. मैं चाणक्य के हाथों की कठपुतली बनकर मगध का नाश नहीं कर सकता. चाणक्य मगध में विद्रोह कराना चाहता था, ओह! मेरी मूर्खता!"

राक्षस के पहुंचने पर नंद का चेहरा खिल गया, सुवासिनी का भी. नंद ने सुवासिनी के साथ राक्षस के विवाह की तैयारियां कर दीं. राक्षस को संतोष हुआ कि मगध का अनिष्ट टल गया.

अब चाणक्य ने एक और चाल चली. उसने मालविका को राक्षस द्वारा दी गयी मुद्रा सौंपी और कहा, "लो, यह मुद्रा और यह पत्र. राक्षस का विवाह होने के ठीक एक घड़ी पहले नंद के हाथ में देना और कहना कि वह पत्र अमात्य राक्षस ने बहुत दिन पहले सुवासिनी को देने को कहा था, लेकिन मैं रास्ते में बीमार हो गयी, इसलिए विलंब हुआ. अब चूंकि राक्षस यहां आ गये हैं, इसलिए उनका यह पत्र उन्हें ही लौटाने आयी हूं. और सुनो, तुम नर्तकी बनकर जाओ, नर्तकी बन सकती हो न?"

"हां, मैं नृत्यकला जानती हूं." मालविका ने जवाब दिया और चली गयी. तब चाणक्य ने मुड़कर अलका से कहा, "मैं चाहता हूं कि सब सेना वणिकों के रूप में धीरे-धीरे कुसुमपुर में इकट्ठी हो जाये. वहीं राक्षस का ब्याह होगा और उसी दिन होगा विद्रोह और उसी दिन चंद्रगुप्त राजा बनेगा."

चाणक्य ने जैसा सोचा था, वैसा ही हुआ. मालविका के हाथ चाणक्य द्वारा भेजा पत्र और राक्षस की मुद्रा देख नंद क्रोध से पागल हो गया. उसने मालविका को बंदी बनाने के आदेश के साथ ही यह आदेश भी दिया कि राक्षस और सुवासिनी को, जिस भी अवस्था में वे हों, उसी अवस्था में पकड़ लाओ. इधर क्रोधोन्मत्त नंद बड़बड़ा रहा था कि "आज सबको एक साथ सूली पर चढ़ा दूंगा." और उधर कुसुमपुर के प्रांतपथ में चाणक्य ने पवर्तेश्वर को आदेश दिया कि वह कुछ चुने हुए अश्वारोहियों के साथ कुसुमपुर पहुंचे. चंद्रगुप्त जब भीतर से युद्ध प्रारंभ करे, तब पर्वतेश्वर नगरद्वार पर आक्रमण करे. इस बीच चाणक्य के आदमी एक गुप्त गुफा द्वार से नंद के बंदीगृह में कैद चंद्रगुप्त के पिता मौर्य, मालविका, शकटार, अमात्य वररुचि और चंद्रगुप्त की जननी को मुक्त करा लाये थे. उनके आगमन के थोड़ी देर ही बाद चंद्रगुप्त आता है और माता-पिता के चरण छूता है. और थोड़ी देर में, कुसुमपुर के कुछ क्रुद्ध-क्षुब्ध नागरिक वहां आते हैं, जो इस बात पर उत्तेजित हैं कि नंद ने राक्षस और सुवासिनी को ब्याह की वेदी से घसीट मंगवाया. चाणक्य चंद्रगुप्त को सावधान करते हैं, "देखो, यही अवसर है तुम लोगों के भीतर जाने और विद्रोह फैलाने का. नागरिक भी आ रहे हैं." सब अलग-अलग अपने-अपने मोर्चों की ओर जाते हैं.

नंद को विश्वास दिलाने की राक्षस की तमाम कोशिशें असफल रहीं, क्योंकि मालविका ने जो पत्र नंद को सौंपा था, उसके साथ राक्षस की मुद्रा भी थी. पत्र में लिखा था, 'सुवासिनी, उस कारागार से शीघ्र भागो. मैं उत्तरापथ में नवीन राज्य की स्थापना कर रहा हूं. नंद से बाद में निपट लिया जायेगा.' लेकिन इससे पूर्व कि नंद राक्षस को अंधकूप भेजने का आदेश देता, चाणक्य की नीति के तहत विक्षुब्ध नागरिकों के साथ शकटार प्रवेश करता है. नंद उछल पड़ता है और बड़बड़ाता है, "सब के सब विद्रोही." वह सब को बंदी बनाने का आदेश देता है, लेकिन तभी अपने सैनिकों को साथ ले चंद्रगुप्त वहां पहुंच जाता है. नंद बौखलाकर खड़ा हो जाता है और अपने सैनिकों से चीखकर कहता है, "सैनिको, राज सिंहासन संकट में है. दिखा दो इन विद्रोहियों को नंद की निष्ठुरता."

भयंकर युद्ध होता है, जिसमें राजपक्ष के लोग मारे जाते हैं और एक सैनिक आकर सूचना देता है कि नगर के ऊपर आक्रमण हुआ है. युद्ध करते-करते चंद्रगुप्त नंद को बंदी बना लेता है और तब प्रवेश करते हैं आर्य चाणक्य और गव से कहते हैं, "नंद, शिखा खुली है. फिर खिंचवाने की इच्छा हुई है, इसीलिए आया हूं." नागरिकों की भीड़ में 'नंद का वध करो' का शोर मचता है. इसी शोर के बीच शकटार नंद के करीब पहुंच जाता है और पूरे वेग के साथ नंद की छाती में छुरा घुसेड़ देता है. सब स्तब्ध रह जाते हैं और इस अटूट स्तब्धता के ऊपर शकटार का स्वर गूंजता है, "इसने मेरे सात बेटों की हत्याएं की हैं, यदि नंद सात जन्मों में मेरे ही द्वारा मारा जाये तो मैं उसे क्षमा कर सकता हूं. मगध नंद के बिना भी जी सकता है."

इसके बाद राक्षस, वररुचि, शकटार, चाणक्य और चंद्रगुप्त की सम्मिलित परिषद की घोषणा तमाम नागरिक करते हैं और चंद्रगुप्त को सर्वसम्मति से मगध का सम्राट नियुक्त करते हैं. आर्य चाणक्य के आदेश पर अमात्य राक्षस चंद्रगुप्त को सिंहासन पर बिठाता है. □

कथा रूपांतर : धीरेंद्र अस्थाना

CC-0. In Public Domain...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जंगल कट रहे हैं

इकबाल मजीद

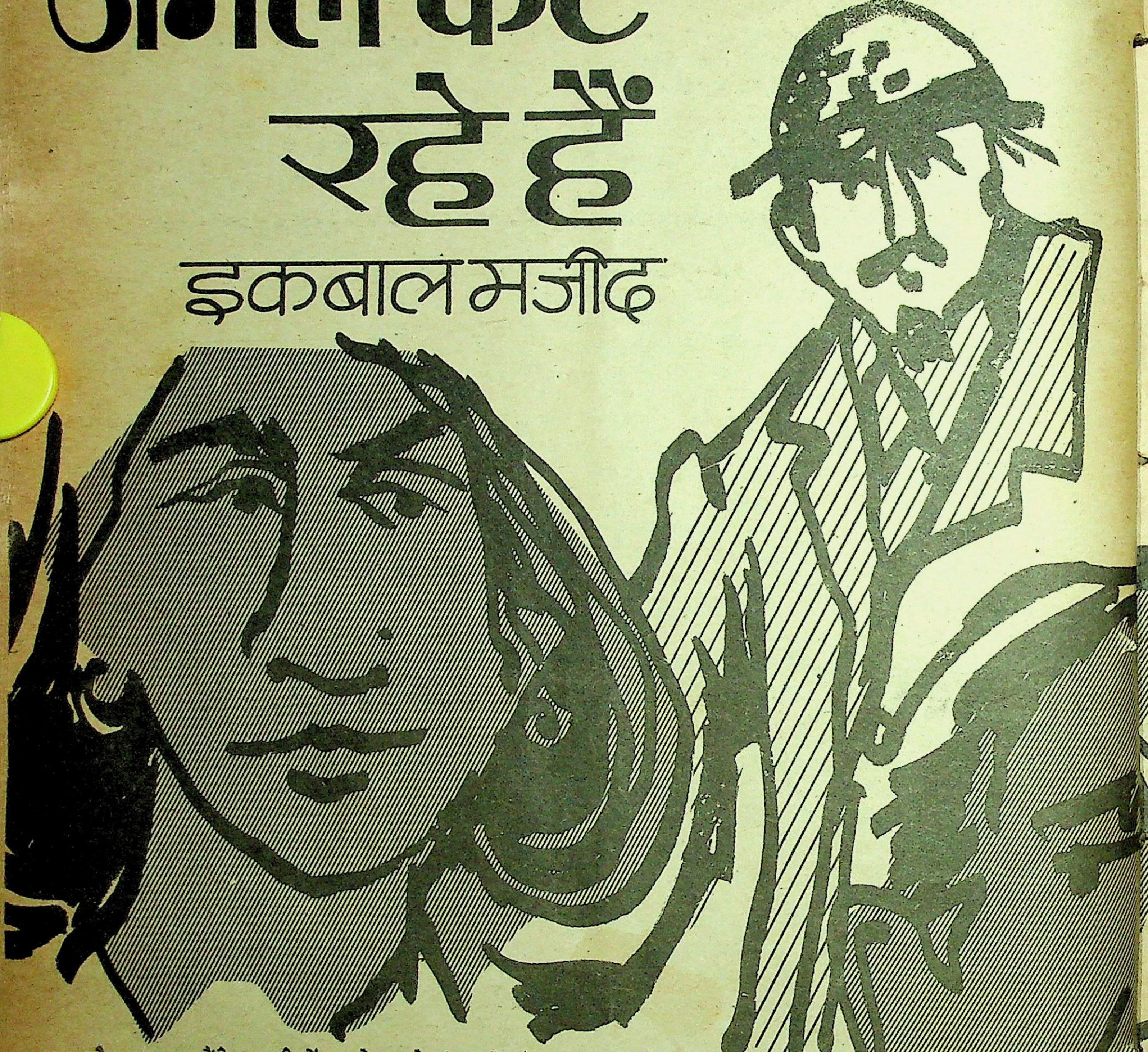

सुख और दुख क्या हैं? आदमी में चुपके-चुपके अंदर ही अंदर क्या सुलगता रहता है जो यकबारगी भड़क कर सब जला डालता है?—इंसान के भीतर दहकता यह जलजला सिर्फ दो रोटियों का सवाल है या फिर धर्म, संप्रदाय और जात-पात के तहत आदमी में पनपती उस भूख का जो चाहे प्रेम हो, चाहे राजनीति हर सूरत में दबदबा बनाये रखना चाहता है?—मुस्लिम परिवेश में व्याप्त राजनीतिक विसंगतियों को एक हत्या के माध्यम से रेखांकित करती कहानी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी को हरदम और हर घड़ी चौकस रहना चाहिए. यह बात कुदरतुल्ला की समझ से बहुत परे थी. आम तौर पर लोग यह नहीं जानते कि उनके आगे भी आदमी हैं और पीछे भी आदमी हैं उसी तरह जिस तरह कौमों के आगे भी कौमें हैं और कौमों के पीछे भी कौमें हैं.

कुदरतुल्ला का बाप जो दिल के दौरे में मर गया इतना जरूर जानता था जितना उसके लिए जानना जरूरी था. अजमतुल्ला अपने साथ अपना सामान कब्र में ले गया. फिर कुदरतुल्ला की समझ से जो बात परे थी वह कब तक परे रहती कि कहीं सोने का एक शहर चमक रहा है जिसका सदर दरवाजा सिर्फ एक है और चोर दरवाजे बहुत हैं. और सोने के उस जगमगाते शहर में दाखिल होने का रास्ता तलाश किया जाता रहा है कि आगे भी आदमी हैं और पीछे भी आदमी हैं. . .

कुदरतुल्ला के दादा ने जो इल्म सीखा था वह कुदरतुल्ला के बाप के काम न आया. कुदरतुल्ला भी अपना इल्म आप हासिल कर रहा था.

उसके पास इल्म ही इल्म था कि पूरी बस्ती में गिरती हुई खमीदा (झुकी हुई) कमर इमारतें थीं, अंधेरी गलियां थीं, गलियों की तरफ खुलनेवाले संडास के मुंह थे और उनमें बिजबिजाते हुए कीड़े थे और सोयी-सोयी सुबह थी और बुझी-बुझी शामें थीं और दो मस्जिदें थीं और मस्जिदों में मुअज्जिन थे और मुअज्जिनों के सामने लाउडस्पीकर थे और लाउडस्पीकरों के सामने बुर्केवाली उम्र-रसीदा बेवाएं थीं, टाट के पर्दे थे, पर्दों के पीछे खट्टे-खट्टे कैथे खानेवाली जवान लड़कियां थीं जो मिडिल से आगे नहीं पढ़ी थीं, वो औबाश (लोफर) लौंडे थे जो न मस्जिदों के काम के थे और न स्कूलों के, न कारखानों में जाते थे और न दुकानों पर बैठते थे. गंदे-गंदे चायखानों में ऊंघते हुए वो सीधे-साधे मुसलमान थे जो दफ्तरों में बाबू थे या चपरासी, कचहरियों में मुंशी थे या म्यूनिसिपिल्टी में प्लंबर, साइकिल का पंक्चर बनाते थे या गैराजों में गाड़ियां धोते थे, बसों में जेब काटते थे या सिनेमा के टिकट ब्लैक करते थे. प्राइवेट डाक्टरों के कंपाउंडर थे या कंपाउंडरी करते-करते खुद डाक्टर बन गये थे—फिर कसाई थे, बकरा कसाब थे, सब्जी फरोश थे, जूते बनानेवाले कारीगर थे, जिल्दसाज थे, दफ्तरी थे, स्कूटर मेकेनिक थे, हलवाई थे, बिसाती थे परचून के दुकानदार थे. पतली-पतली गलियां और कूचे थे, कूचे के मकानों की छतों से उठता हुआ गीली लकड़ियों का धुंआ था और नीम के चंद दरख्त थे और दरख्तों की शाखों पर झूमती हुई गमगीन शामें थीं. और शामों के झुटपटे में बसेरे को लौटते हुए बेशुमार परिंदे थे—और उन्हीं दरख्तों के उस पार उस उजड़ी हुई मुफलिस बस्ती में एक बेजोड़ और बेमेल कोठी थी कि रंग जिसका जाफरानी था; जिसमें मेहराबें थीं, कंगूरे थे, कद्देआदम बेल्जियम के शीशों के दर थे, बड़े-बड़े झाड़-फानूस थे, सब्जा था, क्यारियां थीं, क्यारियों में सतरंगे परोंवाले मोर नाचते थे और कोठी के सदर दरवाजे पर 'हाजा मिन फजलेरब्बी' का कत्बा था और नीचे पोर्टिको के सामने से अंदर आती हुई एक गैलरी थी और गैलरी में गर्मी से जुबानें निकाले हांफते हुए भारी जबड़ोंवाले कुत्ते थे और कुत्तों की मटरगश्ती के लिए बहुत बड़े अहाते के बाद चहारदीवारी थी और चहारदीवारी के दरमियान इस्तादा (खड़ी हुई) जाफरानी कोठी का एक पिछवाड़ा था जो अपनी गंदगी उस बस्ती की तरफ फेंकता था कि जिधर नीम के दरख्त थे और दो मस्जिदें थीं और मजिस्दों में मुअज्जिन थे और मुअज्जिनों के सामने लाउडस्पीकर थे और लाउडस्पीकरों के सामने हाफिज कुदरतुल्ला का घर था और घर की दहलीज पर एक सत्तर साला बेआसरा मुसलमान फकीर की सदा थी जो दर्दभरी आवाज में मौलाना रूम का शेर पढ़ रहा था. . .

आन के लुत्फे-खीश रा इजहार कर्द
बा खलीलश नार रा गुलजार कर्द

[उसने (खुदा ने) कि अपनी मेहरबानी की तो खलील (पैगंबर हजरत इब्राहीम की उपाधि) के लिए आग को गुलजार किया.]

वह बाप, जिसने कुदरतुल्ला को घर से यह कहकर निकाल दिया था कि वह हाफिज और मौलवी होकर हिंदू आकाओं की जूतियां सीधी करता है, जब मर गया तो कुदरतुल्ला ने पलंग पर पड़े-पड़े एक कागज के टुकड़े पर एक मोटी-सी भारी-सी गाली लिखी थी, गाली के अलफाज इस कदर खुशशकल थे जितनी उसकी जवान सौतेली बहन शौकतजहां. उन लफ्जों की गोलाइयां शौकतजहां के जिस्म की गोलाइयों के मानिंद पुरकशिश थीं और फिर यह हुआ था कि कुदरतुल्ला को बहुत जोर का गुस्सा आया था और उसने उस गाली पर आड़ी-तिरछी लकीरें बनाकर उसे काटने की कोशिश की थी ताकि वह गाली पढ़ी न जा सके, मगर वह गाली उन लकीरों के पीछे से भी साफ पढ़ी जा सकती थी, उसी तरह जिस तरह जाफरानी कोठी के अहाते में पायी जानेवाली जगह-जगह से कटी-पिटी लाश आसानी से पहचान ली गयी थी कि वह शौकतजहां की लाश है!

पुलिस की जीपों के सायरन. . .

रिपोर्टर. . .

हलचल. . . हंगामा. . .

सियासी कत्ल. . . और फिर कोठी के मकीनों (निवासियों) को फंसाने की कोशिश. . .

शौकतजहां. . . !

जिसका रोयां भी दुखता तो कुदरतुल्ला का बाप तड़प उठता. दूसरी बीवी के पेट से होनेवाले बच्चों में सबसे चहेती औलाद शौकतजहां. . .

कुदरतुल्ला के बाप की आंखों में शौकतजहां उसकी खयाली हीरोइन थी.

रात-रात-भर जागकर एम. ए. की तालीम पायी.

जूडो कराटे सीखा. कभी तैराकी में हिस्सा लिया.

उजली-उजली-सी आंखोंवाली, निकलता हुआ कद, कदमों से लिपट-लिपट जानेवाली फतह (विजय) और कामरानी (सफलता) भरी चाल. बेझिझक और बेबाक, आवाज में चौंका देनेवाली हरारत-भरी एक

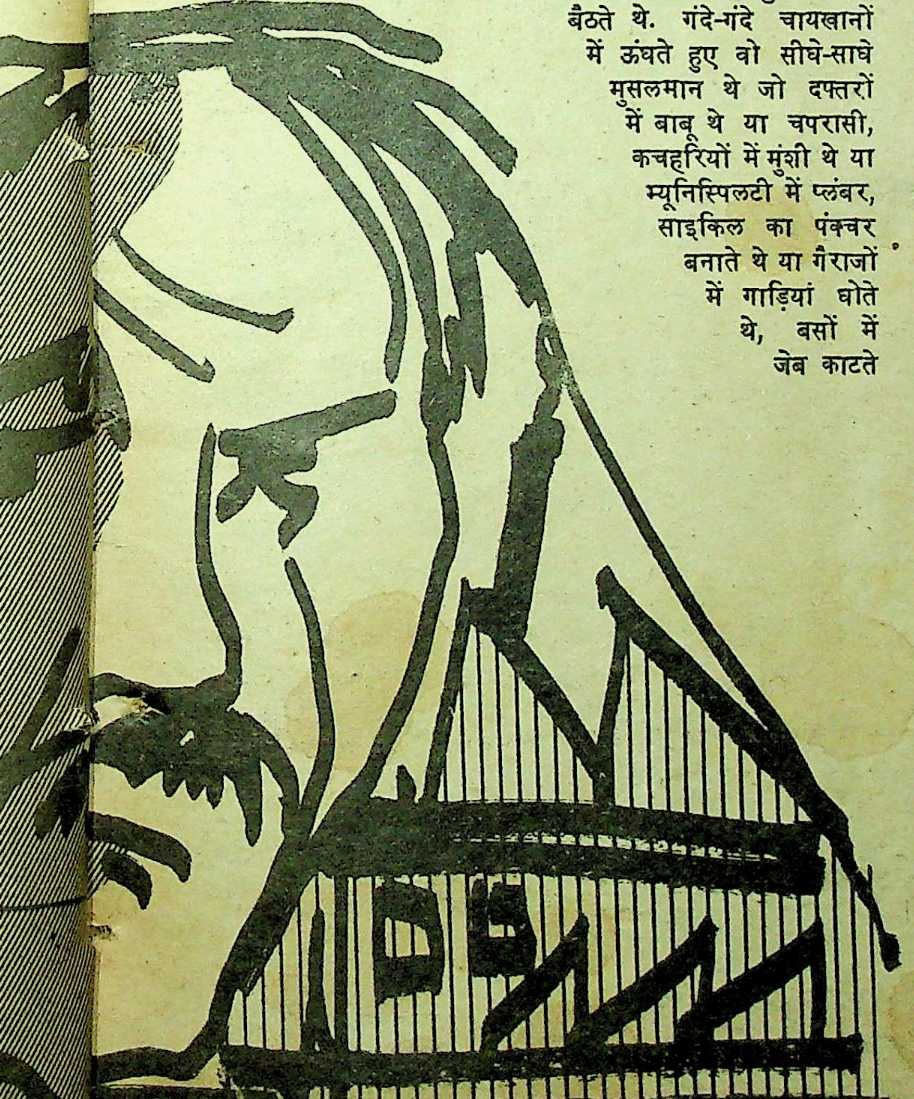

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लज्जतबख्श खनक, मुस्कुराती तो गालों में नन्हें-नन्हें गढ़े पड़ जाते. कातिलों के छक्के छूट गये होंगे, शायद वो उसे मरने के बाद भी काटते-पीटते रहे थे.

बेटी ने आंखें खोलकर बाप को कांग्रेस पार्टी के जलसों में दरी बिछाते देखा था.

नेताओं ने शौकतजहां को समझाया, मुसलमानों की समाजी और सियासी हालत बड़ी खस्ता है, उनके दरमियान रहकर उनकी फलाहो-बहबूद (कल्याण) के काम करने की सख्त जरूरत है कि इलेक्शन के वक्त काम भी आयेगा—और सबसे पहले चराग घर में ही जलता है इसलिए क्यों न यह काम उसी मोहल्ले से शुरू किया जाये जहां खमीदा-कमर बोसीदा इमारतें हैं, बुर्केवाली बेवाएं हैं, टाट के पर्दों के पीछे खट्टे-खट्टे कैथे खानेवाली जवान और कुंवारी लड़कियां है और गंदे-गंदे चायखानों में ऊंघते हुए रोज का रोज कुंआ खोदनेवाले मुसलमान कारखनदार और मजदूर हैं और कुछ ही दूर नीम के दरख्तों के उस पार सिर्फ एक जाफरानी कोठी है कि जिसके सदर दरवाजे पर 'हाजा मिन फजले रब्बी' लिखा है और जिसका मालिक शहबाज खां है.

पहले कुछ दिनों शौकतजहां एक सियासी पार्टी की खुली जीप में पीर गेट और नये शहर के दरमियान सड़कों पर भागती हुई देखी गयी थी.

शौकतजहां के नाम उसका बाप अपना सारा असासा पहले ही कर चुका था. शौकतजहां के पास यूं तो सब कुछ था कि सब कुछ, सब कुछ नहीं होता.

मंसब (पद), नामो-नमूद, (प्रतिष्ठा) हमसायों में बरतरी के लिए एक ऐसी तौकीर (मान्यता) जो सबके पास नहीं होती, शौकतजहां के पास भी नहीं थी. . .

वह चाहती थी अखबारों में उसकी तस्वीरें निकलें, जलसों-जुलूसों में नामी-गिरामी लोगों में उसका उठना-बैठना हो, उसके दरवाजे पर जीपों एंबेसडरों और फीयटों के हार्न बजें. वह ताजा और शगुफ्ता कहकहों से चाय की प्यालियों और मशरूबात (पेय) के गिलासों से अपने आरामदेह ड्राइंगरूम में आने-जानेवालों का इस्तिकबाल (स्वागत) करे. दबे, कुचले और सहमे हुए गरीब पड़ोसी उसे इज्जत से सलाम करें.

फिर वह खद्दर की साड़ी पहनने लगी.

फिर वह आवामी जलसों में डायस पर इंतजामात करते हुए देखी गयी.

फिर वह फैमिली प्लानिंग की हिमायत में मुसलमान करखनदारों के मजमे में तकरीरें करने लगी.

फिर वह झुग्गी-झोंपड़ियों में बच्चों को दूध तकसीम करवाने लगी.

फिर वह फसादातवाली अमन कमेटियों की मेंबर बनने लगी.

फिर वह शहबाज खां को अच्छी लगने लगी. फिर उसकी आंखों में गुलाबी डोरे पड़ने लगे. . .

. . . और फिर वह कत्ल कर दी गयी.

कुदरतुल्ला की दाढ़ी के कई बाल सफेद हो गये और होंठों पर पपड़ियां जम गयीं. जब वह कब्र में उतारी जा रही थी, कुदरतुल्ला कब्रिस्तान में बेरी के पेड़ के तने से लिपटा हुआ रो रहा था. मगर आंखों में आंसू न थे. इतना टूटकर मगर इस कदर दहशतजदा होकर ऐसा खामोश गिर्या (रोना) शायद कुदरतुल्ला ने जिंदगी में पहली बार किया था.

"तुम फिक्र मत करो भैया, कम्मो की शादी मैं करूंगी." सौतेले भाई की हर मुलाकात पर बहन का पहला जुमला यही होता.

एक रात उसने भाई से कहा था, "यहां कुछ भी गिड़गिड़ाने से नहीं मिलता. मुसलमानों के पास ताजमहल तो है, गोल्डन टेंपुल नहीं रहा. सिर्फ मानूमेंट से काम नहीं चलता कि सिर्फ खूबसूरत होना काफी नहीं. कोई अपने मुल्क से नफरत नहीं करता. हमें भी बहुत प्यार है अपने मुल्क से लेकिन अपने वुजूद की सलामती के लिए एक कुव्वत-बख्श तहरीक (आंदोलन), एक गलबा-आमेज मुदाफअत (बचाव), एक झंझोड़ देनेवाली मुहज्जब (सभ्य) मगर तारीखसाज हठधर्मी की जरूरत है. हिटलर की नजर जब कमजोर हो गयी तो उसने ऐनक लगाकर अपनी कमजोरी दूसरे के हवाले नहीं करनी चाही बल्कि बड़े हरूफ का टाइप राइज करवा दिया. मुझे पता है कैसे जिया जाना चाहिए. . .

मेरे परदादा को अंग्रेज अच्छे लगते थे,
मेरे दादाजी को गांधीजी अच्छे लगते थे,
मेरे बाप को नेहरूजी अच्छे लगे.
मगर अब. . ?

मुझे जानते हो कौन अच्छा लगता है? अंदर ही अंदर कहीं अच्छा लगता है जिसे मैं जोर से, ऊंची आवाज में नहीं कह सकती जबकि बहुत से लोग कह भी रहे हैं मगर बहुत से लोग क्यों कह रहे हैं मैं जानती हूं. वो जिसलिए कह रहे हैं उसमें कहीं कुछ गड़बड़ भी है, मैं उस गड़बड़ से अपने को बचाते हुए उसे पसंद करती हूं. . .

वह ईरान का बूढ़ा खुमैनी है.

मैं इसलिए पसंद करती हूं कि वह सुन्नी और शिआ दोनों से यह कहता है कि उन्हें एक-दूसरे की मस्जिदों में नमाज पढ़ना चाहिए. अल्लाह एक है, कुरान एक है, नबुव्वत एक है—

क्या तुम्हें नहीं लगता भैया कि जो मुंतशिर हो चुके हैं उन्हें सिमटना चाहिए, इसलिए सिमटना चाहिए कि शायद इसी बहाने कोई बेहतरी की शकल निकल सके कि ताजमहल तो है गोल्डन टेंपुल नहीं है. मगर यह बात मैं जोर से इसलिए नहीं कह सकती कि मेरे बाप ने जिस नेहरू से मुहब्बत की थी, वह मुझमें अभी थोड़ा-थोड़ा जिंदा है. क्या पता कल वह मर जाये और मैं यही बात जोर से कहने लगूं. जो लोग जोर से कह रहे हैं उनके यहां शायद कुछ मर गया है. उन्हें शायद यह पछतावा नहीं कि कि बहैसियत मुसलमान वो अपनी पुरानी शनाख्त खो चुके. वह तो होना था. अपने मुल्क को नये सियासी और समाजी मानी देने के लिए इतनी कुर्बानी तो हमको देनी ही थी. दरहकीकत हमारी असल परेशानी यह है कि हमारी नयी शनाख्त क्या है. हम में रोज-ब-रोज क्या मरता जा रहा है. इसका पता करने की फुरसत किसको है? हम रोज-ब-रोज कितना कम पाकर कितना ज्यादा खो रहे हैं, हिसाब-किताब कहीं नहीं रखा जा रहा, समाजी इंसाफ के रजिस्टरों में भी नहीं. . .

. . . लेकिन तुम फिक्र मत करो भैया, कम्मो की शादी मैं करूंगी."

कुदरत से जब कुछ न बन पड़ा तो यकायक एक सियासी पार्टी का अखबार लिखने लगा. बेटा इसलिए बाप से नाराज था कि बाप चोरी के धंधे में जंगल से चुरायी हुई लकड़ी बेचता था, बाप इसलिए नराज हुआ कि बेटा बहुत ज्यादा दीनदार हो गया था. दोनों अलग हो गये मगर शौकत जहां तब भी कुदरत से मिलती रही. भाई के लिए सियासत रोज की मजदूरी थी और बहन के लिए एक शौक. एक के लिए यह थकन थी तो दूसरे के लिए ताजगी. दोनों की पार्टियों को मुसलमानों के वोट और शहबाज खां के रुपये की जरूरत थी.

शहबाज खां—जिसके पास एक जाफरानी कोठी भी थी.

और कोठी का पिछवाड़ा इधर खुलता था जिधर नीम के कुछ दरख्त थे और दरख्तों के उस पार दो मस्जिदें थी और मस्जिदों में जुमआ के खुतबे के बाद शहबाज खां की जानो-माल की दुआ की जाती थी कि शहबाज खां मिस्कीनों और यतीमों की परवरिश, हाजितमंदों की हाजित रवाई और बेसहारों की कफालत (भरण-पोषण) के लिए मशहूर था कि उसके फर्नीचर के कारखाने में 34 सिख 28 हिंदू और पौने दो सौ मुसलमान काम करते थे और सिर्फ चालीस पैसे दोपहर का लंच, जिसमें दो रोटी और तरकारी होती थी, कारखाने की कैंटीन से मिलता था और हर ईद पर 15 दिन की तनख्वाह हर एक को तक्सीम होती थी और मुसलमानों की कसीर (बड़ी संख्या) तादाद को देखते हुए शहबाज खां की मिल्लतनवाजी पर हर एक ईमान ला चुका था और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहबाज खां वैसे ही बड़ा मेहरबान था वह उन लोगों में था जो न जाने कब और कैसे रईस हो जाते हैं.

मगर. . . .

मगर शहबाज खां अकेला था कि बीवी मर चुकी थी. अकेला था कि उसकी वाहिद औलाद यानी उसकी आठ साला लड़की गोलियों का शिकार होकर देहरादून के बोर्डिंग में बैसाखियों पर चल रही थी. बहुत खाइफ (भयभीत) था कि दरवाजे और खिड़कियां मुकफ्फल करके (ताले डालकर) सोता था. हिरासां (भयभीत) था कि हसद (ईर्ष्या) दुनिया में हमेशा की तरह जिंदा थी और उस पर दो बार कातिलाना हमले कर चुकी थी.

भायं-भायं करती हुई कोठी की राहदारियां, गैरआबाद मगर सजे हुए कमरों के बारीक पर्दे और उनकी पुरअसरार सरसराहटें, बेकैफ सन्नाटों में कभी-कभी उसके कुत्तों की गुर्राहटें, उसे हर वक्त ऐसा लगता जैसे उसके पीछे कोई चल रहा है. उसे हर रात अपने आराम-देह बिस्तर पर लेटे-लेटे यूं महसूस होता जैसे रात में वह जो कुछ खा-पीकर लेटा है वह धीरे-धीरे उसके कलेजे को काट रहा है और थोड़ी देर में उसे उबकाई आयेगी और उसकी मसहरी के नीचे दूधिया रंग के दबीज कालीन पर उसका सुर्ख-सुर्ख कलेजा कट-कटकर गिरेगा.

जिस दिन शौकत जहां की लाश कोठी के अहाते में पायी गयी थी उसके कुछ ही दिन पहले से कोठी के गोरखा दरबान के होंठ सिल चुके थे. कोठी के लॉन के दूसरे किनारे पर बने छोटे-से क्वार्टर में अपनी अधेड़ उम्र की बीवी और बच्चों को अपने दरमियान लिटाकर गोरखा दरबान ने पहली बार अपने पुरसुकून पहाड़ी गांव को टूटकर याद किया था.

सुख और दुख क्या है. . .?

चैन की दो रोटियां खा लेने की तलाश में भटकता हुआ वह किस दोजख (नरक) में आन मरा.

अपनी बर्फीली चोटियां, अपने मासूम झरने, अपने घने देवदारों की छांव, अपने नन्हें-मुन्ने-से दुख और नन्हे-नन्हे से सुख छोड़कर वह यहां क्या तलाश करने आया था? दो रोटियां?

"सवाल हिंदू-मुसलमान का नहीं, सवाल दो रोटियों का है और कारखाने मिल्लत के जाबितों (नियमों) से नहीं रोटियों के उसूल पर चलते हैं." गोरखा ने खान मियां को शौकतजहां से कहते सुना था. शहबाज खां को उसके मिलनेवाले और मुलाजिम खान मियां कह-कर पुकारते थे—खान मियां मलीहाबादी पठानों जैसी रूप और रंग-तवाले, वजीह. फूलों में गुलाब और खानों में बिरियानी के आशिक अपने लॉन पर जलते-बुझते कुमकुमे सजाकर आंधियों में भी देगें खनखाते.

शौकतजहां शुरू-शुरू में जब उनसे मिली, वह उसको कोठी के अंदर नहीं लाये. कोठी के अहाते की क्यारियों की रविश के दरमियान टहल-टहलकर वह शौकत से बातें करते. मगर इस बार गोरखा के लब साकित थे कि शौकतजहां को वह अंदर लेकर गये थे.

"देखो शौकत तुम्हें पार्टी के लिए दस हजार चाहिए, ले लो. हर वह सिक्का जो हम देते हैं उसके बदले कुछ ले भी लेते हैं. लेकिन मुझे मिल्लते-इस्लामिया का खादिम (सेवक) मत कहलवाओ कि मेरे कारखाने में पौने दो सौ मुसलमान इसलिए नहीं कि मुझे उनकी परवरिश का शौक है—

शौकत, मैं कोई आलिम (विद्वान) नहीं हूं लेकिन अपने काम-भर की बातें जानता हूं. मैंने हेनरी फोर्ड की सवानेह-हयात (जीवनी) पढ़ी है, जिसने 1908 में मोटर का एक कारखाना कायम किया था. मेरे कारखाने में जो 24 सिख हजरात हैं, वो ज्यादातर माहिर कारीगर हैं और कारखाने को उतने ही माहिर कारीगरों की जरूरत है. जो 28 हिंदू हैं उनमें से कुछ दफ्तर के बाबू हैं और हिसाब-किताब देखते हैं और कारखाने के दीगर इंतजामात संभालते हैं. बाकी जो पौने दो सौ मुसलमान हैं वो अनस्किल्ड लेबर हैं जिनके पास कोई हुनर नहीं. उनमें कुछ जोर-पुश्त पहलवान हैं जो सिर्फ डराने-धमकाने के लिए रखे गये हैं. कुछ मजदूर मर्द और औरतें हैं और कुछ बच्चे हैं. हमारे कारखाने में कुछ काम ऐसे हैं जिनके लिए दोनों हाथ या दोनों पैरों की जरूरत नहीं, एक हाथ और एक पैर से भी काम चल सकता है. अभी कुछ दिन पहले हमने 11 ऐसे मजदूर भर्ती किये हैं जिनके सिर्फ एक हाथ या एक पैर है, दो अंधे भी है जो सिर्फ रेगमाल करते हैं. सरकार अपाहिजों का साल मना रही थी हमने भी सुर्खरूई (सम्मान) हासिल कर ली. लोग समझे हम बड़े खुदातरस हैं. शायद लोगों को मालूम नहीं कि खुदातरसी (दूसरों पर दया भाव) एक अलग मशगला है. कारखाने के हुनरमंद सरदार कारीगरों ने हमारे यहां काम करते-करते एक दिन खुद अपने कारखाने खोल लिये. लेकिन पौने दौ सौ बेहुनर मुसलमान मजदूरों में से जो जहां था वह वहीं आज भी है. कारखाने इसी तरह की कनाअत पर जीते हैं कि हमारे यहां कभी काम बंद नहीं हुआ. मजहब अच्छी चीज और हमारे लिए भी काम की चीज है लेकिन वह एक अलग किस्सा है—

शौकत तुम्हें सिर्फ इतना पता है कि हम दौलतमंद हैं और हमारे पास बेहिसाब पैसा है और तुम एक खूबसूरत बेबाक और तीखी-सी लड़की हो जिसकी आवाज में नुकरई खनक है और जिसकी जुंबिशों में गर्मजोशी है और जिसकी मुस्कुराहटों में और काफिराना गमजों (हाव-भाव) में दिलों को मसल देनेवाली कैफियत है. . . इतनी बेपनाह बनकर शाम के झुटपुटे में इस अकेली कोठी में अकेले मर्द से तुम मिलने आयी हो, मेरा सिर तुम्हारे कदमों में हैं,मेरी सारी दौलत ले लो लेकिन मेरी तनहाइयां दूर कर दो. यह भायं-भायं करती हुई कोठी की राहदारियां, मैं इनमें जगह-जगह दुनिया के अजीम संगतराशों के हाथों संगेमरमर पर तुम्हारी शबीह (छवि) उतरवाकर तुम्हारे कद के मुजस्समे (मूर्तियां) लगाऊंगा. मैं तुम्हारी सांसों का इत्र कशीदकर तुम्हारी जगमगाती आंखों के जुगनुओं से रोशनी मांगकर इन बेरंग और बेकैफ सरसराते पर्दों को मुअत्तर (सुंगधित) और मुनव्वर (प्रकाशमान) करके तुम्हारी गोद में सिर देकर सारी खिड़कियों और दरवाजों के कुफ्ल खोलकर क्यारियों से आनेवाली महकती हवाओं को अपने सीने में भरकर एक ऐसी नींद में डूब जाऊंगा जो सारी उम्र की जागी हुई आंखों को सुला देती है,

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा मदहोश कर देती है कि हर दर्द और हर टीस प्यारी लगती है, हर नामुरादी में मुराद की कलियां चिटक उठती है. कोई अंदेशा नहीं होता, कोई हिरास नहीं होता, कोई कातिल दबे पांव पीछे नहीं चलता बल्कि एक सरमस्ती (उन्माद) और सरशारी की जगमग करती बारात-सी आगे-आगे चलती है और तब ही, ऐसे ही हरे-भरे पलों में कजा (मौत) की नर्मोनाजुक तितली एक पल को आकर रुकती है और प्यार से रूह को बदन से उड़ाकर ले जाती है. मुझे दहशतों के अलाव में कतरा-कतरा पिघलने से बचा लो शौकतजहां, नहीं तो मैं तुम्हारे इस खूबसूरत सुडौल और बेपनाह जिस्म को कीमा-कीमा करके और इसके लोथड़ों से रिसते हुए गर्म-गर्म और जवान और कुंआरे और सरकश खून को अपने चुल्लू में भरकर अपनी आंखों पर, चेहरे पर, होठों पर, गर्दन पर, सीने पर मल-कर सारी रात तुम्हारी कटी-पिटी लाश के बाजू में धूनी रमाये रहूंगा ता-वक्ते-कि मेरे बरहना जिस्म पर तुम्हारे खून का भभूत मेरे अंग-अंग में दहकते हुए शोलों को खाकिस्तर (राख) न कर दे. . .

कोठी का मुहर-ब-लब (मौन) गोरखा दरबान अपने छोटे-से क्वार्टर में मुर्गी की तरह अपने बाल-बच्चों को अपने परों में समेटे सोच रहा था—

सुख और दुख क्या है. . .?

आदमी में चुपके-चुपके अंदर ही अंदर क्या सुलगता रहता है जो यकबारगी भड़ककर सब जला डालता है.

चैन से दो रोटियां खा लेने की तलाश में भटकता हुआ वह किस सुलगती हुई दोजख में आन मरा. कोठी के लान में बीसियों पुलिसवालों की वर्दियां और जीपें नजर आ रही थीं और जाफरानी कोठी दम-ब-खुद (मौन) आंखें फाड़े साकित (गतिहीन) खड़ी थी और कुदरतुल्ला की दाढ़ी के कई बाल सफेद हो गये थे और आंसुओं से खाली आंखें ऐसे तप रही थीं जैसे गर्मियों में उसके घर का छोटा-सा आंगन तपता था.

कुदरतुल्ला बकर-कसाब की दुकान पर एक दिन बैठा चाय पी रहा था जो बकर-कसाब ने उसको मंगाकर दी थी. अभी पाये छीले जा रहे थे कि बकर-कसाब कुदरतुल्ला से बोला था, "मियां आप पॉलिटिक्स में क्यों आ गये? कुरान कसम, बड़ा गंदा काम है. आप जैसे शरीफ आदमी को दो रोटियां तो कैसे भी मिल जातीं. आप चाहो कि लीडर बन जाओ, सुबह कुछ और शाम को कुछ. इस काम के लिए तो बड़ा चलता पुर्जा चाहिए. कहा चुपड़े में पड़ गये मियां, दुनिया भी खराब होगी और आकबत (यमलोक) भी. . .मुझे और कुछ तो पता नहीं, बस इतना बता दो कि आप जो कुछ करते हो क्या आपको खुद भी उस पर सच्चे दिल से ईमान है? क्या आप अल्लाह को गवाह करके कह सकते हो कि जो कुछ आप कर रहे हो वह सोलह आने ठीक है. . .?"

कुदरतुल्ला ने सीने में बहुत-सी सांस भरी और छोड़ दी कि ईमान कहीं नहीं था कि शहर-शहर, गली-गली और छतों-छतों और दरवाजों-दरवाजों सवाली ही सवाली थे, जिनको हर घर से उनके कश्कोल (कमंडल) में मुट्ठी-दो मुट्ठी तश्कीक (शंका), तनफ्फुर (घृणा), बेएतिमादी (अविश्वास) और बेयकीनी की भीख दे दी जाती थी. शाम के झुटपुटे में परिंदों के साथ अपने ठिकानों पर वापस होनेवाले दिन भर के थके-मांदे ये सवाली जब अपने घरों को पहुंचते और अपने-अपने कमंडलों की भिक्षा अपने-अपने दामनों में उंडेलते और अपने होंठों पर जमे दिन-भर के कड़वे-कसैलेपन पर अपनी जुबानें फेरते तो उनकी औरतें भी उन्हें मश्कूक नजरों से देखती हुई उनके पास से निकल जातीं और उनके बच्चे उनके अधूरेपन पर उनके खाम, लिसलिसे, नापुख्ता और गैर मुअइयन (अनिश्चित) वुजूद (अस्तित्व) पर दो पल ठहरकर पेशाब भी न करते और फिर रात उन्हें सुला देती और फिर सुबह उन्हें उठा देती और फिर दिन उन्हें थका देता कि किसी को किसी पर यकीन नहीं था कि बेयकीनी का मशगला ही सबसे बड़ा यकीन था.

शौकत ने कहा था—

भैया तुम्हें एक बात बताऊं.

जब मैं आम जनता के बीच जाती हूं तो बार-बार मुझे लगता है कि उन्हें सिरे से मेरे ऊपर यकीन ही नहीं रह गया है. शायद मैं उनको उनकी जैसी नहीं लगती और तब मुझे लगता है कि कहीं कुछ गड़बड़ है. कोई जबरदस्त लिंक रह गया है.

भैया क्या तुम्हें नहीं लगता कि हम जिस तबके और बिरादरी से ताल्लुक रखते हैं, हमारा जो माहौल और रिवायत है उसमें यह बॉब हेयर-वाली, कीमती सन-ग्लासवाली, आधे कूल्हे खुले साड़ीवाली, कुछ अंग्रेजी और कुछ बनावटी हिंदी बोलनेवाली शौकतजहां एक चलता-फिरता फ्रॉड नजर आती है. . .? मान लो ये कपड़े, यह चमक-दमक, यह मेकअप बदल भी दिया जाये और इसको एक प्रोफेशनल टच देकर जनता मार्का हुलिया बना दिया जाये तो भी हमारी आवाज से हमारी आंखों, लफ्जों, लहजों और हरकतों से इख्लास (निश्छलता) और अपनाइयत की वो लहरें नहीं फूटतीं जो दूसरों को हमारी तरफ रागिब (आकर्षित) कर दें. मैं किसी मखसूस पार्टी की बात नहीं कर रही. तुम तो बिल्कुल ही दूसरे सियासी मसलक (मत) के आदमी हो. बताओ तुम कितनों के लिए काबिले-कबूल हो? और वो तुम्हारे साथ कितनी दूर तक जा सकते हैं. . .?

वोटर कब किधर चला जायेगा, कोई नहीं जानता.

सियासी कारकुन कब किधर लुढ़क जायेंगे, पता नहीं.

पार्टियां कब किससे इलहाक (मिलाना) या अलैहदगी कर लेंगी, कोई नहीं कह सकता.

एसेंबली के चुने हुए मेंबर कब किससे साज-बाज कर लेंगे, कोई भरोसा नहीं.

भैया कमउम्र और कबूल-सूरत और पुरकशिश औरतें हमारी बिरादरी में मर्द के लिए अब भी एक कमोडिटी से ज्यादा हैसियत नहीं रखतीं. . .अंदर भी यकीन मादूम (नष्ट) होता जा रहा है और बाहर भी कि अंदरवाले मुझे आंखें मारते हैं और बाहरवाले सीटी बजाते हैं. आंख मारनेवालों पर मुस्करा दूं तो मुश्किल, सीटी बजानेवाले पर नाराज हो जाऊं तो मुश्किल कि एक अजनता है और दूसरी जनता. यह कैसा दबाव है भैया, यह कैसा दबाव है.

मगर शौकतजहां, जिस पर दबाव बढ़ रहा था, एक दिन कत्ल कर दी गयी. कम्मो शाम को नहा-धोकर जब टाट के पर्दे के पीछे जरा देर को खड़ी होती और मुज्महिल (उदास) आंखों से सड़कों की रौनक को एक पल के लिए झांकती तो मां उसे अंदर से ऊंची आवाज में पुकार लेती. कुदरत उन दिनों बड़ा उदास था. वह गर्मियों की रात में छत पर लेटे-लेटे अंधेरे में खड़ी जाफरानी कोठी के हयूले को देखता रहता और अपने होंठों काटता रहता, उसी कोठी के कंपाउंड में शौकत की लाश एक बोरे में भरी हुई मिली थी. कुदरत अपनी छत पर लेटे-लेटे करवटें बदलता, कभी उठकर सिरहाने रखी सुराही से पानी उंडेलता और फिर करवटें बदलने लगता—

तुम बहुत ताकतवर हो शहबाज खां
बहुत वसीले हैं तुम्हारे इख्तियार में
लेकिन शहबाज खां. . .

मेरी बहन, मेरी मददगार, मेरे दिल के ढांढस को मुझसे छीन लिया गया है. माना कि मैं कानून का सहारा नहीं ले सकता लेकिन मैं छोड़ूंगा नहीं. . .

कुदरत की आंखें भीग गयीं. उसे पहली बार अपने मुहज्जब शहर के शबो-रोज की वो रिपोर्टें याद आयीं जिन्हें वह अपने अखबार के कालमों में मजे ले-लेकर छापा करता था.

ए गांव, तेरे आमों के बागों में, तेरे तालाबों और खेतों में पल दो पल बंदूकें चलाकर और पिकनिकें करके जानेवाले अकलियत-पसंद तेरी जज्बातियत से डरते थे कि तेरी जिंदगी बड़ी तंग थी और कत्ल बड़े आम थे और रूपोश बागियों की आखिरी मंजिल डाकाजनी थी और खेत-खेत जिना (व्यभिचार) के किस्से थे और उसकी बीबी उसके शौहर के घर बैठ जाती थी कि लाठी, फरसा, बल्लम और गंडासे फैसलों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हथियार थे मगर शहर.. .! एक कम-माया, बेमसरफ, मगर हलाकत-खेज, गुस्से में बिफरे हुए ये शहर कि जहां पुलिस है, हुक्काम हैं, अदालतें हैं, कानून है, यूनीवर्सिटियां हैं, तहजीबी मराकिज हैं, इन्हीं शहरों में जाफरानी कोठियां हैं और कोठियों में अहाते हैं और अहातों में लाशें हैं और लाशों पर चाकू के जख्म हैं और जख्मों पर फिंगर प्रिंट हैं और सारी फिंगर प्रिंटस हरेक की फिंगर प्रिंट से मिलती-जुलती हैं कि यूनीवर्सिटियों में आतशजनी होती है कि दिन-दिहाड़े बैंक लुटते हैं और दुल्हनें खुद-सोजियां (आत्मदाह) करती हैं और सर रिचर्ड एटनबरा आलमी मंडियों में गांधी को कैश कर लेता है जबकि गब्बर सिंह ठाकुर के हाथ कलम कर देता है और बेबस ठाकुर की चीखो-पुकार और आहो-बका के एल. पी. गली-गली बजते हैं.

ये हाथ हमें दे दे ठाकुर.

ये हाथ हमें दे दे. . .

नहीं! . . . एक दिलदोज चीख सुनायी देती है!

और जख्मी ब्रूसली के पोस्टरों और डिस्को की जलती-बुझती रोशनियों और कमसिन बच्चियों की दरीदा (फटी हुई) अंदामे-निहानियों (योनियों) और रेलवे लाइनों की उखड़ी हुई फिशप्लेटों और खुद-सुपुर्दी (आत्मसमर्पण) करनेवाले डाकुओं और ऊंचे-ऊंचे स्काई स्क्रैपर खड़े करनेवाले स्मगलरों के दरमियान ही कहीं सोने का शहर है जिसका सदर दरवाजा सिर्फ एक है और चोर दरवाजे बहुत हैं और उन सबके बीच कुदरतुल्ला है कि जिसके आगे भी आदमी हैं और पीछे भी आदमी. . .

"सुनते हो शहबाज खां! मैं तुम्हें छोड़ूंगा नहीं कि मेरी मददगार बहन मुझसे छीन ली गयी है."

अब कुदरत को अपनी मुंहलगी बहन की एक-एक बात याद आती थी. . .

"भैया."

"हां."

"तुम बहुत बड़े होक्स हो."

"कैसे?"

"बताऊं कैसे?"

दोनों में तकरार हुई थी. बहन ने भाई से कहा था कि वह एक कन्फ़्यूज्ड किस्म का अंदर से कहीं डरा-डरा-सा आदमी है जो हिंदू फिरकापरस्ती की गोद में जाकर बैठ गया है, कि वह उस ऊंट की मानिंद है जो रेगिस्तान की रेत में अपना सिर देकर तूफान से अपने को बचाना चाहता है और उसे खुद भी नहीं मालूम कि वह क्या कर रहा है.

"भैया, तुम डरे हुए आदमी हो."

"और तुम. . ."

"मैं भी शायद डरी हुई हूं लेकिन शायद खौफ कभी-कभी काम की चीज बन जाता है. शायद इसलिए कि वह मुतहर्रिक (गतिशील) बना देता है. कभी-कभी वह एक डायरेक्शन भी देता है. . .मगर तुम. . .!

मेरा मतलब है तुम्हारा खौफ बहुत पूचा है. अपना सब कुछ देकर तुम इस खौफ से बचना चाहते हो और तुम्हारी समझ में यह नहीं आता कि जब सब कुछ छिन जायेगा और कुछ न रह जायेगा तो फिर तुम्हारा खौफ किस बात का? लेकिन हर खौफ से और भी दूसरे खौफ पैदा हो जाते हैं और तुम्हारे खौफ से किसी और जगह जो दूसरे खौफ पैदा हो चुके हैं, उनका क्या होगा? जो निहत्थे, बेजोर, बेजुबान और खौफजदा पनाहगजीं बेरूत के कैंपों में सुकड़े पड़े थे उन्हें किस खौफ के तहत मारा गया? जब तक खौफ एग्रेसिव नहीं होता उसकी कोई जहत नहीं होती, कत्लेआम में काम आनेवाले अहम नहीं होते, कत्लेआम के बाद की दहशत देरपा और अहम होती है. तक्सीम के कत्लेआम में मरनेवालों को कोई नहीं जानता लेकिन उसके बाद की दहशत ने हमसे बहुत से काम ले लिये हैं."

"तो तुम क्या चाहती हो. . .?" कुदरत ने तेवरियां चढ़ा ली थीं, "क्या तुम फिर कत्लेआम चाहती हो?"

कंकड़ भी चले जायेंगे

▣ कन्हैया लाल 'सरस'

बगदाद का शासक काफी अत्याचारी था. उसने प्रजा को कष्ट देकर काफी धन इकठ्ठा कर लिया था.

एक बार गुरू नानक देव घूमते-घूमते बगदाद जा पहुंचे. प्रजा से शासक की सारी बात उन्हें मालूम हो गयी थी.

एक दिन वे कुछ कंकड़ इकठ्ठा करके शाही महल के सामने बड़े आराम से जा बैठे.

नौकर ने जब शासक को गुरू नानक देव के आगमन की सूचना दी तो वह फौरन सिर के बल दौड़ा चला आया.

गुरूजी के सामने कंकड़ों का ढेर देखकर उसने उत्सुकतावश पूछा, "गुरूदेव, ये कंकड़-पत्थर किसलिए इकठ्ठा किये गये हैं?"

"भाई कयामत तो आनी ही है, यह तो तुम भी जानते हो. अतः ईश्वर को भेंट देने के लिए ही ये कंकड़ इकठ्ठे किये हैं." गुरूजी ने मुस्कराकर कहा.

"अरे यह क्या? मैं तो तुमको ज्ञानी समझता था, पर तुम्हें तो यह भी पता नहीं कि कयामत के दिन रूहें अपने साथ कंकड़-पत्थर तो क्या सुई तक नहीं ले जा सकती." शासक ने गुस्से में कहा.

अब गुरूदेव की बारी थी. उन्होंने चुटकी लेते हुए कहा, "आप प्रजा को लूटकर जो धन इकठ्ठा कर रहे हैं, उसे अपने साथ ले जायेंगे, तो यह कंकड़ भी चले जायेंगे."

बगदाद के शासक का शर्म के मारे सिर झुक गया. □

● रूपवास, भरतपुर (राज.)

"पागल मत बनो." शौकत जख्मी होकर बोली थी. . .

"मैं सिर्फ खौफ के एहसास को बढ़ावा देना चाहती हूं. इतना बढ़ावा कि वह एक कुव्वत बन जाये. गांधी ने भी यही किया था. गुलामी के खौफ को इताना बढ़ावा दिया कि वह एक बन गया. मैं फ्रेम बदलना नहीं चाहती, फ्रेम की तस्वीर को कुछ नये रंग देना चाहती हूं."

कुदरत चुपके से नजर नीची करते हुए बोला था, "तुम मुस्लिम फिकरापरस्त हो."

शौकत इस जुमले पर देर तक हंसती रही थी. उसको अपने भाई की सहलपसंदी (सुगमता) बड़ी अच्छी लगी थी और फिर उसने अपनी साड़ी समेटी थी और अपना पोर्टफोलियो बगल में दबाया था और बोझिल कदमों से बाहर जाते हुए सिर्फ इतना कह सकी थी, "भैया, यह बात मुझे तुमको ही नहीं बल्कि औरों को समझाते हुए काफी देर लगेगी कि मुझे फिकरापरस्ती से उतनी ही नफरत है जितनी किसी नमाजी को कुत्ते से."

और फिर एक रात कुछ इस तरह हुआ—

रात जब यकायक मौसम में ठिठरन-सी पैदा हो गयी थी और बूंदाबांदी हो रही थी कि एक लंबी-चौड़ी गाड़ी कुदरत के दरवाजे पर रुकी. ड्राइवर ने दरवाजे पर दस्तक दी, अंदर से एक जनानी आवाज ने इस्तिफसार (प्रश्न) किया. ड्राइवर ने कुदरत को पूछा, जवाब मिला अभी घर नहीं आये. ड्राइवर ने हिदायत की, जब आयें तो कहें, शहबाज मियां ने सलाम कहलवाया है और कहा है कि जब भी आयेंगे आज रात का खाना मियां उन्हीं के साथ खायेंगे.

ग्यारह का अमल (समय) था कि कुदरत थका-मांदा घर में दाखिल हुआ, बीवी ने पैगाम दिया तो कुदरत सोच में पड़ गया. अभी सोच ही रहा था कि दरवाजे पर हार्न की आवाज सुनायी दी—बड़ी केडीलेक का हार्न. कुदरत चुपचाप गर्दन झुकाये उस जानी-पहचानी गाड़ी की पिछली सीट पर बैठ गया. गाड़ी जाफरानी कोठी के अहाते में जब रुकी तो आसमान

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर बिजली चमक रही थी और क्यारियों में गुलमोहर जैसे अंगारों पर लोट रहा था और पोर्टिको से लिपटी हुई मनीप्लांट की बेल के सरसब्ज और शादाब पत्ते उस अंधेरी और वीरान रात-सी बूंदा-बांदी में चुपके-चुपके रो रहे थे.

अंदर दो कमरों से गुजरकर एक राहदारी को पार करके तीसरे कमरे में कि जहां फर्श पर बहुत मोटा सुर्ख कारपेट बिछा था और छत से कीमती फानूस लटक रहा था और एक दीवार के बीचोंबीच आदिवासी तर्ज का एक कमान, जिसके तरकश में कुछ तीर भी थे, सजा हुआ था और शहबाज खां का चेहरा लटका हुआ था और उसकी आंखों में बेकरारी और बेचैनी थी और वह कारपेट पर बेइरादा अपने दोनों हाथ पीछे बांधे टहल रहा था. . .

"कुदरत मियां बैठ जाइए." वह कुदरत की तरफ देखे बगैर बोला और खुद टहलता रहा.

कुदरत बैठ गया और धीरे-से बोला, "क्यों बुलाया है आपने?"

शहबाज की तरफ से खामोशी रही, फिर सुकूत (चुप्पी) टूटी, "उस रात के बाद मैं सोया नहीं, पर अब मुझे नींद आयेगी."

शहबाज जैसे गुर्रा रहा था, "तुम नहीं जानते कि शौकत मुझे क्यों अच्छी लगती थी."

कुदरत ने तीखी नजरें उस पर डालीं, मगर उसकी गर्दन झुकी थी, चेहरे पर एक दहशत और जुनून था, शायद वह अंदर ही अंदर कांप रहा था.

"ये हैं वो खत जो मैंने शौकत को लिखे थे और जिन्हें एक दिन वह मुझे वापस कर गयी." शहबाज ने रबरबैंड में फंसे चंद खतूत मेज पर से उठाकर कुदरत की तरफ बढ़ा दिये.

"इन खतों में न तो तुमको इश्को-आशिकी का कोई मजमून मिलेगा और न कोई आमियानापन, कि न तो मेरी अब वह उम्र है और न वह मिजाज. . .शौकत ने सारे जवाबात जबानी ही दिये थे, मुझे कोई खत न लिखा."

कुदरत ने उन खतों को खोलकर नहीं देखा. वह शहबाज खां को घूर रहा था.

"दरअसल मैंने तुम्हें खत पढ़ने के लिए बुलाया भी नहीं, इसलिए भी नहीं बुलाया है कि शौकत से अपने इश्क की दास्तान सुनाऊं. . . जिंदगी में हर एक से भूल होती है. मैंने सोचा था कि मैं सब कुछ कर सकता हूं. मुमकिन है मेरे अंदर कुछ और सलाहियतें हों मगर वो कभी उजागर न होंगी और मेरी जिंदगी का सिर्फ वही रूप सामने आयेगा जिसमें या तो पैसा कमाया जा सकता है या खर्च किया जा सकता है और मैं यही गलती कर बैठा यानी पैसा कमाने और खर्च करने के अलावा भी मैं कुछ करना चाहने लगा और मेरी इस गलती पर तुम्हारी शौकत मारी गयी. . ."

शहबाज अंदर ही अंदर खौल रहा था, रोक रहा था, अपने को मगर ऐसा न हो सका. वह बिखरे-बिखरे जुमले बोलने लगा. . .

"अगर मैं उसको उठवा लेता और रेप कर देता तो. . .?", . .

"क्या होता. . .? उसकी कीमत ही तो अदा करनी पड़ती दो लाख चार लाख. . .?". . .

"इस तरह मैं वही करता जो कमाने और खर्च करनेवाले करते हैं. . ."

"लेकिन अब मैं आराम से सो सकूंगा. . .इसलिए कि मैंने अब यह जान लिया है कि उसको किन लोगों ने मारा है और मैं उन्हें मार डालूंगा क्योंकि पैसा खर्च करके शौकत तो नहीं खरीद सकता, कातिल जरूर खरीद सकता हूं. . ."

"कौन है शौकत का कातिल?" कुदरत की मुट्ठियां भिंच गयीं.

"तुम उसे नहीं मार पाओगे क्योंकि तुम ज्यादा से ज्यादा अपनी बेबस बीवी पर मिट्टी का तेल छिड़क कर माचिस दिखा सकते हो, यह कहने के लिए कि खाना पकाते में जल गयी. . ."

कुदरत के जबड़ों में बार-बार तशन्नुज-सा पैदा हो रहा था, यकबारगी वह अपनी जगह से उठा और उसने शहबाज के दामन को अपनी दोनों मुट्ठियों में जकड़ लिया और उसकी आंखों में घूरते हुए तकरीबन चीख पड़ा, "मुझे बता दो शहबाज मियां, मुझे बता दो. . ."

और फिर कुदरत जो बहन के मरने के बाद एक आंसू भी नहीं बहा पाया था, फूट पड़ा. थोड़ी देर बाद वह शहबाज खां के कदमों में पड़ा था और बिलख-बिलख कर रो रहा था.

"यह कितनी अजीब बात है". शहबाज खां गंभीर होकर बोला, "जो हमारे साथ-साथ चलते हैं वो हमें अपने-से बहुत ज्यादा आगे नहीं जाने देते. ."

शहबाज सोफे से पीठ टिकाकर फर्श पर बैठ गया.

"पहले वो समझते थे कि शौकत मेरे पास आती है. एक दिन मेरे बिस्तर की जीनत बनेगी और फिर उनके लिए रास्ते खुल जायेंगे और वो उसे शहर से दूर किसी पुरफजा ठिकाने पर किसी कांफ्रेंस में ले जायेंगे, उसको शराबें पिलायेंगे, कपड़े उतारेंगे, गोद में बिठाकर तस्वीरें खिंचवायेंगे और फिर सारी जिंदगी अपने अंगूठे के नीचे रखेंगे या फिर अपनी ड्राइंगरूम की दीवार पर टांग देंगे, जिस तरह शिकारी लोगों को दिखाने के लिए बारासिंघे का सिर टांग दिया करते थे. . ."शहबाज की आंखें यह कहते हुए नम हो गयी थीं और उसके होंठों के कोनों पर उसके मुंह का लुआब झांक रहा था.

"पता नहीं तुम यह बात जानते भी हो कि नहीं कि शौकतजहां नाताकती से छुटकारा पाने की एक कोशिश का नाम था. हम मर्द लोग औरत के अंदर तड़पती हुई उस छटपटाहट की बू को दूर से महसूस कर लेते हैं. उस बू को महसूस करने की ताकत हमको हमारे कमीनेपन से हासिल होती है. एक दिन शौकत ने छूटते ही मुझसे पूछ लिया था, 'यार शहबाज मियां, यह बताओ कि हम तुम्हें कैसे लगते हैं?"

'बहुत अहम?' मैंने संजीदगी से कहा था, 'बहुत रेलीवेंट'.

'लेकिन हमारे अंदर जो कुछ कम है वह कैसे पूरा होगा? बड़ी समझदारी से शौकत ने मुझसे एक सवाल किया था.'

यह कहकर शहबाज खां उदास हो गया.

"हम सबके अंदर कहीं कुछ कम हुआ करता है. हमें बस धुंधला धुंधला-सा पता होता है कि कहीं कुछ कम है. मेरे अंदर तो बहुत कुछ कम था जिसे शौकत पूरा कर सकती थी, तभी तो उसे देखकर मेरी आंखें रौशन हो जाया करती थीं. मैंने एक अनजाने डर के मारे कभी उसको छुआ नहीं, इतनी देर और इस तरह कभी नहीं छुआ कि मेरा जिस्म चीख उठे. अगरचे मैं फिर भी उसे थोड़ा-सा छू लेने के बहुत-से बहाने निकालता रहता था."

दीवार पर सजा हुआ आदिवासी तर्ज का कमान और तरकश, तरकश के अंदर रिवायती जड़ी-बूटियों के जहर में बुझे हुए मुहलक तीर और तरकश के खोल के बाहरी हिस्से पर खुदे हुए नक्शो-निगार जिनमें कुछ भील जंगल में शिकार खेल रहे थे. शहबाज को इस बात का एहसास था कि अपने तबके के दूसरे लोगों की तरह धीरे-धीरे वह भी एंटीक्स में दिलचस्पी लेने लगा है.

"काश कुदरत मियां तुम जान सकते कि शौकत के यहां क्या कम था. . .? उसके चारों तरफ जो हलका था वो लोग जिनकी वह खातिर-मुदारात (आवभगत) करती थी, वो जीपें जिनमें वह घूमती थी, वो खुशबाश जो उसे अपने पहलू में बिठाकर सियासत के दांवपेंच सिखाते थे, वो सब उसे एक ऐसी चादर में ढकना चाहते थे, जिसके नीचे सब कुछ दिखायी देता रहे. उसकी कमजोरियां, उसकी महरूमियां और उसकी तमन्नाएं. जब उन्होंने यह देखा कि वह मेरी तरफ बढ़ ही है और मैं उसे वह तहफ्फुज (सुरक्षा) दे सकूंगा जिसके पीछे उन्हें उसका कुछ भी दिखायी न देगा तो उन्होंने उसको खत्म कर दिया."

दरवाजे पर हल्की-सी दस्तक हुई. शहबाज खां का पुराना खानसामा हाथ बांधे नमूदार हुआ. खाना लग चुका था, कुदरत सुर्ख-सुर्ख आंखों को मलता हुआ खाने की मेज पर बैठ तो गया मगर लुक्मा तोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न सका. सामने रखी हुई सूप की प्लेट से एक चमचा सूप होंठों तक आया और लौट गया.

"देखो हम बड़े लोगों की कुछ पहचानें हैं. पुलिस को भी मालूम है कि हम लोग औरतों को इस तरह नहीं मारते और उनकी लाश बोरे में भरकर अपने ही अहाते में नहीं डाल लिया करते, कत्ल करना भी एक तहजीब (सभ्यता) है."

कुदरत अपना माथा डाइनिंग टेबल पर पटकने लगा. शहबाज ने उसे सहारा दिया, पानी पिलाया और बोला, "जिस तहजीब ने शौकत को कत्ल किया है, उसके पास कोई कन्विक्शन नहीं."

"मतलब?"

"मतलब जिसके पास वक्त कम है और वह यह जान चुका है कि सियासत अपनी देवमाला की आखिरी कुव्वत भी खर्च कर चुकी है."

कुदरत पर जैसे लरजा तारी था, "खुदा के लिए मुझे ठीक-ठीक उस आदमी का नाम बता दो."

"नहीं . . ." शहबाज की तेवरियां चढ़ गयीं, "हमारी लड़ाई किसी आदमी से नहीं है, आम लोग यह समझ ही नहीं सकते कि हमारे दौर की पोलिटिकल मिथ बेरहम वक्त के हाथों अब एक्सप्लोड हो चुकी है और उसके अंदर का बहुत कुछ बाहर आ चुका है. . .

पहले सारे सौदे यकीन पर होते थे और अब सौदों पर यकीन है. . .

पहले सियासतवाले सरदार मरते थे. . . .

अब बोरों में काटकर डाल दिये जाते हैं. . . .

सब बहुत जल्दी में हैं, सब बहुत जल्दी में हैं. इसलिए हमें मालूम है कि गनीम (प्रतिद्वंद्वी) कौन है और किन हथियारों से लैस है और हम उसे कैसे मार सकते हैं. मारने के लिए हम उसे दो-तीन साल जिंदा रखेंगे. कभी-कभी हम मुहज्जब लोगों के लिए मारने से ज्यादा किसी को जिंदा रखना बहुत मुश्किल हो जाता है लेकिन हमने यह राज जिंदगी में बड़े तहम्मुल (धैर्य) के बाद जान लिया है कि किसी को मारने के लिए कैसे जिंदा रखा जा सकता है. जिंदा रखना एक फन है मगर मारना उससे भी बड़ा फन. अगरचे आज कोई किसी को कभी भी मार सकता है लेकिन असल मामला मौत का नहीं, मौत को इंटरप्रेट करने का है, उसे मानी देने का है, इसलिए हम उसको जिंदा रखेंगे. फिर इलेक्शन का जमाना करीब आयेगा तो हम उसको हरिजनों के किसी गांव के करीब छोटे-से वीरान से रेस्ट हाउस में ठहरवाया करेंगे और वहां उसे शराबें और छोकरियां दिलवाया करेंगे. और फिर एक रात जब बड़ा अंधेरा होगा, जब वह अपने बिस्तर पर हमारी ही सप्लाई की हुई किसी बेसहारा बेयारो-मददगार हरिजन औरत के साथ सो रहा होगा और जब दोनों की बाहें एक दूसरे को कसे होंगी, बस, तब ही दोनों की गर्दनें गंडासे से कटी पड़ी होंगी और पोलिंग होने में सिर्फ दो रोज बाकी रह गये होंगे और सियासत की देवमाला की बची-खुची ताकत अपना रंग दिखा रही होगी और पांसा पलट जाने का खौफ तफ्तीश (जांच) के हाथ जकड़ चुका होगा और जाफरानी कोठी के अहाते के पेड़-पौधों पर रंगीन कुमकुमे जल रहे होंगे और उमरा (धनवानों) और मंसबदारों की गाड़ियों को हाथ दिखाता झकझक करता ट्रैफिक कांस्टेबल उन्हें कोठी के एक किनारे पार्क करवा रहा होगा और लॉन पर खाने की इश्तिहा-अंग्रेज (भूख बढ़ानेवाली) खुशबुओं के साथ एक कोने में सलीके से सजे हुए बैंड की मुतरन्नम (सुरीली) लहरें उठ रही होंगी, तब उस घड़ी, उस पल शहबाज खां, अपने लिविंग रूम में पागलों की तरह हंस रहा होगा कि हर तरफ एक ऐसी चादर पड़ी है जिसके नीचे सब कुछ दिखायी देता है. . ."

शहबाज कब खाने की मेज से उठकर बाथरूम में गया और उसने वहां उलटियां कीं, कुदरत को इसकी खबर नहीं, वह अपनी कुर्सी पर पत्थर हो गया था.

बाहर मनी प्लांट से आंसू रिस रहे थे. . .

और अहाते के उस पार कोठी के आहनी फाटक की बरसाती में ताईनात गोरखा निरफ-शब (आधी रात) के गजर के इंतजार में खड़ा सोच रहा था—

क्या यहां हमेशा से ऐसा ही था?

क्या यहां कभी कोई जंगल न था?

यहां के देवदार क्या हुए?

नमी से बोझल मामता-भरी हवा कब चलेगी. . . ?

यकायक गोरखे के बूढ़े और मस्ख-शुदा पर चौंधिया देनेवाली रोशनी पड़ी.

गाड़ी दरतुल्ला को घर छोड़ने वापस जा रही थी. □

अनुवाद : अब्दुल मुगनी

—भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित 'भारतीय कहानियां : 1983' में उर्दू की प्रतिनिधि कहानी के रूप में संकलित.

दो लघुकथाएं

○ रमाकांत

एक अच्छा आदमी

चुनाव हारने के बाद सत्ताच्युत छद्मधर अपने गांव पहुंचे. यहां उन्होंने दस साल में कभी झांका तक न था. अब वे फिर से पास-पड़ोस के लोगों को पहचानने और उनके दुख-सुख का हाल पूछने लगे.

कहीं कोई काम-धाम होता तो वहां सबसे पहले और आगे-आगे पहुंचते.

एक दिन वे अपने एक बीमार पड़ोसी को देखने गये और उसके दुख से बहुत दुखी हुए.

बीमार आदमी उनकी हमदर्दी से बहुत उपकृत हुआ और उनका हाथ पकड़कर कहने लगा. "भैया, हम बहुत दिनों तक तुम्हारे ऐसे अच्छे आदमी से बिछुड़े रहे. भगवान करे अब तुम कभी चुनाव न जीतो." □

शहीद

सरकार और विद्रोहियों के बीच लड़ाई चल रही थी.

विद्रोही आला कमान की ओर से संदेशवाहक कूट भाषा में लिखा गुप्त संदेश ले कर विद्रोहियों के दूसरे ठिकाने के लिए रवाना हुआ.

भेदियों से खबर पाकर रास्ते में उसे सरकार की पुलिस ने घेर लिया.

संदेश को पुलिस के हाथ में पड़ने से बचाने के लिए संदेशवाहक ने जान की बाजी लगा दी.

लेकिन वह अकेला एक पूरी कुमुक के आगे आखिर कब तक टिकता.

पुलिस की गोलियों से छलनी-छलनी होकर वह गिर पड़ा. बहादुर हरकारे की लाश से बरामद कागज पढ़ा गया.

लिखा था—

'संदेश ले जाने वाला गद्दार है, उसे देखते ही खत्म कर दो.'

लेकिन यह संदेश अब पुलिस के कब्जे में था—

अपने गद्दार साथी को विद्रोहियों ने शहीद घोषित किया. □

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति में सार्थक सिनेमा की तलाश

बात से बात निकालकर एक नयी बात बतलाते हुए उस बात को और भी रोचक और अर्थपूर्ण बना देने वाली कटाक्षपूर्ण बतकही का नाम है—बतंगड़! . . . और बतंगड़ बनाने में प्रख्यात शरद जोशी इस स्तंभ में हर बार पेश किया करेंगे घर, गली, सड़क, दफ्तर, शहर, देश और संसद में घटित घटनाओं-दुर्घटनाओं में बनी बातों की ऐसी बतकहियां जो जी भर हंसाते-हंसाते सहसा सोचने को भी मजबूर कर देती है. . .

सारा देश राजीव गांधी को समझने में लगा है. धूल भरी आंधी में दूर एक काले घोड़े पर सवार जाता नजर आ रहा है और लोग पहचानने में लगे हैं कि यह शख्स कौन है? कैसा है? यह अपने घोड़े को किस दिशा में ले जायेगा? यद्यपि यह धूलभरी आंधी हमारी ही उत्पन्न की हुई है और यह काले घोड़े का सवार हमारा ही छोड़ा हुआ है मगर लोग तटस्थ भाव से खड़े हो गये हैं. खेल का मैदान छोड़ एकाएक दर्शक गैलरी में चले गये हैं. तालियां बजा रहे हैं. भौचक देख रहे हैं. जैसे दीवाली की रात कोई बच्चा अपना ही सुलगाया अनार आश्चर्य से देख ताली बजाये. राजीव गांधी, राजीव गांधी!

ये गहरी ठंड का मौसम है. लोग अपना-अपना वोट डालकर फिर रजाइयों में घुस गये हैं. हमने गहरी शीत में राजीव गांधी नामक एक अलाव जला दी है जिसे हम पांच साल मजे से तापेंगे. उसके व्यक्तित्व की ऊष्मा देश के ठंडे कोनों को गरम रखेगी. वह न बुझे यह उसकी फिक्र है. उसकी पार्टी की फिक्र है. उसके यारों की फिक्र है. हमें एक कथा चाहिए, एक कथानायक चाहिए. उत्थान-पतन की एक गाथा और नित नये आश्चर्यों का सिलसिला चाहिए. हम इस उम्मीद से अपना एक्टर चुनते हैं क्योंकि हम देश को सिनेमा की तरह देखना चाहते हैं. राजीव गांधी आया है. वह ढिशुंग-ढिशुंग करेगा. देखो उसने मुख्यमंत्रियों को अपनी राजधानियों में वापिस लौटा दिया. एक ढिशुंग. देखो उसने अरुण नेहरू को पावर थमा पावरलेस कर दिया. दूसरा ढिशुंग. देखा उसने प्रणव और गनी खान को किकआउट कर दिया. तीसरा ढिशुंग. हीरो एक्शन में है. वह हमारी रगों को फड़का रहा है. ढिशुंग. हीरो स्क्रीन पर आता है. हम चाहते हैं कि वह मां की चिता से मुठ्ठी भर राख उठाकर एक जोरदार कादरखानी डायलाग बोले, "मैं इस मौत का बदला लेकर रहूंगा. मैं तुझे जिंदा नहीं छोड़ूंगा ठाकुर, मैं तुझे जिंदा नहीं छोड़ूंगा."

इसके बाद टाइटिल्स आने लगते हैं. लोक सभा चुनाव में इंका विजताओं की लंबी सूची. पूरा देश हाउसफुल होकर बैठ गया है. थिएटर के बाहर भीड़ है. हीरो के राक्षसकद पोस्टर लगा दिये गये हैं. उसका हाथ उठा हुआ है. मगर दर्शक आशा लगाये बैठा है. हाथ शीघ्र ही झापड़ में बदलेगा. घूंसे में बदलेगा. ढिशुंग.

दिल्ली में फिल्म फेस्टीवल चल रहा है और पूरा देश राष्ट्रीय स्क्रीन पर एक सार्थक सिनेमा की तलाश में है. पहली रील खत्म हो गयी है. हीरो इंट्रोड्यूस हो चुका है. लोग अपनी सीट पर मुम्फली का पैकेट हाथ में ले तन कर बैठ गये हैं. बड़ा गंभीर प्रश्न है कि फिल्म में सस्पेंस है या एक्शन या दोनों. हीरो शहर से गांव आया है कई वर्ष बाद. पहली रील में गांव में वीलेन की परंपरा से भूमिका अदा कर रहे ठाकुर ने उसका स्वागत ही किया है. मगर दर्शक जानते हैं कि लड़ाई इसी से चेतेगी. सारा ढिशुंग-ढिशुंग इनके ही बीच होगा. देखना मजा आयेगा. कमाल का डायरेक्टर है. पहली रील में ही मामला उलझा कर रख दिया. हमेशा होता यह है कि प्रतिपक्ष हीरो के गाव में घुसते ही तन कर खड़ा हो जाता है. पर इस बार प्रतिपक्ष कामेडियन की भूमिका में है. क्या कास्टिंग हुई है फिल्म की. प्रतिपक्ष ने डायलाग बोला कि लोग हो-हो करके हंसने लगे. लोकसभा की हवेली की तरफ गर्दन उठाकर पहला वाक्य बोला बाबा चरणसिंग ने अपने हाथ एक थके हुए घुटनों पर रख कर, "क्या करूंगा मैं वहां जाकर इससे तो अच्छा होता मैं हार जाता." यह सुनते ही दर्शक हो-हो करके हंसने लगे. एक्शन के सामने क्या जोरदार इनएक्शन है. आलसी से कर्मठ टकरायेगा. कहीं यह पिक्चर कामेडियन तो नहीं है?

टी. वी. की स्क्रीन पर बोलते हुए राजीव गांधी अपनी एक भौंह ऊंची करते हैं. कुकिंग क्लासेस अटेंड करने वाली छात्रा मीठे उत्साह से कहती है, 'हाऊ हैंडसम'. राजीवजी बदन पर शाल डाले हैं. भावुक हृदय वाला युवक राजनीति के हाशिए पर टहलता सोचता है, गर्मियों में बदन पर क्या डालूंगा? दिल्ली की गहरी ठंड में लोगों ने अपने गरम ओवरकोटों पर शाल लपेट रखा है. चमड़े की जर्किन पर शाल लपेट रखा है. शाल बहुत जरूरी है. आप जैसे भी हों शाल लपेटकर आप शालीन लग सकते हैं. शाल के साथ आप शराफत लपेट लेते हैं अपने पर.

वर्षों पूर्व किसी सामाजिक फिल्म के हीरो का गेटप निश्चित करते हुए हृषिकेश मुखर्जी ने निव थिएटर की परंपरा का ध्यान रखते हुए अमिताभ के बदन पर शाल लपेटी थी. तब वे नहीं जानते थे कि वे पूरे भारत के नेतृत्व पर शाल लपेट रहे हैं. भविष्य पर लपेट रहे हैं. मफलर गले में डाल शम्मी कपूर की डिजाइन के हीरो अब ढूंढे नहीं मिलेंगे. शैली का बड़ा महत्व है. कथ्य से ज्यादा. भारतीय दर्शक जानना चाहते हैं राजीवजी की कार्यशैली क्या रहेगी? छोटे डायलाग, बड़ा ढिशुंग या बड़ा डायलाग और छोटा ढिशुंग? शैली का बड़ा महत्व है. स्टाइल इज नेता. श्याम बेनेगल और गोविंद निहलानी के फिल्म स्कूल ने अपने नसीर और ओमपुरी की दाढ़ियां बढ़वायी और समझे की वे युवा आंदोलन की आत्मा पहचाने हैं. मगर एकाएक आंदोलन क्लीन शेव की चिकनी छवि के युग में प्रवेश कर गया.

ट्रेंड क्या चल रहा है, पहचानना नाजुक काम है. प्रतिपक्ष के नेता अपने गोल-गोल बैठे सोच रहे हैं कि यह गोलमाल क्या हो गया? वे भारत के पुराने फिल्म प्रोड्यूसर और डायरेक्टर हैं. अनुभव से जानते हैं कि कितना मसाला डालने से पिक्चर हिट होती है. इस बार भी वे मल्टी स्टारर बना रहे थे मगर एक-दो केरेक्टर को छोड़कर सब पिट गये. सोचा था मिलकर जुबली करेगी, एक दिन में उतर गयी. ट्रेंड बदल गया और उन्हें पता ही नहीं चला. भारतीय दर्शक आजकल सिंगल हीरो चाहता है. उसे अब जॉन, जानी, जनार्दन और अमर, अकबर, एंथोनी नहीं चाहिए. गोल-गोल बैठे मठाधीश सोच रहे हैं कि ऐसा सिंगल हीरो कहां से लायें? उनके खेमे में ऐसी माता कभी नहीं रही जिसने सुपर पूतों को जनम दिया हो. एक राजमाता है मगर उनके चिरंजीव कांग्रेस (आई) में हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अटलबिहारी बाजपेयी ने चुनाव के मौसम में ऊंची दीवार की फर वाली टोपी लगा ली. जैसी माधवराव के पिता जिवाजीराव लगाते थे. सोचा हम बाप जैसे लगेंगे. मगर खुले बालों वाला बेटा चुनाव जीत गया. ट्रेंड पहचानना बड़ा नाजुक काम है.

दिल्ली में गहरी ठंड है और फिल्म फेस्टीवल चल रहा है. दिलीप कुमार दीपक जलाकर फिल्म फेस्टीवल का उद्घाटन कर रहे हैं. भई हमने तो जनम से आज तक फिल्म का उद्घाटन लाइट बुझाकर ही होते देखा है. पहले हाल की लाइट बुझी और फिल्म चालू. दिलीप साहब का बस चलता तो यही करते. महाराष्ट्र में हाजी मस्तान के साथ नयी राजनैतिक पार्टी की ढिबरी जलाने का प्रयत्न उन्होंने पिछले दिनों किया था. इस आंधी में उसे कैसे बचाया होगा वे ही बेहतर बता सकते हैं. उन्हें संतुष्ट होना चाहिए. यूसुफ साहब उद्घाटन कर रहे हैं, अब्बास साहब की फिल्में दिखाई जा रही हैं, शबाना साहिबा जूरी में है, नौशाद साहब को सुगम संगीत का पुरस्कार मिल रहा है. लोग फिजूल में कांग्रेस (आई) को हिंदुओं की पार्टी कहने लगे हैं. कांग्रेस, कांग्रेस है. वह वोटर के रूप में हर इंसान का और इंसान के रूप में हर वोटर का ख्याल रखनेवाली राष्ट्रीय पार्टी है. वह सबका ख्याल रखती है. सब उसका ख्याल रखते हैं. प्रोड्यूसर दर्शकों का ध्यान रखना है, दर्शक प्रोड्यूसर का. इसमें हिंदू-मुसलमान नहीं सोचा जाता. जब जोरदार फिल्म लगती है, लाइन में सब खड़े हो जाते हैं एडवांस बुकिंग कराने. फिल्मों को कोई एक जाति चलाती है, सब मिल कर चलाते हैं. टिकट खरीदना वोट देने की तरह है. कोई समीक्षक नहीं कह सकता कि हाउसफुल होगा या नहीं. मगर जब होना होता है, जरूर होता है, कांग्रेस को जो वोट मिला क्या वह केवल हिंदू वोट था? गलत. राजनीति कोई जय संतोषी माता नहीं है कि आप कह दें कि हिंदुओं ने गोल्डन जुबली करा दी. अरे हिंदुओं को ऐसा ही अपने हिंदुत्व का ख्याल था तो वे विश्व हिंदू परिषद के अध्यक्ष कर्णसिंह क्यों हार गये हैं. अटल बिहारी क्यों हारे? सिनेमा और चुनाव दोनों में आम आदमी की भूमिका निर्णायक होती है.

राजीवजी टी. वी. स्क्रीन पर आये और बोले राम तेरी गंगा बहुत मैली हो रही है. उसे पुनः पवित्र करना होगा. एक सेंट्रल बोर्ड बैठाया जायेगा जो गंगा को फिर से पावन करने के लिए भागीरथ चिंतन करेगा. इधर राजकपूर अपनी आर. के. की झोपड़ी में दारू बहाते इसी समस्या पर चिंतन करते हुए 'राम तेरी गंगा मैली' पिक्चर बना रहे हैं. एक लड़की है गंगा. जब ऋषिकेश में रहती थी बड़ी पवित्र थी. हीरो ने उससे पवित्र प्यार करते कई रंगीन रीलें गुजारीं. परिस्थिति की मार ऐसी पड़ी कि गंगा नामक वह लड़की हीरो की तलाश में कलकत्ता तक गयी और क्रमशः मैली से मैलीतर होती गयी. फिल्म से शिक्षा मिलती है. कि गंगा को यू. पी. से नहीं गुजरना चाहिए. वातावरण गड़बड़ है. उसे ऋषिकेश से ऊंची आकाश गंगा हो सीधे कलकत्ता डायरेक्ट फ्लाइट से पहुंचना चाहिए. (राजकपूर ने यों भी सोचा होगा कि जिस फिल्म के नाम में राम और गंगा जैसे दो पावन शब्द लगे हों. वह तो धड़ल्ले से चलेगी.) पर उसी यू. पी. में वोटों की गंगा भी लहराती है. वह पवित्र और मिस क्लीन बनी रहे बहुत जरूरी है. यू. पी. का दिल जीते बिना दिल्ली कब तक दिल्ली रहेगी. और इस बार तो गंगा किनारे वाला छोरा अपने समस्त गुणा-बहुगुणा के बावजूद बहुगुणा को घटाकर बड़ा भागी बन सत्ता से जुड़ा है. राजीव का बालमित्र बकलम धर्मयुग में पुष्पा भारती. सो यू. पी. में गंगा तो पवित्र करनी ही पड़ेगी. लोगों ने तो आस लगा ली है कि राजीव गांधी राजनीति की गंगा भी पवित्र करेंगे. भारत का आकाश आशा और आश्वासनों पर इतने सालों थमा रहा तो क्या पांच साल और नहीं थमा रह सकता.

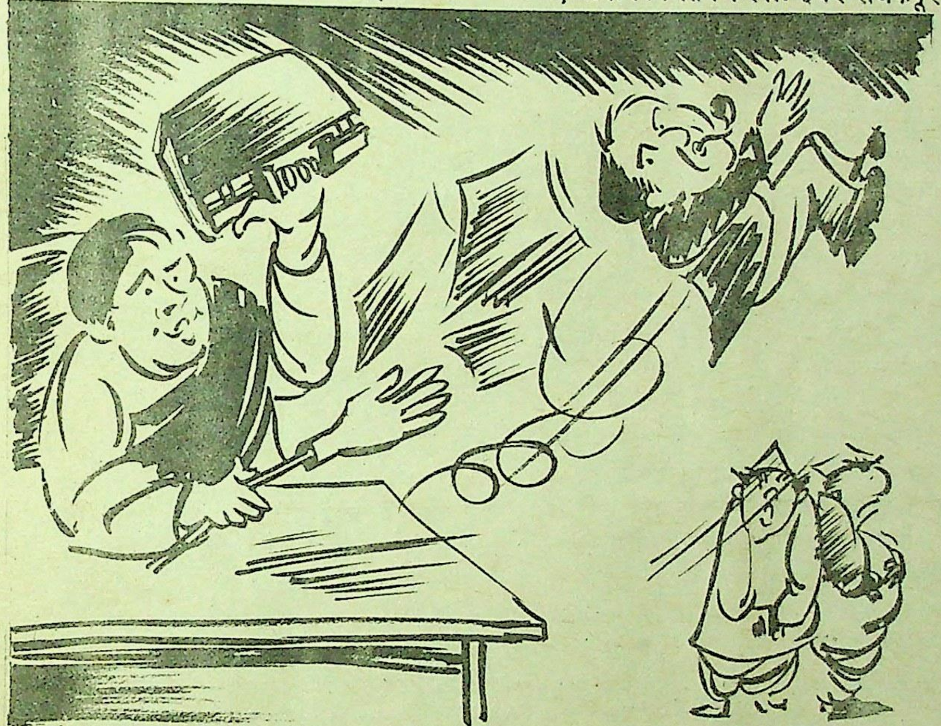

राजीव गांधी की कार्यशैली में सफल फिल्मों के कई गुण हैं. ज्यादा फुटेज नहीं खाते, डायलाग छोटे रखते हैं, जिज्ञासा बनाये रखते हैं, हर फ्रेम के साथ कहानी आगे बढ़ाते हैं, हर सीन में खुद रहते हैं. एक हीरोइन से जुड़े रहते हैं, कई छोटे-छोटे क्लाईमेक्सों के सहारे एक बड़े क्लाईमेक्स की ओर बढ़ते हैं. हिट हैं इसलिए. आडियंस का ध्यान रखे बिना इस देश में न फिल्म चलती है, न टी. वी., न राजनीति और न आध्यात्म.

मगर प्रतिपक्ष के निर्माता यह सब नहीं सोचते. वे समझते हैं उनके जगदीप, असरानी, मुकरी वगैरह, मिलकर फिल्म को हिट कर देंगे.

ऐसे नहीं चलती फिल्में.

फार्मूले बदल रहे हैं.

वे लोग जो अमिताभ, सुनीलदत्त और वैजयंतीमाला को चुनाव में खड़ा देख आपस में पूछ रहे थे कि राजनीति के अंगने में इनका क्या काम है? जल्दी ही उनकी जिज्ञासा शांत हो जायेगी.

बड़ा काम है इनका राजनीति में. बहुत काम है. राजनीति फिल्म हो रही है. दर्शक देश की ओर देखने के लिए टी. वी. खोलता है, नेतृत्व का फोटोजीनिक होना केवल चिकनी पत्रिकाओं की ही नहीं, सौंदर्य कांशस पीढ़ी की आवश्यकता है. पार्टी हो या मैगजीन, मुखपृष्ठ सुंदर न हुआ तो क्या चलेगी?

बहुत काम है हीरो-हीरोइनों के लिए पोलटिक्स में. यों भी इस प्रतियोगी समाज में जो समाज की आंखों को अपनी ओर आकर्षित करने का गुण रखते हैं उनका पलड़ा भारी होता है. राजीव का है. आप इसमें क्या कर लेंगे.

पैदा होने के पहले अपोजीशन वालों ने अपने लिए सुंदर मां-बाप नहीं चुने तो इसका दोष कांग्रेस को नहीं जाता.

सोचता हूं 'बूंद जो बन गयी मोती' की तर्ज पर एक फिल्म का नाम इंपा के दफ्तर में जाकर रजिस्टर करवा लूं. नाम है 'हाथ जो बन गया झापड़.' क्या ख्याल है? रहा कहानी का सवाल तो धीरे-धीरे वह भी मिल ही जायेगी. ☐

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़बर

हंसराज रहबर

बंडल बगल में दबाया और मैं लंबे-लंबे डग-भरता हुआ रेलवे पार्सल आफिस से बाहर निकला. कोई देखता तो समझता कि मैंने यह बंडल चोरी किया है और कोई मेरा पीछा कर रहा है. लेकिन ऐसी कोई बात नहीं थी. मेरा यह हर रोज का धंधा था और मैं इसी तरह बंडल बगल में दबाकर पार्सल आफिस से बाहर निकलता था.

दरअसल यह अखबार का बंडल था और मैं स्कूल से लौटने के बाद अखबार बेचा करता था. बारह बजकर पंद्रह मिनट पर जो गाड़ी लाहौर से लुधियाना पहुंचती थी, आज के ये ताजा अखबार उसी से उतरे थे और न्यूज-पेपर एजेंट ने वे स्टेशन ही पर मुख्तलिफ हाकरों में बांट दिए थे. मेरा लंबे-लंबे डग भरने का कारण यह था कि मैं अपने हिस्से के अखबार जल्द-से-जल्द बेचकर इस काम से निपट जाना चाहता था. इसलिए ज्यों ही मैं स्टेशन की सीमा पार कर के बस अड्डे के करीब पहुंचा, मैंने जोर-जोर से चिल्लाना शुरू किया––"ताजा अखबार ! जतेंद्रनाथ दास की भूख हड़ताल का तिरसठवां दिन. हालत नाज़ुक!"

"अखबारवाले!" बस में से आवाज आयी.

मैं लपककर आगे बढ़ा और आवाज देनेवाले मुसाफिर से पूछा, "अखबार चाहिए?"

"हां, एक 'प्रताप' दे दो."

मैंने अखबार गाहक को थमाकर पैसे जेब में डाले और फिर आवाज लगाई–"जतेंद्रनाथ दास की हालत खराब! आज का ताजा अखबार–– मिलाप, प्रताप, वीर भारत, बंदे मातरम्, ट्रिब्यून."

"एक अखबार इधर देना."

"कौन-सा?"

"कोई भी दे दो."

"और एक मुझे भी देना."

आठ-दस अखबार हाथों-हाथ बिक गये. अखबार जब स्टेशन पर तकसीम हो रहे थे, मैंने तभी एक उचटती-सी नजर मुख पृष्ठ की खबरों पर डालकर यह एक सुर्खी जिसे अब मैं बोल रहा था और जो गाहकों का

क्या भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के पुरोधा वही थे जो सत्याग्रह या कि विद्रोह के जरिए ब्रितानी हुक्मरानों को नाकों चने चबवा रहे थे या पूरा राष्ट्र ही, हर भारतीयजन ही स्वतंत्रता संग्रामी था. . ? प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में इस यज्ञ में अपनी-अपनी आहुति दे रहे भारत राष्ट्र-राज्य के तेवर और तरीकों का परिचय देता स्वतंत्रता सेनानी और वयोवृद्ध लेखक श्री हंसराज रहबर की आत्मकथा 'मेरे सात जनम' के दूसरे खंड का एक अंश.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

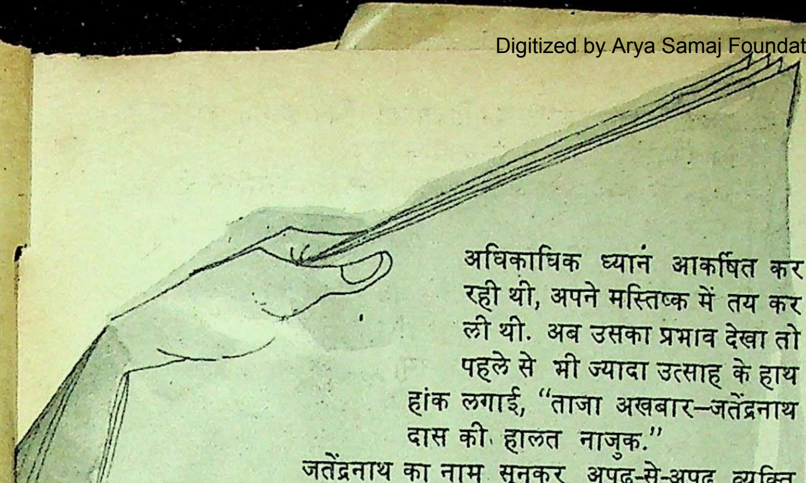

अधिकाधिक ध्यान आकर्षित कर रही थी, अपने मस्तिष्क में तय कर ली थी. अब उसका प्रभाव देखा तो पहले से भी ज्यादा उत्साह के हाथ हांक लगाई, "ताजा अखबार—जतेंद्रनाथ दास की हालत नाजुक."

जतेंद्रनाथ का नाम सुनकर अपढ़-से-अपढ़ व्यक्ति के भी, जिसने कभी अखबार छुआ तक नहीं था, कान खड़े हो जाते थे. इसीलिए मैं यह नाम बार-बार दोहरा रहा था और लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा था. अखबार जो बिकने थे, बिक चुके थे. लोग सिर्फ चुप खड़े सुन रहे थे और मेरी ओर देख रहे थे. मेरे शरीर में बिजली-सी कौंध गयी और मैं जोश में भरकर चिल्लाया, "हड़ताल का तिरसठवां दिन, जतेंद्रनाथ दास की हालत नाजुक." लोग देख रहे थे, सुन रहे थे और मैं उत्साह में भरा बोल रहा था. शायद मेरे अंतर्मन में यह भाव काम कर रहा था कि अखबार बिकें न बिकें, पर देशवासियों तक यह खबर पहुंच जाये कि हड़ताल तिरसठ दिन से चल रही है और क्रांतिकारी जान पर खेल रहे हैं.

स्टेशन से तीन हाकर अखबार लेकर एक साथ चलते थे. तीनों एक अलिखित संधि या परस्पर समझौते के अनुसार अलग-अलग रास्तों से शहर पहुंचते थे और अलग-अलग क्षेत्रों में अखबार बेचते थे. इस संधि अथवा समझौते के अनुसार मैं घंटाघर की ओर जाने के बजाय कैसरगंज को घूम गया. बस अड्डे से चौक तक फर्लांग-डेढ़-फर्लांग का फासला था और सड़क बिलकुल सूनी थी. कहीं-कहीं कोई आवारा खारिशज़दा कुत्ता घूम रहा था अथवा कौवे, चिड़िया इत्यादि पंछी उड़ रहे थे. बीच में एक सिनेमा घर था, वह भी इस समय बंद पड़ा था. प्रायः सड़क का यह टुकड़ा मैं चुपचाप पार कर लिया करता था. पर जब से हड़ताल लंबी खिची थी और जेल में जतेंद्रनाथ दास और शिव वर्मा की हालत नाजुक होती जा रही थी, मुझ पर कुछ ऐसा जुनून-सा सवार हो गया था कि मैं यहां भी हांक लगाता रहता था और आज भी लगा रहा था—"हड़ताल का तिरसठवां दिन, जतेंद्रनाथ की हालत नाजुक."

कोलतार की सड़क, सितंबर का महीना और ठीक दोपहरी की चिलचिलाती धूप. गालों से पसीना बहने लगा तो भी बायें बाजू पर अखबार का बंडल रखे और दायें हाथ से पसीना पोंछते हुए मैं तेज-तेज चल रहा था और हांक लगा रहा था. "आज का ताजा अखबार."

ज्यों ही मैं चौक पार करके लक्कड़ बाजार में पहुंचा तो चारों ओर हलचल मच गई. दुकानदार हाथ का काम छोड़ दूकानों से उतर आये और राह चलते लोग रुक गये. जो पढ़ सकते थे उन्होंने अखबार खरीदा और जो नहीं पढ़ सकते थे वे दूसरों से सुनने-जानने के लिए उत्सुक थे. यों एक अखबार खरीदनेवाले के गिर्द सुननेवालों का जमघट लग जाता था. क्रांतिकारी उभार के दिन थे, लाहौर में भगतसिंह और उसके साथियों पर साजिश केस चल रहा था. उनकी इस लंबी भूख हड़ताल ने माहौल बदल दिया था. क्रांतिकारी भूख हड़तालियों के प्रति सहानुभूति और फिरंगी सरकार के प्रति घृणा दिन-दिन बढ़ रही थी. अखबार पढ़ने-सुनने की यह असाधारण रुचि भी इसी से उत्पन्न हुई थी. उनकी इस उत्सुकता और जिज्ञासा ने मुझे भी उकसाया और मैं पहले से भी ज्यादा जोश के साथ चिल्लाया : "पढ़िए, जान पर खेल जानेवाले क्रांतिकारी वीरों की खबर पढ़िए."

लोग पैसे हाथ में लिये आगे बढ़ते और जो भी अखबार मिलता लेकर चुपचाप लौट जाते थे. अखबार देने और पैसे लेने का काम यंत्रवत हो रहा था वरना मेरी विशेष रुचि ध्यान आकर्षित करने और अपनी बात लोगों तक पहुंचाने में थी. "यह एक अखबार वापस लो. दो क्यों दे रहे हो." गाहक ने मुझे चेताया.

"कोई बात नहीं," मैंने माथे का पसीना पोंछा.

"लाओ, यह मुझे दे दो." दूसरा गाहक लपका.

साबुन बाजार पार करके जब मैं बड़े बाजार के चौक में आया तो मेरे पास चौदह-पंद्रह अखबार शेष रह गये थे. इस बाजार में आठ-दस दुकानदार स्थायी गाहक थे. इसलिए चलते-फिरते गाहकों की बजाये मुझे उन्हें अखबार देना था. लेकिन हड़ताल का तिरसठवां दिन था. जतेंद्रनाथ और शिव वर्मा की हालत नाजुक थी और लोग क्रांतिकारियों के इस महान उत्सर्ग की कहानी पढ़ने-जानने के लिए उतावले थे. अखबार का महत्व बढ़ गया था. पढ़नेवाले मेरे पीछे लपक रहे थे.

"अखबारवाले, एक अखबार मुझे देना."

"और मुझे भी देना."

कोई दस-बारह गाहक एक साथ अखबार मांग रहे थे.

मैं चलते-चलते रुका और विनीत भाव से उत्तर दिया, "अब अखबार नहीं है."

"क्यों, ये हैं तो सही."

"सिर्फ दो हैं," मैंने अलग-अलग करके दिखाये और कहा, "ये मुझे स्थायी गाहकों को देने हैं."

"दूकान पर होंगे?" किसी ने पूछा.

"यह आप वहां जाकर मालूम कर लीजिए." मैंने उत्तर दिया.

साथ ही मेरे मन में विचार उठा कि चट-पट दूकान पर पहुंचूं. शायद बेचने के लिए कुछ अखबार और मिल जायें. वैसे इसकी संभावना कम थी तो भी मैंने हाथ के अखबार स्थायी गाहकों को दिये और लंबे-लंबे डग भरता हुआ दूकान की ओर चला. दूकान बाजार के अंत में बाईबिल सोसायटी के सामनेवाले नुक्कड़ पर थी. उस पर अमरसिंह नाम का अधेड़ व्यक्ति बैठता था.

मैं दूकान पर पहुंचा तो देखा कि वहां गाहकों की भीड़ लगी है. सभी एक स्वर में चिल्ला रहे हैं, "हमें अखबार दो, अखबार दो."

"अखबार अब नहीं रहे, नहीं हैं." अमर सिंह के बार-बार समझाने का उन पर कुछ भी असर नहीं हो रहा था. जैसे उन्होंने अखबार खरीद ले जाने की शपथ कर रखी हो.

"तुम्हारे पास अखबार हैं." चार-पांच व्यक्ति मेरी ओर लपके.

"सब बिक गये." मैंने हाथ फैला दिये.

एक हफ्ता पहले हालत यह थी कि सारे बाजार घूम जाने के बाद भी अखबार काफी संख्या में बच जाते थे और मैं उन्हें बस-अड्डे, होटलों, और अदालत में बेचा करता था. लेकिन यकायक हवा बदली तब तो लोगों के पास जाने के बजाय लोग खुद अखबार लेने आने लगे. दूकान के सामने भीड़ लगी थी. जानते थे कि अखबार नहीं हैं और लाख मांगने पर भी नहीं मिलेगा, फिर भी समवेत स्वर में चिल्ला रहे थे, "अखबार दो. अखबार दो." दरअसल यह देशभक्ति का, भूख हड़ताली क्रांतिकारियों के प्रति स्नेह और लगाव का प्रदर्शन था. जनसमूह की मुद्रा इस समय देखते ही बनती थी.

"देशवासियो!" एक तीखी आवाज ने सब को चौंका दिया.

बायीं ओर से एक तांगा आता दिखाई पड़ा. तांगे पर लाउड स्पीकर लगा था और तिरंगा झंडा फहरा रहा था.

"देशवासियो! अभी-अभी खबर आयी है कि भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त के साथी जतेंद्रनाथ दास जेल में शहीद हो गये. उनकी भूख हड़ताल का यह तिरसठवां दिन था. फिरंगी अत्याचार ने देश के एक और सपूत की जान ले ली. इस अत्याचार के विरुद्ध शहर में हड़ताल रहेगी और शाम को रामलीला ग्राउंड में शोकसभा होगी."

लोगों के गंभीर चेहरे झुक गये और वे जाने किस सोच में डूब गये. देखते ही देखते दूकानें बंद हो गयीं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज मैं आपको अपनी मां के बारे में बताऊंगा. चीन की पुरानी संस्कृति ने मां को बड़ा महत्त्व दिया है. जब चीन के गांवों में से सेना, जवान लड़कों को जबरदस्ती पकड़कर ले जाती थी, तब वे अन्य किसी को नहीं, मां को पुकारते हुए रो उठते थे. यांगत्सी नदी के किनारे हमारा एक मैला-कुचैला गांव था. घर यों थे, जैसे वे बनाये न गये हों, केवल उनका एक ढर-सा लगा दिया गया हो. हमारा घर, जैसा भी था, गांव का सबसे अच्छा घर था, क्योंकि हम कुछ खाते-पीते लोग थे. हमारे पास कम से कम बीस एकड़ जमीन थी. मेरे पिता की धाक.केवल उसकी जमीन के कारण नहीं थी, बल्कि उसकी उस बहुत सुंदर रखैल के कारण भी थी, जो मेरी मां थी.

मेरा एक भाई भी था, जो पांच वर्ष की उम्र में ही मर गया था. मेरा जन्म उसके बाद हुआ. मुझे सदा यह प्रतीत होता था कि मेरी मां मेरे उस मृत भाई को मुझसे ज्यादा प्यार करती थी. शायद इसलिए कि वह बेटा उसके यौवन का स्वप्न था और मेरे जन्म के समय मेरी मां की उम्र ढल चुकी थी. इसका यह अभिप्राय भी नहीं कि वह मेरी ओर से विमुख थी, बल्कि वह सदा मेरे जमींदार बाप को ताकीद करती थी कि वह मेरा भी उतना ही ध्यान रखे, जितना वह अपने कानूनी बच्चों को रखता था. इसलिए मैं अपनी मां का आभारी हूं.

फिर समय बदला और नयी पीढ़ी के लोगों ने मेरे पिता को हिरासत में ले लिया. केवल इसलिए कि वह जमींदार था. सभी जमींदारों पर किसानों ने आरोप लगाये थे. वे भूल गये थे कि मेरा पिता उनके कठिन समय में उनकी सहायता करता था. फसल की कटाई के अवसर पर वह अपना हिस्सा छोड़ देता था, उनके लड़ाई-झगड़े निपटाता था और अपनी जेब से भी उनकी मदद कर देता था, लेकिन शायद उनका अधिक दोष नहीं था, क्योंकि वे यदि कोई आरोप न लगाते, तो नयी पीढ़ी के हाथों से स्वयं सजा पाते!

सभी जमींदारों को मर जाना चाहिए था, ताकि नये समाज की नींव सुदृढ़ हो सके. हमारे अपने बगीचे में ही एक ऊंचे पेड़ के साथ मेरे पिता को उल्टा बांध दिया गया था और उसकी जीते-जी खाल उतारी गयी थी. हमें जबरदस्ती सामने खड़ा करके सब दिखाया गया था.

फिर मेरे बाप की बीवी को और उसके बच्चों को कहां भेज दिया गया, मुझे पता नहीं लगा. मैं, मेरी बीवी और मेरी मां एक कोठरी में बंद कर दिये गये. इस कोठरी में पहले हमारा चौकीदार रहता था. मुझे एक कोआपरेटिव दुकान में बही-खाता संभालने का काम दिया गया, क्योंकि मैं कुछ पढ़ा-लिखा था. इसके अलावा, नदी के किनारे बुनियादों की खुदाई के लिए भी मुझे कई घंटे जुटना पड़ता था. बताया गया कि वहां एक पुल का निर्माण होगा. किनारे की मिट्टी ऐसी थी कि गरमी में सूखकर पत्थर जैसी हो गयी थी. मेरी बीवी को भी मेरे साथ इस काम के लिए लगा दिया गया था. हम जब रात को घर लौटते थे, तो एक-दूसरे के साथ बातचीत करने की शक्ति भी हमारे शरीरों में से निचुड़ चुकी होती.

चांदी की तितली

पर्ल एस. बक

सामने नदी आ गयी. मां चलती जा रही थी. पानी उसके टखनों, घुटनों, कंधों तक से उठता गया और फिर सिर से भी ऊंचा. . .! वे कौन-से क्षण होते हैं जब कोई किसी को मरता हुआ देखकर भी उसे मौत के मुंह में समा जान देता है और सोचता है कि उसे न बचाकर उसने उस पर एहसान किया है?––सत्ता परिवर्तन के संदर्भ में चीन की क्रांति के कुछ सामाजिक पहलुओं को उजागर करती मार्मिक कहानी––

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे लिए सबसे बड़ी समस्या रोटी की थी. मेरी बूढ़ी मां सारे दिन घर में रहती थी. मेरे बाप की भयानक मौत को अपनी आंखों से देखकर उसका दिमागी संतुलन खो गया था, इसलिए वह कोई काम करने के योग्य नहीं रही थी, और इसीलिए उसे रोटी का राशन नहीं मिलता था. मैं और मेरी पत्नी अपना राशन उसके साथ बांट लेते थे. इसलिए तीनों ही हर रोज भूखे रहते थे. यह राशन का भेद केवल हमें पता था, पर मां हर रोज विस्मित होती कि घर में पेट भरकर खाने को हर रोज क्यों नहीं पकता! पहले उसके खाने में हर रोज सुअर और मछली का मांस होता था, पर अब उसे आश्चर्य था कि हम मांस क्यों नहीं पकाते. राशन के अनुसार हमें महीने में एक बार मांस मिलता था, वह भी इतना थोड़ा कि हम मां को परोस देते.

हमें पूरी मजदूरी कभी नहीं मिलती थी. बताया जाता था कि उसका कुछ भाग हमारे नाम जमा हो रहा है, पर वह भाग क्यों जमा होता था, और कहां जमा होता था, हमें कुछ पता नहीं. हम सब केवल यह जानते थे कि हमें व्यक्ति के रूप में नहीं, एक विशाल समूह के रूप में जीवित रहना है. मैं बहुत सचेत होकर रहता था, लेकिन मेरी मां कई बार हमें संकट में डाल देती थी.

एक बार तो बहुत बड़ा संकट आ पड़ा. बात यह हुई कि मैं और मेरी पत्नी काम पर गये हुए थे. अनुपस्थिति में हमारे घर किसी को जासूसी करने के लिए भेजा गया. बेचारी मां को कुछ पता नहीं था. बहुत दिनों के बाद कोई घर में आया था. मां ने पुरानी आदत के अनुसार उसका सत्कार किया. उसके लिए चाय बनायी, तो पूरे चार औंस चाय की पत्ती खर्च कर दी. मेरी पत्नी ने कुछ चावल संभाल कर रखे थे (हमारी पूरी एक दिन की खुराक) पर मां ने उसका पुलाव बना कर मेहमान को परोस दिया. इसका नतीजा यह हुआ कि हम पर जमाखोरी का आरोप लगाया गया. . . कम्यून के कर्मचारी आये और हमारे वर्तन उठाकर ले गये. हमसे कहा गया कि घर में रोटी बनाकर खाने के बजाय हम संयुक्त रसोईघर में खाना खायें. मेरी पत्नी को संयुक्त भोजनालय में रोटी पकाने की नौकरी मिल गयी. लेकिन मेरी मां चूंकि कोई काम नहीं करती थी, इसलिए उसके खाने के लिए कोई टिकट नहीं मिला था.

यह बहुत बड़ी समस्या थी. मैं कमांडर से मिला, लेकिन उसने कहा कि मेरी मां को इस हालत में खाने का टिकट नहीं मिल सकता. मैंने उसे बताया कि मेरी मां का दिमाग ठीक नहीं था, इसलिए वह कोई काम नहीं कर सकती. तब कमांडर ने उसे बच्चों की एक नर्सरी में कुछ देखभाल का काम करने की सलाह दी. मैंने मां को इस काम पर भेज दिया.

खाने का टिकट मिल गया, लेकिन अजीब मुसीबतें शुरू हो गयीं. ये शायद न होतीं, यदि वह नर्सरी हमारे ही पुराने मकान में न बनी होती. मां की चेतना ठीक नहीं थी. फिर भी बैठे-बैठे उसे यों प्रतीत होता, जैसे उसने यह मकान कभी नहीं देखा है!

मकान की शक्ल बदल चुकी थी. बगीचा तबाह हो चुका था. पहले उसमें पार्टी का हैडक्वार्टर था. फिर टोकरियों का कारखाना खोल दिया गया. फौजियों की बैरकों के रूप में भी उपयोग किया गया था और अब वहां नर्सरी खोली गयी थी. मां की मानसिक अवस्था ने कल्पना में इसका नया ही रूप धारण कर लिया था. चूंकि जमींदार की पत्नी होने के बजाय वह उसकी रखैल थी, इसलिए उसे सम्मानजनक स्थान नहीं दिया गया था. नर्सरी के सारे बच्चे जमींदारों के बच्चे थे. एक दिन उसने नर्सरी की रखवाली के लिए नियुक्त स्त्री से साफ-साफ कह दिया कि उसके साथ नौकरों जैसा व्यवहार न किया जाये. वह मालकिन थी और वह बाहर बगीचे की धूप में कुरसी बिछाकर बैठेगी.

अधिकारी-महिला के स्वभाव में धैर्य नहीं था. बात बहुत आगे पहुंच जाती, पर मैंने किसी तरह उसकी मिन्नतें करके उसे कुछ शांत किया. बात रुक गयी, लेकिन कुछ दिन ही बीते थे कि नर्सरी में पांच वर्ष का एक प्यारा-सा बच्चा लाया गया. मेरी मां ने जैसे ही उसे देखा, उसे लगा कि वह वही बच्चा था, जो पांच वर्ष पूर्व उसके पास से कभी खो गया था. मेरी मां को उस बच्चे से प्यार हो गया. वह एक बहुत बड़ा अपराध था, क्योंकि हमें शिक्षा दी गयी थी कि हम बच्चों को प्यार न करें. प्यार करने से बच्चे कमजोर हो जाते हैं और प्यार की अनुभूति में वह एक व्यक्ति की कल्पना करते हैं, जो उन्हें प्यार करता है. उन्हें किसी भी व्यक्ति के बारे में नहीं, बल्कि केवल एक समूह के बारे में सोचने की आदत डालनी चाहिए. छोटे बच्चे जब मां को बहुत याद करते थे, उनको संभालना कठिन हो जाता था. एक ही इलाज था कि उनसे बहुत काम करवाया जाये—झाड़ू देने का, कूड़ा ढोने का, घास खोदने का. . . पर वह बच्चा, जिसके साथ मेरी मां को प्यार हो गया था, बहुत ही दुर्बल और हर समय रोनेवाला बच्चा था. ऐसे बच्चों के लिए काम का बोझ और बढ़ाया जाता था, पर जब वह भारी काम पर लगाया जाता, तो मां से देखा न जाता. मां उसके बजाय स्वयं सारे काम कर देती. इसलिए मां को धमकियां दी जाने लगीं कि उसे नर्सरी के काम से हटाकर कहीं अन्य स्थान में भेज दिया जायेगा, लेकिन मां वहां से कहीं भी जाने के लिए तैयार नहीं थी. वह बच्चे को आंखों से ओझल नहीं कर सकती थी. बहुत समझाने पर वह दिन में बच्चे से दूर रहती, पर रात होते ही बच्चे को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छाती से लगा लेती. मां ने स्वयं को फिर जमींदार की रखैल समझ लिया और बच्चे को अपना असली बेटा.

मां एक दिन फर्श धो रही थी कि उसकी स्मरण-शक्ति कुछ लौट आयी. जमींदारी के दिनों में कुछ हीरे उसके पास थे, जो उसने अव्यवस्था के दिनों में एक कमरे में दबा दिये थे. अब उसी कमरे का फर्श धोते हुए जैसे नींद में चलती हुई वह उस कोने को खोदने लगी, जहां हीरे दबाये गये थे. हीरों का क्या हुआ. उसने कहां फेंके, मुझे कुछ पता नहीं. उनमें एक चांदी की तितली भी थी, जिस पर मीनाकारी का काम था, जिसमें छोटे-छोटे हीरे जड़े थे. यह मैंने अपनी आंखों से देखी—उस दिन जबकि मेरी मां को अदालत में पेश किया गया.

शुरू में मां ने इस तितली के बारे में किसी को कुछ नहीं बताया, उसे अपनी चोली में कहीं छिपा लिया. अगले दिन, या उससे अगले दिन मां के लाडले उस बच्चे के हाथ में चोट लग गयी. बच्चे को घास खोदने के लिए एक तेज खुरपी दी गयी थी, वही बच्चे के हाथ में लग गयी. उसे अस्पताल में ले जाया गया तो मां किसी तरह उसके पीछे-पीछे अस्पताल पहुंच गयी. बच्चा किसी से नहीं बहल रहा था. मां ने उसे उठाया और एक वीरान कोने में ले गयी. उसे बहलाने के लिए उसने चोली में छिपायी तितली निकालकर उसके हाथ में पकड़ा दी. बच्चा उस दिन बहल गया. फिर बाद में भी वह मां से तितली मांग लेता और खेलता रहता.

एक दिन बच्चे ने वह तितली अपने एक हमउम्र लड़के को दिखा दी. उस हमउम्र लड़के ने नर्सरी की अधिकारी-महिला को इसकी खबर दे दी. ऐसी कोई खबर देनेवाले बच्चे को शक्कर की एक चुटकी पुरस्कार में दी जाती थी.

बात आगे पहुंच गयी. बच्चे की बहुत पिटाई हुई और उसे बताया गया कि किसी बच्चे के पास ऐसी चीज का होना, जो सबके पास न हो, अपराध है!

मां को गिरफ्तार कर लिया गया. ऐसे अपराध की सजा मौत होनी चाहिए थी, पर कम्यून ने तरस खाकर केवल यह सजा सुनायी कि अगली सभा में मां का सरेआम अपमान किया जायेगा.

सभा के दिन भीड़ में मैं भी था. मुझे जरूर होना चाहिए था. मां को सभा में लाया गया. उसके हाथ उसकी पीठ के पीछे बंधे हुए थे और हमें, हमारी भीड़ को हुक्म दिया गया कि वह जिस समय हमारे सामने से गुजारी जाये, हर एक आदमी उसे थप्पड़ मारे और यह नारा लगाये कि वह सबसे घटिया औरत है.

एक साथ मुक्के और थप्पड़ बरस पड़े. मां धरती पर गिर पड़ी. इसका अर्थ था कि अब उसे लातों से मारने का समय आ गया था.

मेरी बारी भी आयी. . . और मेरी लात को कांपने का अपराध करने का अधिकार नहीं था.

मेरी पत्नी इस पाप को करने से यह कहकर बच गयी कि रोटी पकाने के लिए उसका संयुक्त रसोईघर में रहना आवश्यक था. सबको रात की रोटी खिलाकर वह छिपती हुई नर्सरी में गयी. तब तक मां को अधमरी दशा में वहां वापस पहुंचा दिया गया था. उस दिन उस बच्चे को भी मार-मारकर उन्होंने अचेत-सा कर दिया था. मां ने वहां पहुंचते ही बच्चे को अपनी छाती से लगा लिया था. . .और फिर एक चटाई पर लेटी, बच्चे से बतियाती,कराहती रही थी.

मेरी पत्नी के कानों में उसके टूटे-फूटे शब्द पड़ते रहे. वह बच्चे से कह रही थी, "आज मैं अपने बेटे के लिए बोझिल हो गयी. . . उसने मुझे लात मारी . . . तू छोटा है, तू कुछ नहीं समझता . . चल, हम यहां से कहीं दूर चलें . . ."

बच्चा कभी होश में आता था, तो चांदी की तितली के बारे में पूछता था.

मां उससे कह रही थी, "चल, हम नदी के दूसरे किनारे की ओर चलें. वहां जंगल में हम तितलियां ढूंढेंगे."

मेरी पत्नी ने देखा कि मां बच्चे को लेकर गिरती-पड़ती कहीं चल दी थी. मेरी पत्नी उसके पीछे-पीछे चल पड़ी और उसने देखा कि बच्चा मेरी मां की गर्दन से चिपटा हुआ था.

सामने नदी आ गयी थी. मां चलती जा रही थी. पानी उसके टखनों तक, घुटनों तक होता हुआ उसके कंधे तक आ गया था और फिर सिर से भी ऊंचा हो गया.

मेरी पत्नी दौड़कर उसे बचा सकती थी, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया. उसने मेरे सिवा किसी को भनक तक नहीं पड़ने दी. उसी दिन मुझे पता चला कि जितना मैं समझता था, मेरी पत्नी उससे बहुत ज्यादा दयावान थी. □

अनुवाद : सुरजीत

घटना कथा

चुनाव

दिनेश त्यागी

चुनाव में जीतने के बाद पोपटरामजी ने जनता का धन्यवाद करने के लिए एक सभा का आयोजन किया. सभा में हजारों-लाखों की संख्या में लोग पहुंचे. उसी भीड़ में एक ग्रामीण लल्लू राम भी था, जो नेताजी के दर्शन करने आया था. दो घंटे की इंतजार के बाद जब पोपटराम जी स्टेज पर पहुंचे तो लल्लू राम से पूछे बिना रहा न गया. . .

"यो ही है परधान मनतरी?"

रामदीन ने कहा, "नहीं यह तो पोपटरामजी हैं, हमारे इलाके से चुनाव जीते हैं."

"पर हमनै तो वोट परधान मंतरीजी कू दिया था. . .और परधानजी बो कै रये थे बो जीत गये हैं. फिर यो पोपटराम कैसे जीत गया?"

"भई इन्हें ही तो वोट दिया था हम सबने." रामदीन ने कहा.

"ना मन्नै तो परधान मंतरी कू दिया था. उसके निसान पै मोहर लगाई थी. परधानजी नै कई थी उसके निसान पर मोहर लगावैगा तो बोई परधान मंतरी बनैगा. कल रेडियो भी कै रया था परधान मंतरी जीत गया, फिर बीच मैं यो पोपटराम कहां सैं आ गया. हम ना सुनते इसका भासण-वासण. हम तो उसी का सुननै आये थे.

और लल्लू राम अपने साथ आये ग्रामीणों को साथ लिये, बिना भाषण सुने ही अपने गांव की ओर चल दिया. □

—1/5497, बलबीर नगर विस्तार, शाहदरा, दिल्ली-110032.

शेर

सुरजीत

जंगल में बहुत से जानवर एक स्थान पर बैठे जुगाली कर रहे थे कि सहसा कहीं एक शेर प्रकट हुआ और कहने लगा, "मैं शेर हूं. मुझसे डरो. मैं शेर हूं. मुझसे डरो." यह सुनते ही सब जानवर तो भाग गये, पर एक बूढ़ा जंगली भैंसा आगे बढ़ा और शेर को जोर से एक टक्कर जमाकर हवा में उछाल दिया. शेर धप्प-से धरती पर गिरा तो उसकी खाल के अंदर एक भेड़िया प्रकट हुआ और कहने लगा, "भाई, तुम्हें यह कैसे पता चला कि मैं शेर नहीं हूं."

बूढ़े भैंसे ने उत्तर दिया, "असली शेर यह कभी नहीं कहता कि मैं शेर हूं." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

<u>उर्दू कहानी</u>

१९१९ की एक घटना

सआदत हसन मंटो

जिसके जन्मदाता का कोई अता-पता न हो, जो एक पेशेवर तवायफ की कोख से जन्मा हो, जिसकी बहनें भी पेशेवर तवायफें हों, जिसे अपने घर-बार की कोई चिंता न हो, जो बिना किसी काम-धाम के ऐशो-आराम की जिंदगी भी जी रहा हो, राष्ट्रीय सत्ता संघर्ष में आप उससे कोई उम्मीद कर सकते हैं क्या? शायद हां, शायद नहीं, तो फिर?

यह 1919 की बात है भाई जान, जब रोलट एक्ट के खिलाफ सारे पंजाब में एजीटेशन हो रही थी. मैं अमृतसर की बात कर रहा हूं. सर माइकल ओडवाइर ने डिफेंस आफ इंडिया रूल्स के अधीन गांधीजी का दाखिला पंजाब में बंद कर दिया था. वे इधर आ रहे थे कि पलवल के पास उनको रोक लिया गया और गिरफ्तार करके बंबई भेज दिया गया. जहां तक मैं समझता हूं भाई जान, अगर अंग्रेज यह गलती न करता तो जलियांवाला बाग का हादसा शासन के काले इतिहास में ऐसे खूनी सफे को भी न बढ़ाता.

क्या मुसलमान, क्या हिंदू, क्या सिख, सबके दिल में गांधीजी की बेहद इज्जत थी. सब उन्हें महात्मा मानते थे. जब उनकी गिरफ्तारी की खबर लाहौर पहुंची तो सारा कारोबार एकदम बंद हो गया. यहां से अमृतसरवालों को मालूम हुआ, इसलिए चुटकियों में पूरी हड़ताल हो गयी.

कहते हैं कि नौ अप्रैल की शाम को डॉक्टर सत्यपाल और डॉक्टर किचलू की जलावतनी के हुकुम डिप्टी कमिश्नर को मिल गये थे. वह उनका पालन करने के लिए तैयार नहीं थे. इसलिए कि उसके खयाल के मुताबिक अमृतसर में किसी हंगामाखेज बात का खतरा नहीं था. लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरअमन तरीके पर प्रोटेस्ट जलसे वगैरा करते थे, जिनसे हिंसा का सवाल ही पैदा नहीं होता था. मैं अपनी आंखों देखा हाल बयान करता हूं. नौ को रामनवमी थी. जुलूस निकला, मगर मजाल है, जो किसी ने हुक्काम की मर्जी के खिलाफ एक कदम उठाया हो. लेकिन भाई जान, सर माइकल अजब औंधी खोपड़ी का इंसान था. उसने डिप्टी कमिश्नर की एक न सुनी. उस पर बस यही खौफ सवार था कि ये लीडर महात्मा गांधी के इशारे पर साम्राज्य का तख्ता उलटने पर तत्पर हैं. और जो हड़तालें हो रही हैं और जलसे आयोजित हो रहे हैं, उनके पीछे यही साजिश काम कर रही है.

डॉक्टर किचलू और डॉक्टर सत्यपाल की जलावतनी की खबर पलक झपकते शहर में आग की तरह फैल गयी. हर आदमी का दिल उदास था. हर वक्त धड़का-सा लगा था कि कोई बहुत बड़ा हादसा बरपा होने वाला है, लेकिन भाई जान, जोश बहुत ज्यादा था. कारोबार बंद थे. शहर कब्रिस्तान बना हुआ था, पर उस कब्रिस्तान की खामोशी में भी एक शोर था. जब डॉक्टर किचलू और सत्यपाल की गिरफ्तारी की खबर आयी तो लोग हजारों की तादाद में इकट्ठे हुए कि मिलकर डिप्टी कमिश्नर बहादुर के पास जायें और अपने महबूब लीडरों की जलावतनी के हुकुम मनसूख कराने की प्रार्थना करें, मगर वह जमाना भाई जान प्रार्थनाएं सुनने का नहीं था. सर माइकल फ़ाउन आला हाकिम था. उसने प्रार्थना सुनना तो एक तरफ, लोगों की इस भीड़ को गैरकानूनी करार दे दिया.

अमृतसर—वह अमृतसर, जो कभी आजादी के आंदोलन का सबसे बड़ा केंद्र था, जिसके सीने पर जलियांवाला बाग जैसा गर्व-योग्य जख्म था, आज किस हालत में है? लेकिन छोड़िए इस किस्से को. दिल को बहुत दुख होता है. लोग कहते हैं कि इस पवित्र शहर में जो कुछ आज से पांच बरस पहले हुआ, उसके जिम्मेदार भी अंग्रेज हैं. होगा भाई जान, पर सच पूछिए तो इस लहू में, जो वहां बहा है, हमारे अपने ही हाथ रंगे हुए नजर आते हैं. खैर. . .

डिप्टी कमिश्नर का बंगला सिविल लाइंस में था. हर बड़ा अफसर और हर बड़ा टोडी शहर के इस अलग-अलग हिस्से में रहता था. आपने अमृतसर देखा हो तो आपको मालूम होगा कि शहर और सिविल लाइंस को मिलानेवाला एक पुल है, जिस पर से गुजरकर आदमी ठंडी सड़क पर पहुंचता है, जहां हाकिमों ने अपने लिए स्वर्ग बनाया हुआ था.

हुजूम जब हाल दरवाजे के करीब पहुंचा तो मालूम हुआ कि पुल पर घुड़सवार गोरों का पहरा है. हुजूम बिलकुल न रुका और बढ़ता गया. भाई जान, मैं उसमें शामिल था. जोश कितना था, मैं यह बयान नहीं कर सकता, लेकिन सब निहत्थे थे. किसी के पास एक मामूली छड़ी तक नहीं थी. असल में वह तो सिर्फ इस गर्ज से निकले थे कि सामूहिक रूप से अपनी आवाज शहर के हाकिम तक पहुंचाएं और उससे प्रार्थना करें कि डॉक्टर किचलू और डॉक्टर सत्यपाल को बिना शर्त रिहा कर दिया जाये. हुजूम पुल की तरफ बढ़ता रहा. लोग करीब पहुंचे तो गोरों ने फायर शुरू कर दिये. इससे भगदड़ मच गयी. वे गिनती में सिर्फ बीस-पच्चीस थे और हुजूम सैकड़ों में था, लेकिन भाई जान, गोली की दहशत बहुत होती है. ऐसी अफरा-तफरी फैली कि रहे खुदा का नाम, कुछ गोलियों से घायल हुए और कुछ भगदड़ में जख्मी हुए.

दायें हाथ को गंदा नाला था. धक्का लगा तो मैं उसमें गिर पड़ा. गोलियां चलनी बंद हुईं तो मैंने उठकर देखा. हुजूम तितर-बितर हो चुका था. जख्मी सड़क पर पड़े थे और पुल पर गोरे खड़े हंस रहे थे. भाई जान, मुझे बिलकुल याद नहीं कि उस वक्त मेरी दिमागी हालत किस किस्म की थी. मेरा खयाल है कि मेरे होश-हवास पूरी तरह सलामत नहीं थे. गंदे नाले में गिरते वक्त तो मुझे बिलकुल होश नहीं था. जब बाहर निकला तो जो हादसा घटित हुआ था, उसके नक्श धीरे-धीरे दिमाग में उभरने शुरू हुए.

दूर शोर की आवाज सुनाई दी. जैसे बहुत से लोग गुस्से में चीख-चिल्ला रहे हों. मैं गंदा नाला पार करके जाहिरा पीर के तकिये से होता हुआ हाल दरवाजे के पास पहुंचा तो देखा कि तीस-चालीस नौजवान जोश में भरे पत्थर उठा-उठाकर दरवाजे के घड़ियाल पर मार रहे हैं.

उसका शीशा टूटकर सड़क पर गिरा तो एक लड़के ने बाकियों से कहा, "चलो, मलिका का बुत तोड़ें!"

दूसरे ने कहा, "नहीं यार. . . कोतवाली को आग लगायें."

तीसरे ने कहा, "और सारे बैंकों को भी!"

चौथे ने उनको रोका, "ठहरो, इससे क्या फायदा होगा. चलो, पुल पर उन लोगों को मारें!"

मैंने उसको पहचान लिया. यह थैला कंजर था. नाम मुहम्मद तुफैल था, मगर थैला कंजर के नाम से मशहूर था. इसलिए कि एक तवायफ के गर्भ से था. बड़ा आवारागर्द था. छोटी उम्र में ही उसको जुए और शराबनोशी की लत पड़ गयी थी. उसकी दो बहनें शमशाद और अलमास अपने वक्त की खूबसूरत तवायफें थीं. शमशाद का गला बहुत अच्छा था. उसका मुजरा सुनने के लिए रईस बड़ी-बड़ी दूर से आते थे. दोनों अपने भाई की करतूतों से बहुत परेशान थीं. शहर में मशहूर था कि उन्होंने एक किस्म से उससे संबंध-विच्छेद कर रखा है. फिर भी वह किसी न किसी हीले से अपनी जरूरतों के लिए उनसे कुछ न कुछ वसूल कर ही लेता था. वैसे वह बहुत खुशपोश रहता था. अच्छा खाता था, अच्छा पीता था. बड़ा सफाई-पसंद था. लतीफे सुनाने की आदत उसमें कूट-कूटकर भरी थी. मिरासियों और भांड़ों की आदतों से बहुत दूर रहता था. लंबा कद, भरे-भरे हाथ-पांव, मजबूत कसरती बदन, नाक-नक्शे का भी खासा था.

पुरजोश लड़कों ने उसकी बात न सुनी और मलिका के बुत की तरफ चलने लगे. उसने फिर उनसे कहा, "मैंने कहा, मत जाया करो अपना जोश! इधर आओ मेरे साथ. चलो, इन गोरों को मारें, जिन्होंने हमारे बेकसूर आदमियों की जान ली है और इन्हें जख्मी किया है. . खुदा की कसम, हम सब मिलकर उनकी गर्दन मरोड़ सकते हैं, चलो. . ."

कुछ चल चुके थे. बाकी रुक गये. थैला पुल की तरफ बढ़ा तो उसके पीछे चलने लगे. मैंने सोचा कि भांओं के यह लाल बेकार मौत के मुंह में

आदेश

विनोद गुप्ता

उस दिन हमारे महाविद्यालय में प्राचार्य कक्ष में प्राध्यापकों की एक बैठक चल रही थी. इसी बीच टेलीफोन की घंटी बजी.

प्राचार्य ने टेलीफोन उठाया और बातचीत शुरू हुई, "हलो, मैं प्राचार्य बोल रहा हूं."

"नमस्ते, मैं एस. डी. ओ. बोल रहा हूं."

"नमस्ते."

"बात यह है कि प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल का निधन हो गया है. कलेक्टर का आदेश है कि शासकीय भवनों पर लगे राष्ट्रीय झंडे झुकाये जायें. अतः आप अपने यहां झंडे झुका दें."

"लेकिन हमारे महाविद्यालय के भवन पर तो झंडा लगा ही नहीं है, झुकाएं किसे?"

"नहीं लगा है तो कोई बात नहीं, पहले झंडा लगाएं, फिर उसे झुकाएं."

एस. डी. ओ. के कहने के मुताबिक प्राचार्य महोदय ने ताबड़तोड़ एक राष्ट्रीय झंडा खरीदा, उसे महाविद्यालय के भवन पर लगवाया और फिर उसे झुकाया गया. □

—अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी-451551 (मध्य प्रदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा रहे हैं. फव्वारे के पास मैं दुबका खड़ा था. वहीं से मैंने थेले को आवाज दी और कहा, "मत जाओ यार. . .क्यों अपनी और उनकी जान के पीछे पड़े हो. . !"

थेले ने यह सुनकर अजीब-सा कहकहा बुलंद किया और मुझसे कहा, "थेला सिर्फ यह बताने चला है कि वह गोलियों से डरने वाला नहीं." फिर वह अपने साथियों से मुखातिब हुआ, "तुम डरते हो तो वापस जा सकते हो!"

ऐसे मौकों पर बढ़े हुए कदम कैसे वापस हो सकते हैं और फिर वह भी उस वक्त जब लीडर अपनी जान हथेली पर रखकर आगे-आगे जा रहा हो. थेले ने कदम तेज किये तो उसके साथियों को भी करने पड़े.

हाल दरवाजे से पुल का फासला कुछ ज्यादा नहीं होगा. कोई साठ-सत्तर गज के करीब. . थेला सबसे आगे-आगे था. जहां से पुल का दोनों ओर का समानांतर जंगला शुरू होता है, वहां से पंद्रह-बीस कदम के फासले पर दो घुड़सवार गोरे खड़े थे. थेला नारे लगाता जब जंगले के पास पहुंचा तो फायर हुआ. मैं समझा कि वह गिर पड़ा है, लेकिन देखा कि वह उसी तरह. . . जिंदा आगे बढ़ रहा है, उसके बाकी साथी डरकर भाग उठे थे. मुड़कर उसने पीछे देखा और चिल्लाया, "भागो नहीं. . आओ. . .!"

उसका मुंह मेरी तरफ था कि एक और फायर हुआ. पलटकर उसने गोरों की तरफ देखा और पीठ पर हाथ फेरा. भाई जान, नजर तो मुझे कुछ नहीं आना चाहिए था, मगर मैंने देखा कि उसकी सफेद बोसकी की कमीज पर लाल-लाल धब्बे थे. वह और तेजी से बढ़ा, जैसे जख्मी शेर. एक और फायर हुआ. वह लड़खड़ाया, मगर कदम एकदम मजबूत करके वह घुड़सवार गोरे पर लपका और पलक झपकते में न जाने क्या हुआ. घोड़े की पीठ खाली थी. गोरा जमीन पर था और थेला उसके ऊपर. दूसरे गोरे ने जो करीब था और पहले बौखला गया था. बिदकते हुए घोड़े को रोका और धड़ाधड़ फायर शुरू कर दिये. उसके बाद जो कुछ हुआ, मुझे मालूम नहीं. . मैं वहां फव्वारे के पास बेहोश होकर गिर पड़ा.

भाई जान, जब मुझे होश आया तो मैं अपने घर में था. कुछ पहचान के आदमी मुझे वहां से उठाकर लाये थे. उनकी जबानी मालूम हुआ कि पुल पर से गोलियां खाकर हुजूम उत्तेजित हो गया था. नतीजा इस उत्तेजना का यह हुआ कि मलिका के बुत को तोड़ने की कोशिश की गयी. टाउन हाल और तीन बैंकों को आग लगी और पांच या छह यूरोपियन मारे गये. खूब लूट मची.

लूट-खसोट का अंग्रेज अफसरों को इतना खयाल नहीं था. पांच या छह यूरोपियन मारे गये थे. उसका बदला लेने के लिए चुनांचे जलियांवाला बाग का खूनी हादसा घटित हुआ. डिप्टी कमिश्नर बहादुर ने शहर की बागडोर जनरल डायर के सुपुर्द कर दी. इसलिए जनरल साहब ने बारह अप्रैल को फौजियों के साथ शहर के विभिन्न बाजारों में मार्च किया और दर्जनों बेगुनाह आदमी गिरफ्तार किये. तेरह को जलियांवाला बाग में जलसा हुआ. करीब-करीब पच्चीस हजार का मजमा था. शाम के करीब जनरल डायर सशस्त्र गोरखों और सिखों के साथ वहां पहुंचा और निहत्थे आदमियों पर गोलियों की बारिश शुरू कर दी.

उस वक्त तो किसी को जानी नुकसान का ठीक अंदाजा नहीं था. बाद में जब जांच हुई तो पता चला कि एक हजार मरे हैं और तीन या चार हजार के करीब जख्मी. . . लेकिन मैं थेले की बात कर रहा था. . भाई जान, आखों देखी आपको बता चुका हूं. बेऐब जात खुद की है. मरहूम (स्वर्गीय) में चारों ऐब शरई थे. एक पेशेवर तवायफ के गर्भ से था, मगर जियाला था. मैं अब यकीन के साथ कह सकता हूं कि उस दुष्ट गोरे की पहली गोली भी उसे लगी थी. आवाज सुनकर उसने जब पलटकर अपने साथियों की तरफ देखा था और उन्हें हौसला दिलाया था तो जोशी की हालत में उसको मालूम नहीं हुआ था कि उसकी छाती में गर्म-गर्म सीसा उतर चुका है. दूसरी गोली उसकी पीठ में लगी. तीसरी फिर सीने में. . . मैंने देखा नहीं, पर सुना है, जब थेले की लाश गोरे से जुदा की गयी तो उसके दोनों हाथ उसकी गर्दन में इस बुरी तरह जकड़े हुए थे कि अलग नहीं होते थे. गोरा जहन्नुम सिधार चुका था.

दूसरे दिन जब थेले की लाश कफन-दफन के लिए उसके घरवालों के सुपुर्द की गयी तो उसका बदन गोलियों से छलनी हो चुका था. दूसरे गोरे ने तो अपना पूरा पिस्तौल उसपर खाली कर दिया था. . . मेरा खयाल है, उस वक्त मरहूम की रूह फानी जिस्म से उड़ चुकी थी. उस शैतान के बच्चे ने उसके मुरदा जिस्म पर चांद-मारी की थी.

कहते हैं, जब थेले की लाश मुहल्ले में पहुंची तो कोहराम मच गया. अपनी बिरादरी में वह इतना मकबूल नहीं था, लेकिन उसकी कीमा-कीमा लाश देखकर सब दहाड़ें मार-मारकर रोने लगे. उसकी बहनें शमशाद और अलमास तो बेहोश हो गयीं. जब जनाजा उठा तो उन दोनों ने ऐसे बैन किये कि सुननेवाले लहू के आंसू रोते रहे.

भाई जान, मैंने कहीं पढ़ा था कि फ्रांस के इंकलाब में पहली गोली वहां की एक टखियाली के लगी थी. मरहूम मुहम्मद तुफैल एक तवायफ का लड़का था. इंकलाब की इस जद्दोजहद में उसके पहली जो गोली लगी थी, दसवीं थी या पचासवीं. उसके बारे में किसी ने भी खोज नहीं की. शायद इसलिए कि सोसायटी में उस गरीब का कोई स्थान नहीं था. मैं तो समझता हूं कि पंजाब के उस खूनी गुसल में नहानेवालों की सूची में थेले कंजर का नाम-निशान तक नहीं होगा. . . और यह भी कोई पता नहीं कि ऐसी कोई सूची तैयार भी हुई थी.

सख्त हंगामी दिन थे. फौजी हुकूमत का दौर-दौरा था. वह देव, जिसे मार्शल ला कहते हैं, शहर के गली-गली कूचे-कूचे में डकारता फिरता था. बहुत अफरा-तफरी के आलम में उस गरीब को जल्दी-जल्दी यों दफन किया गया, जैसे उसकी मौत उसके शोक-संतप्त रिश्तेदारों का एक संगीन जुर्म था, जिसके निशान वह मिटा देना चाहते थे.

बस भाई जान, थेला मर गया. थेला दफना दिया गया और. . . और . . . यह कहकर मेरा हमसफर पहली बार कुछ कहते-कहते रुका और खामोश हो गया. गाड़ी दनदनाती हुई जा रही थी. पटरियों की खटाखट ने यह कहना शुरू कर दिया, "थेला मर गया. . .थेला दफना

सांप

रामनिवास मानव

तड़ातड़ तीन लाठियां पड़ीं, सांप तड़फकर वहीं ढेर हो गया. एक बोला, "मैंने ऐसी जमाकर लाठी मारी थी कि टिकते ही सांप के प्राण निकल गये."

"तुम्हारी लाठी ठीक जगह नहीं लगी थी. सांप मरा तो मेरी लाठी से था." दूसरा बोला.

"तुम दोनों झूठ बोल रहे हो." तीसरे ने कहा. "यदि मेरी लाठी न टिकती तो सांप मरता ही नहीं. तुम्हारी लाठियां खाकर तो सांप उल्टा काटने लपका था."

"झूठ!" एक साथ पहले दोनों के मुख से निकला. फिर एक बोला, "सांप को मारा हमने और श्रेय तुम लेना चाहते हो."

"यह बिल्कुल न होगा." दूसरा बोला.

तीसरा बोला, "न होगा तो न सही. सांप मैंने ही मारा है."

बात बढ़ी, बात बिगड़ी. थोड़ी देर पहले जो लाठियां सांप पर चली थीं, वे अब एक-दूसरे पर चल रही थीं. एक का सिर फूटा, दूसरे की बाजू टूटी, तीसरे को भी गंभीर चोटें आयीं. तीनों पड़े तड़फ रहे थे.

मरे हुए सांप ने तीनों को डस लिया था. ☐

—प्रवक्ता, सी. आर. एम. जाट कालेज, हिसार (हरियाणा)

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यंग्य चित्र : प्रतिमा

दिया गया. . .थेला मर गया. . .थेला दफना दिया गया. . .थेला के मरने और दफनाने के बीच कोई फासला नहीं था. जैसे वह उधर मरा और इधर दफना दिया गया और खटाखट के साथ उन शब्दों की एकरसता कुछ इतनी जज्बात से विहीन थी कि मुझे अपने दिमाग से उन दोनों को जुदा करना पड़ा, इसलिए मैंने अपने हमसफर से कहा, "आप कुछ और भी सुनानेवाले थे?"

चौंककर उसने मेरी तरफ देखा, "जी हां. . .उस दास्तान का एक अफसोसनाक हिस्सा बाकी है!"

मैंने पूछा, "क्या?"

उसने कहना शुरू किया, "मैं आपसे अर्ज कर चुका हूं कि थेले की दो बहनें थीं—शमशाद और अलमास, बहुत खूबसूरत. शमशाद लंबी थी. पतले-पतले नक्श. गिलाफी आंखें. ठुमरी बहुत खूब गाती थी. सुना है, खां साहब फतह अली खां से तालीम लेती रही थी. दूसरी अलमास थी. उसके गले में सुर नहीं था, लेकिन तवाये में अपना सानी नहीं रखती थी. मुजरा करती थी तो ऐसा लगता था कि उसका अंग-अंग बोल रहा है. हर भाव में एक घात होती थी. . .आंखों में वह जादू था, जो हर एक के सिर चढ़ के बोलता था.!"

मेरे हमसफर ने तारीफ में कुछ जरूरत से ज्यादा वक्त लगा लिया, मगर मैंने टोकना मुनासिब न समझा. थोड़ी देर के बाद वह खुद इस लंबे चक्कर से निकला और दास्तान के अफसोसनाक हिस्से की तरफ आया, "किस्सा यह है भाई जान कि उन आफत की परकाला दो बहनों के हुस्न-जमाल का जिक्र किसी खुशामदी ने फौजी अफसरों से कर दिया. . . बलवे में एक मेम, क्या नाम था उस चुड़ैल का. . .मिस. . .मिस शरोड मारी गयी थी. . .तय यह हुआ कि उनको बुलाया जाये और. . .और . . . जी भर के इंतकाम लिया जाये. . .आप समझ गये न भाई जान."

मैंने कहा, "जी हां!"

मेरे हमसफर ने एक आह भरी, "ऐसे नाजुक मामलों में तवायफें और कसबियां भी अपनी माएं-बहनें होती हैं. मगर भाई जान, यह मुल्क अपनी इज्जत को, मेरा खयाल है, पहचानता ही नहीं. जब ऊपर से इलाके के थानेदार को आर्डर मिला तो वह फौरन तैयार हो गया. इसलिए वह खुद शमशाद और अलमास के मकान पर गया और कहा कि साहब लोगों ने याद किया है. वह तुम्हारा मुजरा सुनना चाहते हैं. . .भाई की कब्र की मिट्टी भी अभी खुश्क नहीं हुई थी. अल्लाह को प्यारा हुए उस गरीब को सिर्फ दो दिन हुए थे कि यह हाजिरी का हुक्म सादर हुआ कि आओ, हमारे हुजूर नाचो. . .यातना का इससे बढ़कर तकलीफदेह तरीका क्या हो सकता है. . .ऐसी मिसाल मेरा खयाल है, शायद ही कोई और मिल सके. . . क्या हुक्म देनेवालों को इतना खयाल भी न आया कि तवायफ भी गैरतमंद होती है?. . .हो सकती है. . .क्यों नहीं हो सकती?" उसने अपने आप से सवाल किया, लेकिन मुखातिब वह मुझसे था.

मैंने कहा, "हो सकती है!"

"जी हां, थेला आखिर उनका भाई था. उसने किसी जुएखाने की लड़ाई-भिड़ाई में अपनी जान नहीं दी थी. वह शराब पीकर दंगा-फसाद करते हुए नहीं मरा था. उसने वतन की राह में बड़े बहादुराना तरीके से शहादत का जाम पिया था. वह एक तवायफ के गर्भ से था, लेकिन वह तवायफ मां थी और शमशाद और अलमास उसकी बेटियां थीं और थेले की बहनें थीं. . .तवायफें बाद में थीं. . .और वे थेले की लाश देखकर बेहोश हो गयी थीं. जब उसका जनाजा उठा था तो उन्होंने ऐसे बैन किये थे कि सुनकर हर आदमी लहू रोता था. . ."

मैंने पूछा, "वे गयीं?"

मेरे हमसफर ने उसका जवाब थोड़े विराम के बाद उदासी से दिया, "जी हां, जी हां! . . .गयीं. . .खूब सज-बनकर!" एकदम उसकी उदासी तीखापन अख्तियार कर गयी, "सोलह सिगार करके अपने बुलानेवालों के पास गयीं. . .कहते हैं कि खूब महफिल जमी. . .दोनों बहनों ने अपने जौहर दिखाये. जर्क-बर्क कपड़े पहने वे कोहकाफ की परियां लगती थीं. . . शराब के दौर चलते रहे और वे नाचती-गाती रहीं. . .ये दोनों दौर चलते रहे. . .और कहते हैं कि . . .रात के दो बजे एक बड़े अफसर के इशारे पर महफिल बरखास्त हुई. . ." वह उठ खड़ा हुआ और बाहर भागते हुए दरख्तों को देखने लगा.

पहियों और पटरियों की आहनी गड़गड़ाहट की ताल पर उसके आखिरी शब्द नाचने लगे, "बरखास्त हुई. . .बरखास्त हुई."

मैंने अपने दिमाग में उन्हें गड़गड़ाहट से नोचकर अलग करते हुए उससे पूछा, "फिर क्या हुआ?"

भागते हुए दरख्तों और खंभों से नजरें हटाकर उसने बड़े मजबूत स्वर में कहा, "उन्होंने अपने जर्क-बर्क कपड़े नोच डाले और अलफ नंगी हो गयीं और कहने लगीं. . . 'लो, देख लो. . .हम थेले की बहनें हैं. . .उस शहीद की, जिसके खूबसूरत जिस्म को तुमने सिर्फ इसलिए गोलियों से छलनी-छलनी किया था कि उसमें अपने वतन से मोहब्बत करने वाली रूह थी. . .हम उसकी खूबसूरत बहनें हैं. . .आओ, शहवत (वासना) के गर्म-गर्म लोहे से हमारा खुशबुओं में बसा हुआ जिस्म दागदार करो. . . मगर ऐसा करने से पहले सिर्फ हमें एक बार अपने मुंह पर थूक लेने दो.' "

यह कहकर वह खामोश हो गया, कुछ इस तरह कि और नहीं बोलेगा. मैंने फौरन ही पूछा, "फिर क्या हुआ?"

उसकी आंखों में आंसू डबडबा आये, "उनको. . .उनको गोली से उड़ा दिया गया!"

मैंने कुछ न कहा. गाड़ी आहिस्ता होकर स्टेशन पर रुकी तो उसने कुली बुलाकर अपना सामान उठवाया. जब जाने लगा तो उससे कहा, "आपने जो दास्तान सुनायी, उसका अंजाम मुझे आपका खुदसाख्ता (स्वयं गढ़ा) लगता है!"

एकदम चौंककर उसने मेरी तरफ देखा, "यह आपने कैसे जाना?"

मैंने कहा, "आपके लहजे में एक नाकाबिले-बयान दर्द था!"

मेरे हमसफर ने अपने गले की तल्खी थूक के साथ निगलते हुए कहा, "जी हां. . .उन हराम. . ." वह गाली देते हुए रुक गया, "उन्होंने अपने शहीद भाई के नाम पर बट्टा लगा दिया!" यह कहकर वह प्लेटफार्म पर उतर गया. □

प्रस्तुति : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगला कहानी

बोर

महाश्वेता देवी

मना लकड़ी के कारखाने में काम करने लगा. लोधाओं को उसने घुड़की दी "बाबू के इशारों पर नाचकर हम चोरी नहीं करेंगे. हम चोरी करते हैं, डकैती करते हैं, तिस पर भी अभाव भी तो नहीं मिटता, मिटता है क्या ?" . . . . लेकिन क्या मना और अन्य लोधा अपने इस निश्चय पर अडिग रह सके ? क्या दारोगा, साहूकार और सरकारी बाबू को इन आदिवासियों का यह निर्णय रास आया. . . .? तथाकथित सभ्य समाज के कर्ता-धर्ताओं की नीति-राजनीति के तहत शोषित हो रहे सांथाल आदिवासियों की व्यथा-कथा——

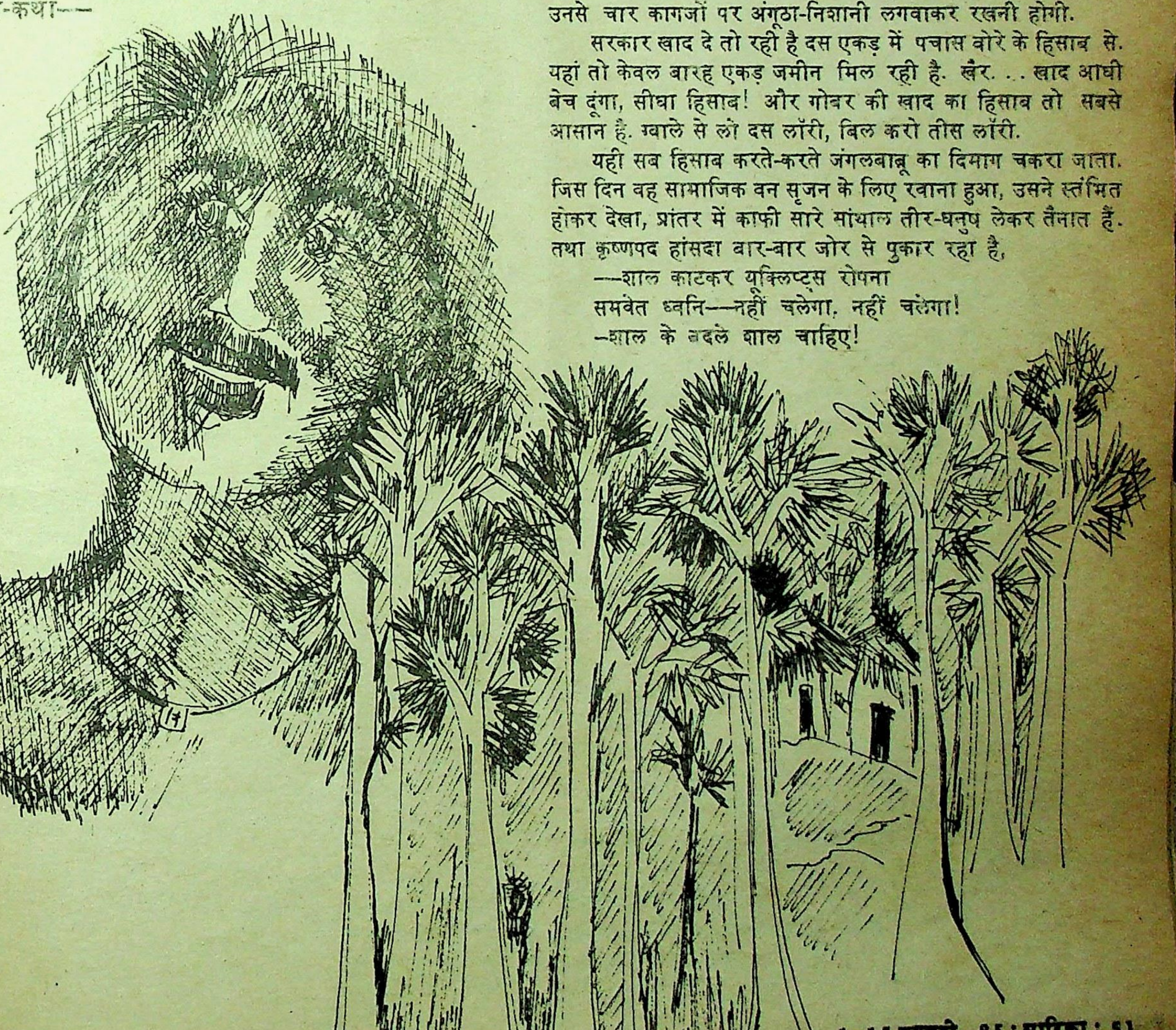

झाड़ग्राम शहर पीछे छोड़ बड़ी दूर एक गांव. सूखे मौसम में तो फिर भी जाते बनता है, बरसात में तो वह जगह काफी दुर्गम है. कुछ-कुछ जंगल, इक्के-दुक्के नाले, पतित प्रांतर, धान के खेत. रास्ते-वास्ते की तो बात ही जाने दीजिए.

फिर भी जगह मालिक-विहीन नहीं है.

विशाल-सा प्रांतर कांटेदार तार से घिरा है. एक खूंटी से बंधा बोर्ड झूल रहा है. उस पर अवशिष्ट लिखावट : सामाजिक वन सृजन प्रकल्प.

इस प्रांतर के शालवनों की कभी बड़ी प्रसिद्धि थी. सरकार ने क्योंकर इस कदर शालवनों का नामोनिशान मिटा दिया, कोई नहीं जानता. जब वन काटा जा रहा था, उस समय झाड़खंडियों का प्रभाव इतना फैला नहीं था. फैला होता तो इस कदर वन काटा नहीं जा सकता था.

शालवन काटकर यहां सामाजिक वन सृजन प्रकल्प होगा, यही निर्णय लिया गया. उस समय यूक्लिप्ट्स का चारा लगाया गया होता तो अब तक बड़ा हो गया होता. परंतु जिसके हाथ में इसका दायित्व था वह जंगलबाबू समझ गया था कि किसी भी समय उसकी बदली कर दी जाएगी. जो करना हो तुरत कर लेना होगा. जंगलबाबू 'ऐसा कर लेने' का क्या उपाय अपनाया जाय, इस पर गंभीर चिंतन करने लगा.

मान लिया जाय, दैनिक मजदूर लगाकर पौधे लगाने का हर मजदूर को——जंगलबाबू सोचने लगा, दैनिक मजदूरी देने की रेट है नौ रुपये साठ पैसे. हर मजदूर को तीस पैसे ही दूंगा; नौ रुपये तीस पैसे मेरे अपने होंगे. कम से कम एक सौ मजदूरों की तो जरूरत पड़ेगी ही. उनसे चार कागजों पर अंगूठा-निशानी लगवाकर रखनी होगी.

सरकार खाद दे तो रही है दस एकड़ में पचास बोरे के हिसाब से. यहां तो केवल बारह एकड़ जमीन मिल रही है. खैर. . . खाद आधी बेच दूंगा, सीधा हिसाब! और गोबर की खाद का हिसाब तो सबसे आसान है. ग्वाले से लो दस लॉरी, बिल करो तीस लॉरी.

यही सब हिसाब करते-करते जंगलबाबू का दिमाग चकरा जाता. जिस दिन वह सामाजिक वन सृजन के लिए रवाना हुआ, उसने स्तंभित होकर देखा, प्रांतर में काफी सारे सांथाल तीर-धनुष लेकर तैनात हैं. तथा कृष्णपद हांसदा बार-बार जोर से पुकार रहा है,

——शाल काटकर यूक्लिप्ट्स रोपना

समवेत ध्वनि——नहीं चलेगा, नहीं चलेगा!

–शाल के बदले शाल चाहिए!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा पेड़ नहीं चाहिए!

जंगलबाबू इस दृश्य को देख बहुत ही निराश हो गया. सदर दफ्तर तक भाग-दौड़कर उसे पता चला चुनाव से पहले इस मामले में कोई गड़बड़ नहीं होनी चाहिए.

सिर्फ जंगलबाबू ही नहीं केवलचंद रोहतगी भी बड़ी चोट खा गया. यह यूक्लिप्टस उसे कच्चा माल जुटाएगा, इसी भरोसे पर कागज का कारखाना बैठाने वाला था. उसने सारा इंतजाम कर लिया था.

सबकी सारी योजनाओं पर पानी फिर जाता है, तभी तो लकड़ी के बोर्ड पर नये सिरे से रंगाई नहीं होती. अंचल परित्यक्त हो गया.

रास्ता नहीं है.

नालों पर पुल भी नहीं है.

परित्यक्त. भुतहा अंचल.

सिर्फ असीम धैर्य लिए बैठा रहता है केवलचंद का मामा धूनीचंद. एसे पिछड़े अंचल में उसका घर दुर्ग की तरह चहारदीवारी से घिरा है. वह शहर क्यों नहीं चला जाता, सदर में क्यों नहीं रहता, ऐसा पूछने पर वह दुःख से हंसता.

"बाबू! सभी अगर शहर को लपकें तो गांव में कौन रहेगा?"

"चारों तरफ, लोधाओं के बीच ही रहते हो."

"इससे क्या?"

"दुष्ट कहीं के! परले दर्जे के चोर हैं. परले दर्जे के डाकू!"

"बाबूजी! हर वक्त सज्जनों का संग कहां से मिलेगा? और फिर इनके पास रहना भी तो जरूरी है. अपने घर पर रोज 'तुलसीदासजी' का पाठ करता हूं. वह सुनने से पाप कटता है, थोड़ा पुण्य भी होता है."

"अकेलापन नहीं महसूस होता?"

"जिसका जी चाहता है, यहां आ जाता है. मैं तो शहर जाता नहीं. शहर में धर्म-कर्म नहीं है."

धूनीचंद के पास लोग-बाग आते हैं. काफी भले-भले लोग आते हैं. दारोगा आते हैं, जंगलबाबू आते हैं, ठेकेदार आते हैं.

धूनीचंद की बातें लोधा लोग बताना नहीं चाहते. जरूरत भी क्या है? पानी में भी रहें, मगर से बैर भी मोल लें, ऐसा कभी हो सकता है?

उनके अभावों, शिकायतों या दो-चार रुपयों की जरूरत के समय धूनीचंद का ही भरोसा है. लोधाओं का उसके बिना चलता ही नहीं. उसका भी नहीं चलता लोधाओं के बिना. आजकल धूनीचंद पहले-सा खुश नहीं रहता. लोधा लोग अब पहले जैसे नहीं रहे. वे निहायत ही ओछेपन पर उतर आये हैं; यही बातें धूनीचंद बताता है पाराज कोटाल को.

"कहां? पहले की तरह तो माल अब मिलता नहीं?"

"वैसा हो नहीं पाता बाबू."

पाराज जरा अधीर होकर बोला, "असल में, मना के बिगड़ते ही जैसे सभी कैसे तो हो गए हैं. मना खुद भी चोरी-डकैती नहीं करेगा और न ही दूसरों को करने देगा."

"ऐसा! क्यों, क्या चोरी का खाना बुरा लगता है? बाप ने चोरी करके खिला-पिलाकर मना को इतना बड़ा नहीं किया?"

"मना को भेज दूंगा."

मना आया, विद्रोही-सा नहीं. काफी नम्र-नरम होकर ही आया.

धूनीचंद ने जब पूछा, "मना! बड़ी जोर से लगा क्या छाती में?"

मना रो पड़ा. वह बोला, "बाबू! बापू को उन लोगों ने पीटते-पीटते मार डाला उस दिन. बापू समेत इस साल तीन चले गये हमारे. तिस पर पंचायत ने कहा है खट-वटकर खाओ. अब चोरी मत करना. तभी तो बाबू! चोरी खुद भी नहीं करूंगा, उन लोगों को भी कुपथ से लौटा लाऊंगा."

धूनीचंद की छाती धधकने लगी. पर वह तो आखिर पक्का नट है. धूर्तों का राजा है वह. नम्र, स्नेह लिपटे स्वर में बोला, "बड़ा नेक इरादा है. मैं तुम लोगों से चोरी का माल खरीदता हूं. तुम लोग चोरी करो तो मेरे लिए बड़ी सुविधा है. परंतु धर्म-पथ पर लौटना चाहते हो, इंसान की तरह जीना चाहते हो, यह तो बड़ी अच्छी बात है."

"आशीर्वाद दीजिए बाबू!"

"क्या करोगे? खाओगे क्या?"

"टाउन के पास लकड़ी के कारखाने में काम करूंगा."

"जाना-आना कैसे करोगे?"

"उधार-कर्जा लेकर एक साइकिल खरीदूंगा."

"रुपयों का जुगाड़ हो जाने पर बताना. अच्छी चीज दूंगा तुझे. नहीं-नहीं चोरी का माल नहीं. मेरा बेटा तो टाउन में रहता है. मोपेट चलाता है. उसी का साइकिल है."

मना लकड़ी के कारखाने में काम करने लगा. लोधाओं को उसने घुड़की दे रखी है, "बाबू के इशारों पर नाचकर हम चोरी नहीं करेंगे. मार खाकर हम जान गंवाते हैं, हम जेल खटते हैं, उस वक्त बाबू कुछ सहायता करते हैं क्या? कुछ भी तो नहीं करते. चोरी करते हैं. डकैती करते हैं, तिस पर भी अभाव भी तो नहीं मिटता. मिटता है क्या?"

धूनीचंद बड़ी प्रशंसा करने लगा मना की. सबसे कहने लगा, "मना ने खासा काम कर दिखाया. खुद चोरी छोड़ दी, सभी की छुड़ा दी."

दारोगा धूनीचंद से बोला, "भला यह क्या हुआ? अरे! सबके सब धर्म-मार्ग पर लौट आये!"

इससे आपका तो सुनाम बढ़ रहा है. देखो! कितना जबर्दस्त दारोगा है! उनकी चोरी छुड़वा दी."

"सुनाम किसे चाहिए. मुझे तो पैसा चाहिए. लोधा चोरी करें, आप माल बेचें, मैं हिस्सा खाऊं.'"

"अरे दारोगा बाबू! घाटा तो मेरा भी बहुत हो रहा है. परंतु जिन्होंने चोरी छोड़ दी है उनसे मैं दोबारा चोरी नहीं करवा सकता."

"मना हरामजादे ने यह सर्वनाश किया है."

"धैर्य रखें दारोगा बाबू, ईश्वर पर विश्वास रखें. दूसरी जात चोरी करे तो अधर्म होता है. लोधा जाति चोरी छोड़ दे तो अधर्म होता है. लोधा जाति नंगे भिखारियों से रहते हैं. परंतु मेरा और आपका पालन-पोषण करते हैं. वे चोरी करें तो धर्म होता है. मना अगर ऐसा नहीं मानेगा तो रामजी उसे जरूर धर्म-मार्ग पर लौटा लायेंगे."

मना एक दिन धूनीचंद के पास आकर खड़ा हो गया. तकलीफें उठाकर उसने थोड़ा जमा किया और कुछ दोस्तों से उधार लिया.

"कितने रुपये जमा हुए?"

"एक सौ पच्चीस."

धूनीचंद मना से मुनाफा नहीं लेना चाहता. पुरानी साइकिल कम कीमत पर ही उसे दे देगा.

साइकिल लेकर बड़ी खुशी-खुशी चला गया मना. बार-बार उसे देखता. झाड़ता-पोंछता. साइकिल मिल गयी, अब उसे किसकी परवाह है!

दो दिन गुजरते न गुजरते गांव में बड़ा हंगामा मच गया. दारोगा आया, पुलिस आयी. मना ने साइकिल चुरायी है. वह भी थाने के चपरासी की साइकिल! मना चीखा-चिल्लाया, विरोध किया. बार-बार धूनीचंद की तरफ इशारा किया. कुछ फायदा नहीं हुआ. उसे थाने जाना ही पड़ा. दारोगा ने बार-बार सिर हिलाया. "छिः छिः! लोधाओं के रक्त में भला यह कैसा अभिशाप लिखा हुआ है? आखिर चोरी किए बिना उनसे रहा क्यों नहीं रहा जाता?"

संध्या समय धूनीचंद बैठा है.

अखराज, लोचन, चंदन, लोधा लोग, आकर खड़े हो गये. धूनीचंद ने उनमें से हरेक के हाथ में पांच-रुपये का एक-एक नोट पकड़ा दिया.

यह पेशगी है.

इसके बाद से जैसे-जैसे माल आयेगा, मिलता जायेगा.

वे लोग चुपचाप चले गये.

धूनीचंद रामजी की आरती करते-करते अश्रुपूर्ण आंखों से बोला, "यह सब तुम्हारी ही इच्छा है!" □

अनुवाद : रीता मेहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोरियाई कहानी

गद्दार

युवाल चौंग नियान

पिछड़े हुए विकासशील देशों को टुकड़ों-टुकड़ों में बांट देने वाले हाथ कौन होते हैं और वे ऐसा क्यों करते हैं? भारत हो, जर्मनी हो, साइप्रस हो या कोरिया, इनके टुकड़े होने और उनमें भिन्न-भिन्न राजनीतिक सत्ताएं स्थापित होने की प्रक्रिया क्या है? खुद को किस हालत में पाते हैं वहां के लोग? किस तरह बाप-बेटे, भाई-भाई और परिवार-परिवार के बीच अलगाव, बेगानेपन और डर को भर दिया जाता है कि निर्दोषों की हत्या पर भी लोग खामोश बने रहते हैं? ऐसे ही अनेक राजनीतिक और सामाजिक सवालों के जवाब तलाशती मर्मस्पर्शी कथा—

धिक्कार है पूर्व वालों पर, धिक्कार है पश्चिम वालों पर, धिक्कार है उन सब पर, जिन्होंने मेरे देश को लहूलुहान किया और उसको टुकड़े-टुकड़े कर दिया.

उन्होंने दरवाजे खटखटाये. दीवारों पर हथौड़े बरसाये, "बाहर! बाहर! हर व्यक्ति बाहर निकल कर खेल के मैदान में पहुंच जायें."

भय से कांपते हुए हम सब उठ खड़े हुए. हमने शीत सुबह में कंबल उतार फेंके. मेरे बाप, मेरी मां, मेरे बहन-भाई, सभी की 'बाहर! बाहर!!' चीख-पुकार और दस्तक जारी रही, "बाहर आओ, खेल के मैदान में."

"ओकसन के बारे में क्या खयाल है?" मेरी मां ने मेरे बाप से कहा, "उन लोगों को उसकी मौजूदगी का पता नहीं, उसे कहीं छिप जाना चाहिए."

"नहीं-नहीं." मेरे बाप ने जवाब दिया, "वह निश्चित रूप से उसकी तलाश कर लेंगे."

"लेकिन क्यों? हम उसे पिछले हिस्से में छिपा देते हैं. उसे कोई नहीं ढूंढ़ सकता."

"वे ढूंढ़ लेंगे, ढूंढ़ लेंगे. वह सूचना दिये बिना घरों में घुस जाते हैं. एक रात पहले हमारे जिले में उन्होंने बारह छापे मारे. आधी रात को वे दरवाजे तोड़कर जूतों समेत मकानों में घुस आये और घर-वालों को बाहर घसीट ले गये."

"जूतों समेत." मेरी मां क्षण भर के लिए चुप हो गयी. वह इस अविश्वसनीय पैशाचिक क्रिया पर अति विस्मित थी. गरीब से गरीब भिखारी और जाहिल किसान भी जूते उतारे बिना किसी के घर में प्रवेश करने की हिम्मत नहीं कर सकता.

फिर भी उसने अपनी बात पर आग्रह किया, "मुझे यकीन है, हम उसे सुरक्षापूर्वक छिपा सकते हैं."

"नहीं-नहीं." मेरे बाप ने प्रतिरोध में कहा, "यह ख़तरनाक कदम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा. बेहतर यही है कि वह हमारे साथ चले."

"लेकिन. . ." लेकिन बहस के लिए कोई समय न था, "बाहर निकलो, बाहर निकलो" नारे गूंज रहे थे और दरवाजे फट रहे थे. वे अब भी मौजूद थे और हर एक को हांक कर ले जाने पर तुले हुए थे, हर मर्द-औरत और बच्चे को. मैं भी अपने पिता के साथ खेल के मैदान की ओर चल दी.

मैं महीना भर पहले घर लौटी थी. मेरी एक वर्ष की छात्रवृत्ति खत्म हो गयी थी और मैं 'विकासशील मातृभूमि' के लिए पश्चिम का प्रकाश अपने साथ लायी थी. निश्चित समय से एक दिन पहले नाव 'सियोल' में आ लगी. रात्रि का अंतिम प्रहर था, जब मैं घर पहुंची. किसी पड़ोसी को मेरे आगमन का पता नहीं लग सका. सब घर-वाले मुझे देखकर बेहद खुश हुए. मेरे बाप ने कहा, "अब सो जाओ. सुबह बातें करेंगे. वह थक चुकी है."

थकी हुई तो थी. लंबी यात्रा के संकट ने मुझे उसी रात बुखार से ग्रस्त कर दिया. यों लगता था, जैसे घर पहुंचने तक मैं उसे रोके रखने में चमत्कारिक रूप में सफल हो गयी हूं. बहरहाल, सप्ताहों तक बिस्तर से लगी रही.

मेरी बीमारी के आरंभ में ही उत्तर की सेनाओं ने मेरे देश पर हल्ला बोल दिया. एक ही रात हम पर एक अजीब टोला शासक बन बैठा. यद्यपि वह हमारे देशवासी ही थे, लेकिन उन सबने विदेशी प्रशिक्षण का लबादा ओढ़ रखा था—दिल और दिमाग निर्दयी और भावनाहीन.

किसी सुदूर क्षेत्र में ग्लोब के दूसरी ओर अमरीकी राष्ट्रपति, रूसी प्रधानमंत्री, उनके सैनिक और राजनैतिक सलाहकार सिर जोड़कर बैठे हुए थे. उन्होंने अपने सामने नीले, पीले और सफेद-सुर्ख निशानों वाले नक्शे फैला रखे थे. दुनिया की किस्मत का फैसला हो रहा था. उस देश को टुकड़ों में बांट दिया गया. यहां कृत्रिम रेखाएं खींच दी गयीं. इधर भौगोलिक दीवारें खड़ी हो गयीं. इतिहास की पुस्तकों में लिखा है—'सैनिक समझौते के अधीन देश को दो भागों में बांट दिया गया है." साथ ही हमारे दिल-दिमाग, हमारी जिंदगियां और हमारे परिवार बंटकर रह गये.

मेरे प्रिय वतन! क्या तेरे चावलों और तेरी शराब का फिर पहले जैसा मजा आ सकेगा. क्या तेरी बांसुरियां और तेरे पंख वही तानें फिर दुहरा सकेंगे.

हम खेल के मैदान में पहुंच गये. कई सुहानी यादों को दामन में लिये हुए मैदान. . . अब जिंदगी की कटुतम यादों का स्मारक बनने वाला था. वह मैदान, जहां हमजोलियों के साथ बचपन में हम घंटों हंसी-खुशी खेला करते थे. वह मैदान जो हमारे जापानी स्वामियों के राज्यकाल में निर्मित हुआ था, जब पूरे कोरिया में हमें विदेशी भाषा में लिखने-पढ़ने और सोचने के लिए मजबूर किया जाता. जब किसी सार्वजनिक स्थान पर अपनी मातृभाषा का एक शब्द उच्चारण करने पर हमारे स्वामी जबरदस्त थप्पड़ लगाते. वह मैदान, जहां मेरा बाप कई मां-बापों के साथ शंतो मंदिरों के सामने झुकने के लिए बुलाया जाता और फिर उसी मैदान में हमारे स्वामी नवयुवकों के समान एकदम बदल कर रह गये. उन्होंने हमें भाई के नाम से पुकारा. वह हमें सांझी नस्ल की संतान कहने लगे और एक ही सांस्कृतिक विरासत का स्वामी बताकर हम नवयुवकों को 'निमंत्रण' दिया कि उनकी सेना में शामिल होकर 'संयुक्त पूर्वजों' की शान-शौकत कायम रखने के लिए लड़ाई में भाग ले. यों हमें पता चला कि युद्ध का पांसा पलट रहा है और उनके आदमी मर रहे हैं.

और फिर वही मैदान. . . हम शीत सुबह को नये स्वामियों के इशारे की प्रतीक्षा में खड़े थे. हजारों की संख्या में मां-बाप, बच्चे और बूढ़े जमा थे. मुझे कई पड़ोसी नजर आये, जिन्हें एक वर्ष से देखने का संयोग नहीं हुआ था, लेकिन वह सोच में इतने डूबे हुए थे कि मेरे अचानक आगमन पर जरा विस्मित हुए. हम शीत सुबह को नये स्वामियों के इशारे की प्रतीक्षा में थे.

आखिर वे प्रकट हुए. वे भारी बूटों और भारी राइफलों के साथ आये. वे अपने पीछे बारह आदमी घसीट कर ला रहे थे. बारह आदमी, जिनसे हम सब परिचित थे. बारह आदमी, जिनके साथ हम पले-बढ़े थे. बूटों और राइफलोंवाले आदमी मजमें में घुस गये. वे एक सौ या कुछ ज्यादा संख्या में थे. एक आदमी यहां, एक आदमी वहां. हर आदमी अपने पास किसी गैरआदमी की मौजूदगी तीव्रता से महसूस कर रहा था. और यह एहसास उनकी आत्मा में कैंसर की तरह जड़ें फला रहा था.

उनका नेता एक चबूतरे पर चढ़ा और फिर उसने धीरे-धीरे हमारे ऊपर नजर डाली. उसके इर्द-गिर्द चेहरों का एक समुद्र प्रवाहित था. इशारा हुआ और बारह में से एक आदमी उसके करीब खड़ा कर दिया गया. उसे हममें से हर एक अच्छी तरह जानता था. हमारे म्यूनिस्पल ऑफिस का एक क्लर्क, एक शरीफ आदमी, जिसने अपनी योग्यताओं के अनुसार हर काम संपन्न किया था. वह आदमी, जिसे तनख्वाह वसूल करने और हर शाम घर वापस आने से मतलब था.

मैंने जनसमूह में उसकी बीवी-बच्चों को पहचान लिया और उनके चेहरों पर भय की अनजानी परछाइयां लहराती हुई देखीं.

"कामरेडो," नेता ने चिल्लाकर कहा, "इस गद्दार को लोगों के सामने करो. यह वह आदमी है, जिसके हाथ में कई साल तक तुम्हारी

व्यंग्यचित्र : सुधीर तैलंग

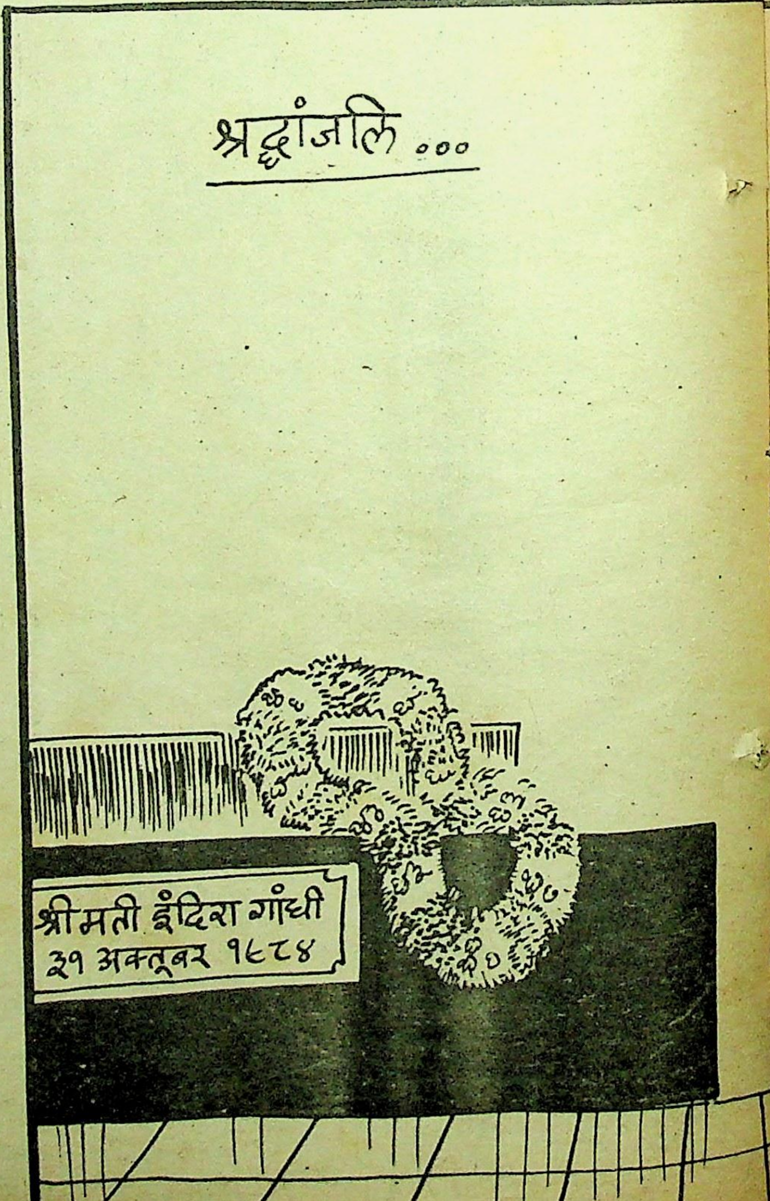

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानें रहीं. वही फैसला करता था कि तुम्हें चावल कब और कितना मिलना चाहिए. कामरेडो, जांच से पता चला है कि इसने जबरदस्त धांधलियां की हैं. जब इस धूर्त मुजरिम को अपने तौर-तरीके ठीक करने को कहा गया तो इसने विरोध और रूढ़िवादिता का रास्ता अपनाया. दस दिन से वह समाज में खुराक की ईमानदारी के बंटवारे की हर तजवीज को 'सबूताज' कर रहा है. साथियो," उसने ऊंची आवाज में पूछा, "इसका क्या हश्र होना चाहिए?"

"इसे मार डालो." मजमे में फैले हुए सौ कारिंदों ने एकस्वर में कहा और अपने मुक्के लहराते हुए जवाब दिया, "इसकी हत्या कर डालो."

चबूतरे पर खड़े हुए नेता ने स्वीकृति में सिर हिलाया, "कामरेडो, तुम्हारा धन्यवाद, गद्दार इसी सजा के अधिकारी हैं."

उसने अपना भारी पिस्तौल होलस्टर से निकाला और उस आदमी की खोपड़ी पर रखकर फायर दाग दिया. क्लर्क पलक झपकते लड़खड़ा कर चबूतरे पर गिर पड़ा. पूरे मजमे पर खा जाने वाली निस्तब्धता छा गयी थी.

"जालिमों को मृत्युदंड." सौ कारिंदों ने चीखकर कहा. मरने वाले का खून चबूतरे की दराजों से टपककर नीचे गिरा और मैदान की मिट्टी में रच-बस गया.

एक अन्य आदमी चबूतरे पर लाया गया.

"कामरेडो," नेता ने दुबारा गला फाड़कर कहा, "इस गद्दार को जनता के सामने लाओ."

जनसमूह में सहमी-सहमी खुसर-फुसर होने लगी. सबने उसे पहचान लिया था. मैंने अपने भाई को कहते हुए सुना, "पिताजी, क्या यह कम्युनिस्टों का एक नेता नहीं?"

"हां."

"तो फिर क्यों?"

"दक्षिणी कोरिया में. . . कम्यूनिस्टों की तीन किस्में हैं. रूस, चीन और उत्तरी कोरिया के प्रशिक्षित. वह अब आपस में हाथापाई कर रहे हैं."

नेता अपने आरोपों की सूची पूरी कर चुका था. उसने मजमे से फिर पूछा, "इस गद्दार की क्या दुर्दशा होनी चाहिए?"

"इसे मार डालो." सौ आदमी पहले की तरह चीखे, लेकिन इस बार नेता तनिक अप्रसन्न-सा नजर आता था.

"कामरेडो," मैंने पूछा है, इसके साथ क्या सुलूक होना चाहिए." किसी ने जवाब न दिया, "खूब सोच-समझ लो, एक मिनट बाद मैं दुबारा पूछूंगा."

सौ आदमियों ने घूरकर हमारी ओर देखा. फिर वे इधर-उधर घूमने लगे और एक दूसरे की आंखों में आंखें डालते हुए ऊंची आवाज में बोले, ताकि सब लोग उनकी बात सुन सकें, "मेरा ख्याल है, हमारे बीच कोई गद्दार मौजूद न होगा."

"इसे मार डालो." सौ आदमियों ने चिल्लाकर कहा.

"इसे मार डालो." हम होठों में बड़बड़ाये.

नेता अब खुश नजर आता था. उसने होलस्टर से पिस्तौल निकाला और आदमी के माथे में दाग दिया. भेजा बाहर उबल पड़ा. गर्म-गर्म खून ने एक बार फिर मैदान की मिट्टी के चुंबन लेने शुरू कर दिये.

इसके बाद दस बार नेता ने हमसे प्रश्न किया. दस बार हमने सरगोशी के अंदाज में कहा, "इसे मार डालो." और दस बार ही कोरिया के सपूतों का खून कोरिया की पवित्र मिट्टी में जज्ब हो गया.

हम असहाय और विवश-से सारा दृश्य देखते रहे. हमारे शरीरों पर कंपकंपी छायी हुई थी. यहां तक कि सुबह की ठंडी आगोश से गर्म दिन ने जन्म ले लिया.

मेरे प्यारे वतन!

क्या तेरी धान और तेरी शराब एक बार फिर वही मजा देगी?

क्या तेरे शंख और तेरी बांसुरियां एक बार फिर वही मधुर तानें बुलंद करेंगी. धिक्कार हो पूर्व के वासियों पर. धिक्कार हो पश्चिम वासियों पर. धिक्कार हो उन सब पर. जिन्होंने मेरे वतन को खून में नहला दिया और उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले. □

अनुवादः सुरजीत

चलते-चलते

यह लोकल रेडियो है. सुबह के सात बजे हैं. अब आप वीरेंद्र शर्मा से गप्पाचार सुनिए. कल रात पास के एक गांव में डाकू आये थे. उन्होंने गांव के कई सेठ व साहूकारों को लूटा और चले गये. विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि आज पुलिस का एक दस्ता जांच करने के लिए आया है. ऐसी संभावना है कि आज रात में कई दावतें होंगी, जश्न होंगे और किसी सुरसतिया, धनिया या मिठिया के पांव भारी होंगे. सुबह होते ही जांच का कार्य पूरा हो जायेगा. गांववाले पुलिस दल से खुश होकर गांव से विदाई देंगे, क्योंकि जांच का परिणाम 9 महीने बाद उन्हें स्वयं पता चल जायेगा. गप्पाचार समाप्त हुआ. □

—वीरेंद्र शर्मा 'मृदुल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब मिलने लगा है
डीलक्स निरोध
चिकनाईयुक्त

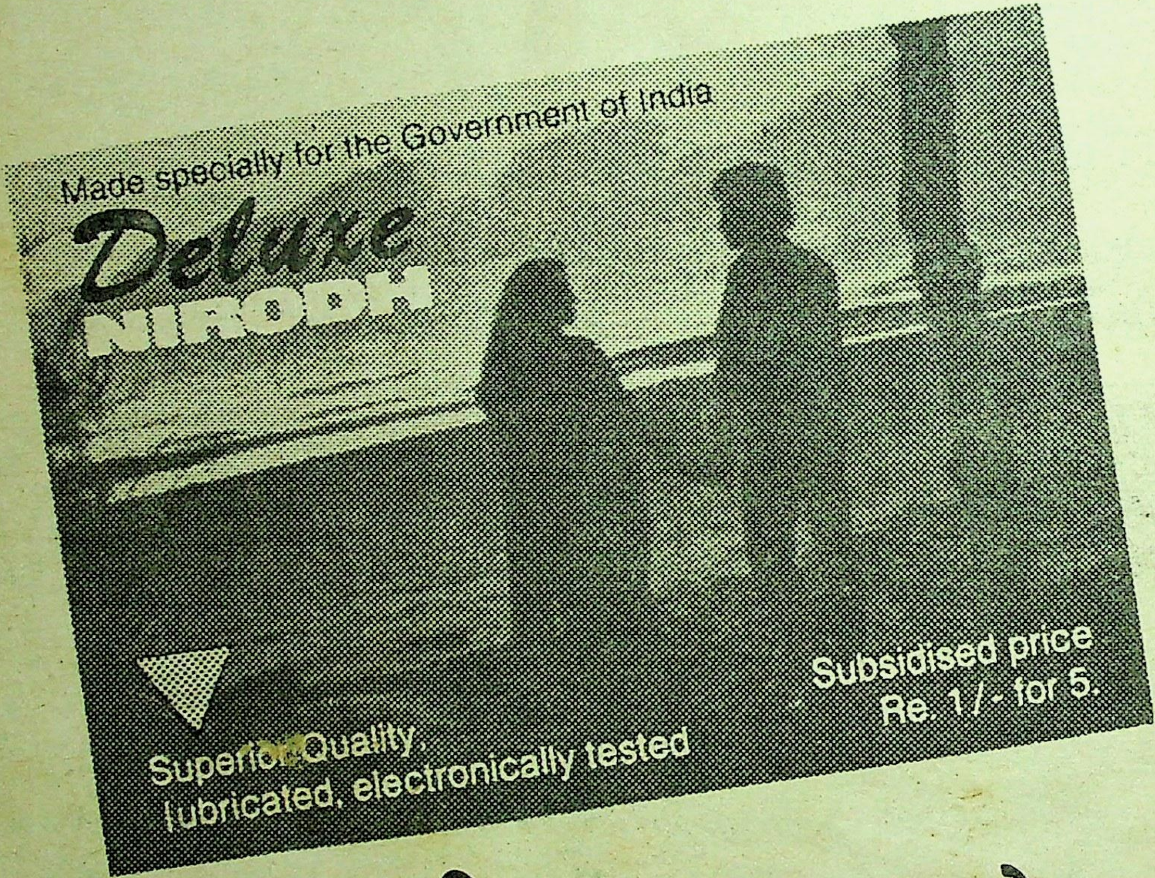

बढ़िया पसन्द वाले दम्पतियों के लिए

1 रु० के 5

*उत्तम कोटि
*इलेक्ट्रानिक तरीकों से परखा गया

सभी बड़े शहरों में बिकता है

davp 84/28

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Purvam Arora
2nd year Electronics & Engineering

कर्फ्यू

जगन्नाथप्रसाद दास

वे चाहे नेता हों, अभिनेता हों, साहित्यकार या धनवान या प्रशासनिक अधिकारी, हिंसा और दंगों के दौरान भी क्यों और कैसे मनुष्य के खिलाफ रची जा रही साजिशों और ऐयाशियों में लिप्त रहते हैं? सामान्य जन जीवन का दम घोंट देने वाले कर्फ्यू के बावजूद क्यों और कैसे चलता रह पाता है सत्ता और पैसे का यह जन विरोधी खेल? सवाल-जवाब करती एक विचारोत्तेजक कथा——

हालांकि शिवराज ने उसे आठ बजे रात को आने को कहा था लेकिन कालिदास उसके होटल पर साढ़े छह बजे ही पहुंच गया. इतनी जल्दी आने का बहाना यह था कि रात को आने में उसे असुविधा होती, किंतु वाकई उसके जल्दी आने का कारण यह था कि उसके पास कोई काम नहीं था और वह शिवराज से कुछ बातें करना चाहता था. जब वह वहां पहुंचा, शिवराज बैठा चाय पी रहा था. चाय के लिए पूछने पर कालिदास ने कहा, "शाम को पांच बजे के बाद मैं चाय नहीं पीता."

"तो फिर तुम्हें इंतजार करना पड़ेगा, क्योंकि रात की व्यवस्था नीलम करेगी. अभी-अभी नीलम बाथरूम में घुसी है, घंटे भर से पहले उसके बाहर निकलने की कोई उम्मीद नहीं."

"यह नीलम कौन है? उस बार जो एक्ट्रेस तुम्हारे साथ आयी थी, जिससे तुमने मेरा परिचय करवाया था?"

"तो तुम्हें याद है! उसकी नयी फिल्म देखी है तुमने? अब तो एक फिल्म के लिए आठ लाख रुपये लेती है. कल श्रीनगर गयी थी शूटिंग के लिए. नीलम एयर लाइंस में काम करती है. दो दिन ऑफ ड्यूटी थी. मेरे साथ चली आयी."

फिल्म की बात चलने पर कालिदास को कुछ याद आया. उसने कहा, "पिछली बार मैंने तुम्हें अपनी स्क्रिप्ट दी थी. क्या किया उसका तुमने?"

"मेरे पास है. समय मिलते ही किसी अच्छे प्रोड्यूसर को दिखलाकर बातचीत करूंगा. किस तरह की फिल्म बनवाना चाहते हो तुम?"

"जिससे मुझे अधिक पैसा मिले."

"ठीक है, मैं कोई अच्छा प्रोड्यूसर तय कर दूंगा."

davp 84/28

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कालिदास ने अपनी कलाई कि घड़ी पर निगाह डाली. उसे आये पंद्रह मिनट हो चुके थे. नहीं, अब और अधिक इंतजार नहीं कर सकता, उसने मन ही मन निश्चित किया. शिवराज से कहा, "मैं और इंतजार नहीं कर सकता."

"यदि तुम कहो तो किसी और को स्क्रिप्ट दे दूं, लेकिन बाद में पछताओगे तुम."

"मैं अपनी स्क्रिप्ट के बारे में नहीं कह रहा था. चलो अब ह्विस्की निकालो." खिड़की से बाहर को झांकते हुए शिवराज ने कहा, "अभी तो अंधेरा भी नहीं हुआ है."

"अरे भाई, मैं कवि हूं." कालिदास ने जवाब दिया, "मेरे सोचते ही अंधेरा हो गया समझो. मेरे रात कहते ही सूर्यास्त हो जायेगा."

शिवराज वहां से उठकर अंदर गया और ह्विस्की और सोडा की बोतल लाकर कालिदास के सामने रख दी. कालिदास ने दिल खोलकर गिलास में ह्विस्की उड़ेली, उसमें सोडा मिलाया और उसे चूमते हुए बोला, "तुम्हारे काम की सफलता के लिए, हालांकि अभी तक मैं यह नहीं जान पाया हूं कि इस बार तुम किस काम से आये हो."

पर कालिदास ने गटगटाकर आधा गिलास खाली करते हुए कहा, "मेरे उस पुरस्कार के बारे में कुछ किया तुमने?"

"मुझे याद है, पर उसके लिए मुझे पूरी तरह से जुटना पड़ेगा. सबसे पहले यह जानना होगा कि निर्णायक मंडल में कौन-कौन हैं. जो उद्योगपति पुरस्कार दे रहे हैं, उनका काम किस मंत्री से होना है आदि. पूरे साल भर की योजना है. यदि अगले साल पुरस्कार मिले तो चलेगा ना?"

"चलेगा, लेकिन यदि उससे देर हुई तो मैं पुरस्कार लेने से साफ मना कर दूंगा, क्योंकि काफी जूनियर लेखक भी उसे पा चुके हैं."

इतने में तैयार होकर नीलम बाहर आयी. शिवराज ने कहा, "सुनती हो, हमारी अगली योजना होगी कालिदास को पुरस्कार दिलवाना, किंतु कालिदास, हमें क्या फायदा होगा?"

"मेरे पुरस्कार पाने के बाद तुम मेरे लिए यहां एक अभिनंदन समारोह करना. लोग समझेंगे कि तुम किसी पुरस्कृत कवि को जानते हो. कला और संस्कृति में भी तुम्हारी रुचि है."

"वाकई, बात तो तुम ठीक कह रहे हो."

शिवराज के अंदर चले जाने पर कालिदास ने नीलम से पूछा, "क्या आप समझती हैं कि यह काम संभव है?"

"कितना बड़ा काम है, यह तो मैं नहीं जानती." कुछ सोचकर नीलम ने कहा, "क्या किसी मंत्रिमंडल को भंग करने से भी अधिक मुश्किल है यह काम?"

कालिदास को याद आया कि निकट अतीत में किसी मंत्री से शिवराज की पटरी न खाने की वजह से पूरा का पूरा मंत्रिमंडल उसी के कारण भंग हुआ. वह कुछ कहना चाहता था कि इतने में हाथ में तौलिया लिये शिवराज अंदर से आया और बोला, "ना बाबा ना; अब उस तरह का काम मैं नहीं करूंगा. पैसा तो खर्च हुआ ही, लेकिन जितनी मेहनत करनी पड़ी, उसकी याद आते ही मुझे घबराहट होने लगती है." इतना कहकर वह फिर अंदर चला गया. कालिदास ने गिलास संभाला.

साहित्य के क्षेत्र में प्रसिद्धि हासिल करने के अलावा उसकी एकमात्र दूसरी कमजोरी थी पीना. करीब बैठी युवती की मौजूदगी को पूरी तरह नजरअंदाज करते हुए कालिदास अपने गिलास में मग्न हो गया.

कुछ देर बाद जब नीलम ने उससे समय पूछा, तब उसने घड़ी देखकर उसे समय बतलाया. इतने में उसे ध्यान आया कि कम से कम औपचारिकतावश तो इस लड़की से पूछ ही लेना चाहिए कि पीयेंगी या नहीं, लेकिन नीलम ने पीने से इंकार कर दिया. उसने कालिदास से पूछा, "आज शहर की हालत कैसी है?"

"इस शहर में कब क्या हो रहा है, यह जानना बड़ा मुश्किल है. हां, कल के अखबार से यह पता चल जायेगा कि मृतकों-घायलों की संख्या कितनी है."

"आपको कोई असुविधा नहीं हो रही है इस दंगे-फसाद से?"

"आप लोग जिस तरह आसमान में उड़ती हैं, हम लोग भी समझिए उसी तरह एक प्रकार के सामाजिक आसमान में उड़ते रहते हैं. नीचे सड़क पर क्या कुछ हो रहा है, उससे हमारा कोई सरोकार नहीं." बात को जरा कवित्वपूर्ण अंदाज में कालिदास ने कहा.

इतने में कालिंग बेल टनटना उठी. नीलम ने दरवाजा खोला. अंदर आते हुए उस सज्जन ने अपना परिचय दिया, "मैं त्रिलोकनाथ हूं."

"बैठिए." नीलम ने कहा, "शिवराज पांच मिनट में आ रहे हैं. आप स्वास्थ्य विभाग के सेक्रेटरी हैं ना?"

"नहीं, रसायन विभाग. आपने कैसे जान लिया?"

"सुबह मैंने ही सबसे शिवराज की बात करवायी थी! क्या पीयेंगे?"

अपनी घड़ी देखकर थोड़ी देर तक त्रिलोकनाथ ने कुछ सोचा, मानो उस दिन की शाम का पहला पेग लेने के लिए उसे किसी शुभ घड़ी का इंतजार हो. उसने कहा, "क्या है?"

कमरे के बैठनेवाले हिस्से से सोनेवाले हिस्से को अलग करनेवाले पर्दे को हटाते हुए नीलम ने उसे टेबुल पर सजी बोतलें दिखलायीं. त्रिलोकनाथ उठकर टेबुल के पास गया और एक-एक करके सभी बोतलों को परखने लगा. सभी पेय विदेशी और कीमती थे. इतने में शिवराज तौलिया पहनकर बाथरूम से बाहर निकलते हुए बोला, "क्षमा कीजिएगा, ऐसी हालत में आपसे हाथ मिला रहा हूं. आपके लिए एक ड्रिंक बनाने के बाद मैं कपड़े पहन लूंगा. कहिए क्या दूं?"

त्रिलोकनाथ को दुविधा में पड़े देखकर शिवराज ने कहा, "पहले स्काच से शुरू कीजिए. खाना आने पर मैं आपको खूब अच्छी बाटल पिलाऊंगा." गिलास भरकर शिवराज ने त्रिलोकनाथ की ओर बढ़ा दिया. त्रिलोकनाथ अपनी जगह पर आकर बैठ गया.

व्यंग्यचित्र : शौकीन गोयल

"अरे भई मैंने पार्टी बदल ली तो क्या हुआ,
मैं तो नहीं बदला हूं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीलम ने कहा, "सॉरी, मैं परिचय कराना भूल गयी. मिस्टर त्रिलोकनाथ, सेक्रेटरी, सुप्रसिद्ध लेखक कालिदास." सीधे-सादे पोशाकधारी व्यक्ति को पहले त्रिलोकनाथ ने कोई राजनीतिक नेता समझा था. अब लेखक के रूप में उसका परिचय पाकर बड़े ही अनमने ढंग से हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ बढ़ाया. कालिदास इस तरह की प्रतिक्रिया से पहले से ही वाकिफ था. त्रिलोकनाथ के बढ़े हुए हाथ की उपेक्षा करके उसने उसे नमस्कार किया. दो गिलास ह्विस्की पीने के बाद इस समय वह अच्छे मिजाज में था. उसने कहा, "लेकिन 'मेघदूत' के लेखक की तरह नहीं, हालांकि बहुत से लोग 'मेघदूत' के बारे में ही नहीं जानते."

त्रिलोकनाथ ने कहा, "आप ठीक कह रहे हैं. मैंने आपका नाम सुना ही नहीं था." कालिदास समझ गया कि अब युद्ध शुरू हो गया है. वह हारनेवालों में से नहीं था, लेकिन समय की नजाकत समझते हुए वह कुछ देर चुप रहा. उसने धीरे-धीरे पीकर गिलास खाली करने के बाद कहा, "क्या बतलाया आपने अपना नाम? त्रयंबकनाथ? रसायन मंत्री के प्राइवेट सेक्रेटरी?" त्रिलोकनाथ समझ गया कि अति साधारण लग रहा विपक्ष का व्यक्ति कोई कम घाघ नहीं है.

इसी बीच कपड़े डालकर शिवराज बाहर आया और फिर अपने लिए गिलास में पेय डालने लगा. कालिदास ने घड़ी देखकर कहा, "अब कोई नहीं आयेगा. आठ बजे से कर्फ्यू लग गया होगा." त्रिलोकनाथ ने कहा, "माइ गॉड, मैं तो बिल्कुल भूल गया था. रात को घर लौटने के लिए पास बनवाना तो मैं भूल ही गया."

शिवराज ने कहा, "परेशान होने की कोई बात नहीं है. मैं सारी व्यवस्था कर दूंगा." उसने नीलम से पूछा, "और कौन-कौन आ रहे हैं?"

"स्वास्थ्य विभाग के सेक्रेटरी, वाणिज्य उपमंत्री और राममूर्त्ति."

"कौन राममूर्त्ति?" त्रिलोकनाथ ने पूछा.

"वही विरोधी दल का नेता. भाई साहब के अति अंतरंग मित्र थे. आप उन्हें जानते हैं? बहुत अच्छे व्यक्ति हैं. जान-पहचान रखनी चाहिए. कभी आपके काम आ सकते हैं."

अपना-अपना गिलास भरकर जब पुनः सभी लोग आकर बैठ गये तब शिवराज ने कहा, "पहले मैं काम की बात कह डालूं. बात यह है कि मेरे एक मित्र एक तरह का केमिकल बनाते थे. इसे साबुन कारखानावाले खरीदा करते थे. अचानक एक दिन स्वास्थ्य विभागवालों ने कहा कि यह केमिकल शरीर के लिए हानिकारक है. उसी दिन से मेरे मित्र का कारखाना बंद हो गया; डेढ़ सौ लोग बेरोजगार हो गये. मेरे मित्र अमरीका आदि कई जगहों से सर्टिफिकेट लाये हैं कि यह केमिकल बिल्कुल हानिकारक नहीं है."

"हमारा स्वास्थ्य लेबोरेटरी क्या कहता है?" त्रिलोकनाथ ने पूछा, "उसका इंतजाम हो चुका है. उनकी रिपोर्ट इस बीच आ जायेगी, लेकिन वे लोग ऐसी रिपोर्ट दे रहे हैं जिससे न सांप मरेगा और न लाठी ही टूटेगी. इसलिए सरकारी स्तर पर ही इस संबंध में निर्णय होगा."

"स्वास्थ्य सेक्रेटरी तो आ रहे हैं ना? उनसे पूछा जाये वे क्या निर्णय लेंगे इस रिपोर्ट पर."

"मैंने उनसे बात की थी. वे भी राजी हैं." शिवराज ने कहा, "लेकिन वे दूसरी ओर से भी समर्थन चाहते हैं. यदि रसायन विभाग यह लिख दे कि वह यह जानने को उत्सुक है कि इस कारखाने को किस तरह शुरू किया जाये तो स्वास्थ्य विभाग को निर्णय लेने में आसानी होगी."

"हमें लिखने में कोई आपत्ति नहीं है. क्या हमें कंपनी से कोई चिट्ठी भेजी गयी है?"

शिवराज ने नीलम को अंदर से कोई फाइल लाने को कहा और उसमें से एक कागज निकालकर त्रिलोकनाथ को दिखलाया, "ठीक है," त्रिलोकनाथ ने कहा, "तो क्या मैं यह कागज अपने पास रख लूं?"

"नहीं, नहीं. 'नो बिजनेस ओवर ड्रिंक्स.' मैं कल दफ्तर पहुंचा दूंगा." नीलम को फाइल लौटाते हुए उसने कहा, "अब जरा दूसरों को फोन करके पूछ लो, कब तक आ रहे हैं."

त्रिलोकनाथ ने कहा, "आप लोग तो राजनीति के बारे में इतना कुछ जानते हैं. जरा बतलाइए तो ये दंगे-फसाद कब खत्म होंगे."

शिवराज ने गिलास से एक घूंट पीकर थोड़ी देर तक सोचने के बाद कहा, "देखिए, सब कुछ संभव है. पर सवाल यह है कि इस दंगे-फसाद के बारे में हम लोग कितना सोचते हैं."

"यही ठीक है." कहकर कालिदास ने पुनः आंखें मूंद लीं. अंदर से आते हुए नीलम ने कहा, "उपमंत्री की बैठक अभी तक खत्म नहीं हुई है, वे नहीं आ सकेंगे. स्वास्थ्य सेक्रेटरी न दफ्तर में हैं न घर में. और राममूर्त्ति ने कहा है कि गाड़ी भेजने पर ही वे आ सकेंगे."

"बड़ी आफत है यह तो. पहले ही बतलाना चाहिए था. इस कर्फ्यू में भला मैं गाड़ी कैसे भेजूं? अच्छा नीलम, जरा पता तो करो यहां अखिलेश नाम का डी.आई.जी. था, आजकल है कि नहीं."

फोन पर पता करके नीलम ने कहा, "अखिलेश अभी भी यहीं हैं, लेकिन इस वक्त जीप लिए शहर के किस इलाके में घूम रहे हैं, कोई नहीं बता पा रहा है."

शिवराज ने कहा, "जरा पुलिस कंट्रोल रूम मिलाना." नीलम से रिसीवर लेकर उसने कहा, "मैं शिवराज बोल रहा हूं." कंट्रोल रूमवाले ने समझा कि शायद कोई विशिष्ट व्यक्ति उससे पूछ रहा है, इसलिए और कुछ पूछे बगैर— उसने घटनाओं का ब्यौरा दे दिया. चार जगहों पर गोलियां चलीं, दो लोग मारे गये. आठ घायल व्यक्ति अस्पताल में हैं. शिवराज ने कहा, "धन्यवाद, इस वक्त अखिलेश कहां मिलेगा?"

"वे इस समय पुराने टाउन में हैं, वायरलेस से कोई सूचना भेजूं?"

"हां, उससे कहिएगा मुझे फोन कर ले." शिवराज ने उसे होटल का फोन नंबर दे दिया.

पांच मिनट के भीतर ही अखिलेश का फोन आया. शिवराज ने कहा, "कैसे हैं? लंबे अरसे से मुलाकात नहीं हुई है. सुबह से तलाश रहा हूं आपको."

"मैं तो सारा दिन बाहर घूम रहा हूं. आप कितने दिनों तक रहेंगे?"

"कल चला जाऊंगा. इसलिए आज रात मिलना बहुत जरूरी है. आप किसी भी तरह आइए, मैं इंतजार कर रहा हूं."

"ठीक है, मैं आधे घंटे में पहुंच रहा हूं."

"यदि कोई परेशानी न हो तो आते वक्त जरा राममूर्त्ति को भी लेते आइएगा. हां, वही विरोधी दलवाले. मेरे अच्छे मित्र हैं. नहीं, उनके आने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा. बल्कि आपको आसानी होगी. मैं आप दोनों का इंतजार करूंगा."

चालीस मिनट के बाद वे लोग आ पहुंचे. इस बीच कालिदास एक नींद सो चुका था. अंदर आते हुए राममूर्त्ति ने कहा, "शिवराज, आज मैं समझा कि वाकई तुम पहुंचे हुए व्यक्ति हो. मुझे लाने के लिए खुद डी. आई. जी. को भेज दिया."

इतने में अखिलेश के लिए फोन आया.

"तीन और छह? ठीक है. छह लोगों को अस्पताल भिजवाने का इंतजाम करो." अखिलेश ने घड़ी देखते हुए कहा, "ठीक बारह बजे मुझे फिर फोन करना."

इसके बाद सभी अपने-अपने काम की बात भूल गये. नीलम उठकर गयी और अपना पहला ड्रिंक बना लायी. एक नयी कविता की अधूरी पंक्ति को ठीक करना भूलकर कालिदास ने बोतल की ओर हाथ बढ़ाया. त्रिलोकनाथ जो कि अब तक अपने पद और प्रतिष्ठा के प्रति सजग था, अब खुल्लम-खुल्ला नीलम की ओर देखने लगा एवं शिवराज से छिपाकर उसका पता, टेलीफोन नंबर हथियाने की योजना मन ही मन बनाने लगा. राममूर्त्ति ने शिवराज को अपनी पारिवारिक स्थिति से अवगत कराया. बाहर के कर्फ्यू और वातानुकूलित कमरे में उपस्थित लोगों की पूरी तरह उपेक्षा करते हुए एकाग्रचित होकर अखिलेश अपने गिलास में खो गया. □

अनुवाद : राजेंद्रप्रसाद मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मावलोकन: दो

संवदिया

•फणीश्वर नाथ रेणु

हरगोबिन को अचरज हुआ—तो, आज भी किसी को संवदिया की जरुरत पड़ सकती है. इस जमाने में, जबकि गांव-गांव में डाकघर खुल गये हैं. संवदिया के मार्फत संवाद क्यों भेजेगा कोई? आज तो आदमी घर बैठे ही लंका तक खबर भेज सकता है और वहां का कुशल संवाद मंगा सकता है. फिर उसकी बुलाहट क्यों हुई है?

हरगोबिन बड़ी हवेली की टूटी ड्योढ़ी पार कर अंदर गया. सदा की भांति उसने वातावरण को सूंघकर संवाद का अंदाज लगाया... निश्चय कोई गुप्त-समाचार ले जाना है. चांद-सूरज को भी नहीं मालूम हो! परेवा-पंछी तक न जाने.

"पांवलागी बड़ी बहुरिया."

बड़ी हवेली की बड़ी बहुरिया ने हरगोबिन को पीढ़ी दी और आंख के इशारे से कुछ देर चुपचाप बैठने को कहा. बड़ी-हवेली अब नाम मात्र को ही बड़ी हवेली है.

जहां दिन-रात नौकर-नौकरानियों और जन-मजदूरों की भीड़ लगी रहती थी, आज हवेली की बड़ी बहुरिया अपने हाथ से सूपा में अनाज लेकर झटक रही है. इन हाथों में सिर्फ मेंहदी लगाकर ही गांव की नाईन परिवार पालती थी. कहां गये वे दिन? हरगोबिन ने एक लंबी सांस ली.

बड़े भैया के मरने के बाद जैसे सब खेल ही खत्म हो गया. तीनों भाइयों ने आपस में लड़ाई-झगड़ा शुरू किया. रैयतों ने जमीन पर दावे करके दखल किया. फिर तीनों भाई गांव छोड़कर शहर में जा बसे. रह गयी अकेली बड़ी बहुरिया. कहां जाती बेचारी. भगवान भले आदमी को ही कष्ट देते हैं. नहीं तो एक घंटे की बीमारी में बड़े भैया क्यों मरते?... बड़ी बहुरिया की देह से जेवर खींच-छीनकर बंटवारे की लीला हुई थी. हरगोबिन ने देखी है अपनी आंखों से द्रोपदी-चीरहरण लीला. बनारसी साड़ी के तीन टुकड़े करके बंटवारा किया था, निर्दय भाइयों ने. बेचारी बड़ी बहुरिया.

रिश्ते क्या होते हैं और रिश्तेदारियों का मतलब क्या रह गया है? तिस पर क्या वजह है कि पगडंडियां गांववालों को शहर तो ले जाती हैं, लेकिन उनकी वापसी के नाम पर प्राय: मौन धारण कर लेती हैं?...
—पिछले २४ वर्ष के दौरान 'सारिका' में प्रकाशित कहानियों में से प्रत्येक वर्ष की श्रेष्ठ कहानी के प्रकाशन के क्रम में इस बार पढ़िए, स्वर्गीय रेणु की 'सारिका : अंक—जुलाई, १९६२' में छपी मार्मिक कहानी कि गांव हमारी असल जरूरत होने के बावजूद शहर के समक्ष गौण क्यों होता जा रहा है?

गांव की मोदिआइन बूढ़ी न जाने कब से आंगन में बैठकर बड़बड़ा रही थी, "उधार का सौदा खाने में बड़ा मीठा लगता है और दाम देते समय मोदिआइन की बात कड़वी लगती है. मैं आज दाम लेकर ही उठूंगी."

बड़ी बहुरिया ने कोई जवाब नहीं दिया.

हरगोबिन ने फिर लंबी सांस ली. जब तक यह मोदिआइन आंगन से नहीं टलती, बड़ी बहुरिया हरगोबिन से कुछ नहीं बोलेगी. वह अब चुप नहीं रह सका, "मोदिआइन काकी, बाकी-बकाया वसूलने का यह 'काबुली-कायदा' तो तुमने खूब सीखा है."

'काबुली-कायदा' सुनते ही मोदिआइन तमक कर खड़ी हो गयी, "चुप रह, मुंहझौंसे. निमोंछिए...!"

"क्या करूं काकी, भगवान ने मूंछ-दाढ़ी दी नहीं, न काबुली आगा साहब की तरह गुलजार-दाढ़ी...!"

"फिर काबुली का नाम लिया तो जीभ पकड़कर खींच लूंगी."
हरगोबिन ने जीभ बाहर निकालकर दिखलायी...अर्थात्—खींच ले!

...पांच साल पहले गुलमुहम्मद आगा, उधार कपड़ा लगाने के लिए गांव में आता था और मोदिआइन के ओसारे पर दूकान लगाकर बैठता था. आगा कपड़ा देते समय बहुत मीठा बोलता और वसूली के समय जोर-जुल्म एक का दो वसूलता. एक बार कई उधार लेनेवालों ने मिलकर काबुली की ऐसी मरम्मत कर दी कि फिर लौटकर गांव में नहीं आया. लेकिन इसके बाद ही दुखनी मोदिआइन, लाल मोदिआइन हो गयी... काबुली क्या, काबुली बादाम के नाम से भी चिढ़ने लगी मोदिआइन. गांव के नाचवालों ने नाच में काबुली का स्वांग किया था—'तुम अमरा मुलुक जायेगा मोदिआइन? अम काबुली बादाम-पिस्ता-अकरोट किलायगा...!"

मोदिआइन बड़बड़ाती, गाली देती हुई चली गयी तो बड़ी बहुरिया ने हरगोबिन से कहा, "हरगोबिन भाई, तुमको एक संवाद ले जाना है. आज ही. बोलो, जाओगे न?"

"कहां?"

"मेरी मां के पास!"

हरगोबिन बड़ी बहुरिया की छलछलायी हुई आंखों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में डूब गया, "कहिए, क्या संवाद है?"

संवाद सुनाते समय बड़ी बहुरिया सिसकियां लेने लगी. हरगोबिन की आंखें भी भर आयीं. . . बड़ी हवेली की लछमी को पहली बार इस तरह सिसकते देखा है, हरगोबिन ने. वह बोला, "बड़ल बहुरिया दिल को कड़ा कीजिए."

"और कितना कड़ा करूं दिल? . . .मां से कहना मैं भाई-भाभियों की नौकरी करके पेट पालूंगी. बच्चों के जूठन खाकर एक कोने में पड़ी रहूंगी. लेकिन यहां अब नहीं. . . अब नहीं रह सकूंगी. . . कहना, यदि मां मुझे यहां से नहीं ले जायेगी, तो मैं किसी दिन गले में घड़ा बांधकर पोखरे में डूब मरूंगी. . . बथुआ साग खाकर कब तक जीऊं? किसलिए. . . किसके लिए?"

हरगोबिन का रोम-रोम कलपने लगा. देवर-देवरानियां भी कितने बेदर्द हैं. ठीक अगहनी धान के समय बाल-बच्चों को लेकर शहर से आयेंगे. . . दस-पंद्रह दिनों में कर्ज-उधार की ढेरी लगाकर, वापस जाते समय दो-दो मन के हिसाब से चावल-चूड़ा ले जायेंगे, फिर आम के मौसम में आकर हाजिर. कच्चा-पक्का आम तोड़कर बोरियों में बंद करके चले जायेंगे. फिर उलटकर कभी नहीं देखते. . . राक्षस हैं सब!

बड़ी बहुरिया आंचल के खूंट से पांच रुपये का एक गंदा नोट निकालकर बोली, "पूरा राह खर्च भी नहीं जुटा सकी. आने का खर्चा मां से मांग लेना. उम्मीद है, भैया तुम्हारे साथ ही आवेंगे."

हरगोबिन बोला, "बड़ी बहुरिया, राह खर्च देने की जरूरत नहीं. मैं इंतजाम कर लूंगा."

"तुम कहां से इंतजाम करोगे?"

"मैं आज दस बजे की गाड़ी से ही जा रहा हूं."

बड़ी बहुरिया हाथ में नोट लेकर चुपचाप, भावशून्य-दृष्टि से हरगोबिन को देखती रही. हरगोबिन हवेली से बाहर आ गया. उसने सुना बड़ी बहुरिया कह रही थी, "मैं तुम्हारी राह देख रही हूं."

संवदिया! . . . अर्थात् संवादवाहक! हरगोबिन संवदिया! संवाद पहुंचाने का काम सभी नहीं कर सकते. आदमी भगवान के घर से संवदिया बनकर आता है. संवाद के प्रत्येक शब्द को याद रखना, जिस सुर और स्वर में संवाद सुनाया गया है, ठीक उसी ढंग से जाकर सुनाना, सहज काम नहीं. गांव के लोगों की गलत धारणा है कि निठल्ला, कामचोर और पेटू आदमी ही संवदिया का काम करता है. न आगे नाथ, न पीछे पगहा. बिना मजदूरी लिये ही जो गांव-गांव संवाद पहुंचाये, उसको और क्या कहेंगे? . .औरतों का गुलाम. जरा-सी मीठी बोली सुनकर ही नशे में आ जाये, ऐसे मर्द को भी भला मर्द कहेंगे? किंतु गांव में कौन ऐसा है, जिसके घर की मां-बहू-बेटी का संवाद हरगोबिन ने नहीं पहुंचाया है. . . लेकिन ऐसा संवाद पहली बार ले जा रहा है वह.

गाड़ी पर सवार होते ही हरगोबिन को पुराने दिनों और संवादों की याद आने लगी. एक करुण-गीत की भूली हुई कड़ी फिर उसके कानों के पास गूंजने लगी . . .

पैंयां पड़ूं दाढ़ी धरूं . . .

हमरो संवाद लेले जाहु रे संवरिया-या-या . . .

बड़ी बहुरिया के संवाद का प्रत्येक शब्द उसके मन में कांटे की तरह चुभ रहा है...'किसके भरोसे यहां रहूंगी? एक नौकर था, वह भी भाग गया. गाय खूंटे में बंधी भूखी-प्यासी हिकर रही है. मैं किसके लिए इतना दुःख झेलूं?'

हरगोबिन ने अपने पास बैठे हुए एक यात्री से पूछा, "क्यों भाई साहेब, थाना बिहपुर में डाकगाड़ी रुकती है या नहीं?"

यात्री ने मानो कुढ़कर कहा, "थाना बिहपुर में सभी गाड़ियां रुकती हैं."

हरगोबिन ने भांप लिया, यह आदमी चिड़चिड़े स्वभाव का है. इससे कोई बातचीत नहीं जमेगी. वह फिर बड़ी बहुरिया के संवाद को मन ही मन दुहराने लगा. . . लेकिन संवाद सुनाते समय वह अपने कलेजे को कैसे संभाल सकेगा. बड़ी बहुरिया संवाद कहते समय जहां-जहां रोयी हैं, वहां वह भी रोयेगा.

कटिहार जंक्शन पहुंचकर उसने देखा, पंद्रह-बीस साल में बहुत कुछ बदल गया है. अब स्टेशन पर उतरकर किसी से कुछ पूछने की कोई जरूरत नहीं. गाड़ी पहुंची और तुरंत भोंपे से आवाज अपने-आप निकलने लगी—'थाना बिहपुर, खड़िया और बरौनी जानेवाले यात्री तीन नंबर प्लेटफार्म चले जायें. गाड़ी लगी हुई है.'

हरगोबिन प्रसन्न हुआ. . .कटिहार पहुंचने के बाद ही मालूम होता है कि सचमुच सुराज हुआ है. इसके पहले कटिहार पहुंचकर किस गाड़ी में चढ़ें और किधर जायें, इस पूछताछ में ही कितनी बार उसकी गाड़ी छूट गयी है.

गाड़ी बदलने के बाद फिर बड़ी बहुरिया का करुण मुखड़ा उसकी आंखों के सामने उभर गया. . . 'हरगोबिन भाई, मां से कहना, भगवान ने आंखें फेर लीं, लेकिन मेरी मां तो है. . .किसलिए. . . किसके लिए? मैं बथुआ साग खाकर कब तक जीऊं?'

थाना बिहपुर स्टेशन पर जब गाड़ी पहुंची तो हरगोबिन का जी भारी हो गया. इसके पहले भी कई भले-बुरे संवाद लेकर वह इस गांव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आया है, कभी ऐसा नहीं हुआ. उसके पैर गांव की ओर बढ़ ही नहीं रहे थे . . .इसी पगडंडी से बड़ी बहुरिया अपने मैके लौट आवेगी. गांव छोड़कर चली आवेगी. फिर कभी नहीं जायेगी.

हरगोबिन का मन कलपने लगा—तब गांव में क्या रह जायेगा? गांव की लक्ष्मी ही गांव छोड़कर चली आवेगी. . . किस मुंह से वह ऐसा संवाद सुनायेगा? कैसे कहेगा कि बड़ी बहुरिया बथुआ साग खाकर गुजर कर रही है . . . . सुननेवाले हरगोबिन के गांव का नाम लेकर थूकेंगे—कैसा गांव है, जहां लक्ष्मी जैसी बहुरिया दुःख भोग रही है?

अनिच्छापूर्वक हरगोबिन ने गांव में प्रवेश किया. हरगोबिन को देखकर ही गांव के लोगों ने पहचान लिया--जलालगढ़ गांव का संवदिया आया है! . . .न जाने क्या संवाद लेकर आया है!

"राम-राम भाई. कहो, कुशल समाचार ठीक है न?"

"राम-राम मैयाजी. भगवान की दया से सब आनंदी है."

"उधर पानी बूंदी पड़ा है?"

बड़ी बहुरिया के बड़े भाई ने पहले हरगोबिन को नहीं पहचाना. हरगोबिन ने अपना परिचय दिया, तो उन्होंने सबसे पहले अपनी बहन का समाचार पूछा, "दीदी कैसी हैं?"

"भगवान की दया से सब राजी-खुशी है."

मुंह-हाथ धोने के बाद हरगोबिन की बुलाहट आंगन में हुई. अब हरगोबिन कांपने लगा. उसका कलेजा धड़कने लगा...ऐसा तो कभी नहीं हुआ. . .? बड़ी बहुरिया की छलछलाई हुई आंखें. . .सिसकियों से भरा हुआ संवाद! ...उसने बड़ी बहुरिया की बूढ़ी माता को पांवलागी की.

बूढ़ी माता ने पूछा, "कहो बेटा, क्या समाचार है?"

"मायजी, आपके आशीर्वाद से सब ठीक है."

"कोई संवाद? . . ."

"एं. . .संवाद. . .जी, संवाद तो कोई नहीं. मैं कल सिरसिया गांव आया था, तो सोचा कि एक बार चलकर आप लोगों का दर्शन कर लूं."

बूढ़ी-माता हरगोबिन की बात सुनकर कुछ उदास-सी हो गयीं, "तो तुम कोई संवाद लेकर नहीं आये हो?"

"जी नहीं, कोई संवाद नहीं . . . .ऐसे बड़ी बहुरिया ने कहा है कि यदि छुट्टी हुई तो दशहरा के समय गंगाजी के मेले में आकर मां से भेंट-मुलाकात कर जाऊंगी." बूढ़ी माता चुप रहीं. हरगोबिन बोला, "छुट्टी कैसे मिले, सारी गृहस्थी बड़ी बहुरिया के ऊपर ही है."

बूढ़ी माता बोलीं, "मैं तो बबुआ से कह रही थी कि जाकर दीदी को लिवा लाओ, यहीं रहेगी. वहां अब क्या रह गया है? जमीन-जायदाद तो सब चली ही गयी. तीनों देवर अब शहर में जाकर बस गये हैं. कोई खोज-खबर भी नहीं लेते. मेरी बेटी अकेली . . . !"

"नहीं मायजी, जमीन-जायदाद अभी भी कुछ कम नहीं. जो है, वही बहुत है. टूट भी गयी है, तो आखिर बड़ी हवेली ही है. 'सवांग' नहीं है, यह बात ठीक है. मगर बड़ी बहुरिया का तो सारा गांव ही परिवार है. हमारे गांव की लछमी हैं बड़ी बहुरिया. . .गांव की लछमी गांव को छोड़कर शहर कैसे जायेगी? यों देवर लोग हर बार आकर ले जाने की जिद्द करते हैं."

बूढ़ी माता ने अपने हाथ हरगोबिन को जलपान लाकर दिया, "पहले थोड़ा जलपान कर लो, बबुआ."

जलपान करते समय हरगोबिन को लगा, बड़ी बहुरिया दालान पर बैठी उसकी राह देख रही है—भूखी, प्यासी. . .! रात में भोजन करते समय भी बड़ी बहुरिया मानो सामने आकर बैठ गयी. . .कर्ज उधर अब कोई देते नहीं . . . . एक पेट तो कुत्ता भी पालता है. लेकिन मैं? . . .मां से कहना. . . !

हरगोबिन ने थाली की ओर देखा—भात-दाल, तीन किस्म की भाजी घी, पापड़, अचार. . .बड़ी बहुरिया बथुआ साग उबालकर खा रही होगी.

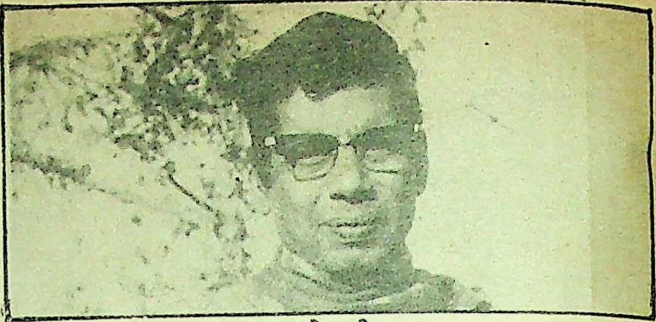

—स्व. रेणुजी

बूढ़ी माता ने कहा, "क्यों बबुआ, खाते क्यों नहीं?"

"मायजी, पेटभर जलपान जो कर लिया है."

"अरे, जवान आदमी तो पांच बार जलपान करके भी एक थाल भात खाता है."

हरगोबिन ने कुछ नहीं खाया. खाया नहीं गया.

संवदिया डटकर खाता है और अफरकर होता है, किंतु हरगोबिन को नींद नहीं आ रही है . . . यह उसने क्या किया? क्या कर दिया? वह किसलिए आया था? वह झूठ क्यों बोला? . . . नहीं, नहीं, सुबह उठते ही वह बूढ़ी माता को बड़ी बहुरिया का सही संवाद सुना देगा—अक्षर-अक्षर, मायजी, आपकी एकलौती बेटी बहुत कष्ट में है आज ही किसी को भेजकर बुलवा लीजिए. नहीं तो वह सचमुच कुछ कर बैठेगी. आखिर किसके लिए वह इतना सहेगी? . . . बड़ी बहुरिया ने कहा है, भाभी के बच्चों के जूठन खाकर वह एक कोने में पड़ी रहेगी . . . !

रात भर हरगोबिन को नींद नहीं आयी.

आंखों के सामने बड़ी बहुरिया बैठी रही—सिसकती, आंसू पोंछती हुई. सुबह उठकर उसने दिल को कड़ा किया. वह संवदिया है. उसका काम है सही-सही संवाद पहुंचाना. वह बड़ी बहुरिया का संवाद सुनाने के लिए बूढ़ी माता के पास जा बैठा. बूढ़ी माता ने पूछा, "क्या है, बबुआ? . . .कुछ कहोगे?"

"मायजी, मुझे इसी गाड़ी से वापस जाना होगा. कई दिन हो गये."

"अरे, इतनी जल्दी क्या है? एकाध दिन रहकर मेहमानी कर लो."

"नहीं मायजी, इस बार आज्ञा दीजिए. दशहरा में मैं भी बड़ी बहुरिया के साथ आऊंगा. तब डटकर पंद्रह दिनों तक मेहमानी करूंगा."

बूढ़ी माता बोलीं, "ऐसी जल्दी थी तो आये ही क्यों? सोचा था, बिटिया के लिए दही-चूड़ा भेजूंगी. सो दही तो नहीं हो सकेगा आज. थोड़ा चूड़ा है बासमती धान का, लेते जाओ."

चूड़ा की पोटली बगल में लेकर हरगोबिन आंगन से निकला तो बड़ी बहुरिया के बड़े भाई ने पूछा, "क्यों भाई, राह खर्च है तो?"

हरगोबिन बोला, "भैयाजी, आपकी दुआ से किसी बात की कमी नहीं."

स्टेशन पहुंचकर हरगोबिन ने हिसाब किया. उसके पास जितने पैसे हैं, उससे कटिहार तक का टिकट ही वह खरीद सकेगा. और यदि चौअन्नी नकली साबित हुई तो सैमापुर तक ही . . . बिना टिकट के वह एक स्टेशन भी नहीं जा सकेगा. डर के मारे उसकी देह का आधा खून सूख जायेगा.

गाड़ी में बैठते ही उसकी हालत अजीब हो गयी. वह कहां आया था? क्या करके जा रहा है? बड़ी बहुरिया को क्या जवाब देगा?

यदि गाड़ी में निरगुन गानेवाला सूरदास नहीं आता तो न जाने उसकी क्या हालत होती. सूरदास के गीतों को सुनकर उसका जी स्थिर हुआ, थोड़ा.

कि आहो रमा.
नैहर को सुख सपन भयो अब,
देश पिया कौ डोलिया चली. . . . ई. . . ई. . . ई.
माई रोओ मति, यही करम गति. . . ! !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'संवदिया': कालजयी रचना की पहचान

—रमाकांत

रेणु की कहानी संवदिया जब पहली बार प्रकाशित हुई थी, उसके बाद के बाईस-तेईस बरसों में हिंदी कहानी ने एक लंबा फासला तय किया है. तब से कहानी में बहुत कुछ नया जुड़ा है और उसका विस्तार हुआ है. लेकिन स्मृति के किसी कोने में दबी यह कहानी आज दुबारा पढ़ने पर अपने उसी सौंदर्य और ताजगी से पाठक को बांधने में समर्थ है जितनी अपने प्रथम प्रकाशन के समय थी. यही किसी एक रचना के कालजयी होने की पहचान है.

सामान्यत: इस कहानी की विशेषता, इसकी सहजता और सुथरापन, लोकगीतों जैसी गीतात्मकता और मानवीय करुणा और सबके ऊपर इसके नेरेशन में लेखक की वस्तुनिष्ठा है, जो कहानी की भावुकता या रोमानियत अथवा ऊपर से लादी वैचारिकता से आक्रांत नहीं है. सब कुछ एक सीधा-सादा तथ्यांकन है. कहानी अपने आप पाठक की संवेदना के साथ आत्मसात होती जाती है. किंतु यह कहना गलत होगा कि कहानी का कोई वैचारिक आधार नहीं है. कहानी का वैचारिक पक्ष इसके मुख्य पात्र संवदिया—हरगोबिन की मानसिकता के साथ-साथ उभरता है इसलिए कहानी का स्वाभाविक अंग है.

बीच में खुलता है बिहार का ग्रामीण परिवेश. आजादी के बाद सामंती समाज तो टूट रहा है लेकिन देश आजाद हुआ है यह कटिहार स्टेशन पर आकर ही लगता है. जहां अब पूछना नहीं पड़ता कि कौन गाड़ी किधर मिलेगी. बल्कि भोंपू पर बताया जाता है. अर्थात् आजादी अभी शहरों और रेल के जंक्शनों पर ही रुकी हुई है, गांवों तक नहीं पहुंची. यह आज भी बहुत अर्थों में सही है. किंतु कहानी का मर्म कोई समाजशास्त्री समीक्षा नहीं बल्कि वह मनुष्यता और मानवीय गरिमा है, जो तमाम टूटनों के बीच भी सुरक्षित है और जिसकी शक्ति—अथाह दुख सहने की क्षमता है. इस तरह रेणु उस अधिसंख्यक मनुष्यता की एक मार्मिक कहानी कहने में समर्थ होते हैं जो न तो लड़ सकता है न घाव दिखा सकता है, लेकिन जो सिर्फ दुख सह सकता है. . . .और उसी के सूत्र से एक दूसरे से जुड़ता है. आज कहानी के समक्ष जो व्यापक क्षितिज है और जितनी जटिलताओं को वह अभिव्यक्ति दे रही है उनके संदर्भ में 'संवदिया' का यही पक्ष उसे 'डेटेड' कहानी होने से बचा लेता है. अन्यथा किसी भी कमजोर हाथ में पड़कर यह किसी लोककथा का भाष्य, या सामंती संस्कारों और मूल्यों के प्रति आग्रह की कहानी बन सकती थी. यहां संवदिया बीस कोस पैदल चलकर लौटता है और बड़ी बहुरिया के दरवाजे पर बेहोश हो जाता है. बड़ी बहुरिया उसे बिस्तर पर लिटाती है. . . .और दही-चूड़ा खिलाती है. सामंती संस्कार मानवीय संवेदना के प्रभाव में लुप्त हो जाते हैं और दोनों ही दुखी व्यक्ति एक दूसरे के लिए सांत्वना बनते हैं. संवदिया बड़ी बहुरिया का बेटा बन जाता है और बड़ी बहुरिया उसकी मां. और इस तरह एक-दूसरे का सहारा बनकर वे अपना दुख बांट लेते हैं.

संवदिया का बड़ी बहुरिया की दुर्दशा के बारे में न बता पाना और फिर बिना राह खर्च लिये बीस कोस पैदल चलकर लौटना एक 'कामिक' अतिशयोक्तिपूर्ण स्थिति कही जा सकती है. लेकिन आरंभ से ही संवदिया के मन के द्वंद्व को ध्यान में रखते हुए कहानी के अंत के रूप में यह प्रसंग कहानी को रोचकता के साथ एक विशिष्टता प्रदान करता है. कहानी की एक और विशेषता स्थानीय रंग और लोकभाषा की अभिव्यक्तियों के साथ मुहावरेदार हिंदी का प्रयोग है. मैं महसूस करता हूं आधुनिक भाव बोध और संवेदना के नाम पर आज कहानी अपनी बदली हुई भाषा के साथ जहां कुछ कर रही है वहीं अपनी इस समृद्धि को खोती भी जा रही है. इस दृष्टि से भी कहानी को पढ़ना एक सुखद अनुभव है. □

सूरदास चला गया तो उसके मन में बैठी हुई बड़ी बहुरिया फिर रोने लगी—किसके लिए इतना दु:ख सहूं?

पांच बजे भोर में वह कटिहार स्टेशन पहुंचा.

भोंपे से आवाज आ रही थी— 'बैरगाछी, कुसियार और जलालगढ़ जानेवाले यात्री एक नंबर प्लेटफार्म पर चले जायें.'

हरगोबिन को जलालगढ़ स्टेशन जाना है. किंतु वह एक नंबर प्लेटफार्म पर कैसे जायेगा? उसके पास तो कटिहार तक का ही टिकट है. . . .जलालगढ़. . .बीस कोस. . . बड़ी बहुरिया राह देख रही होगी. . . बीस कोस की मंजिल भी कोई दूर की मंजिल है? वह पैदल ही जायेगा.

हरगोबिन महावीर-विक्रम-बजरंगी का नाम लेकर पैदल ही चल पड़ा. दस कोस तक वह मानो 'बाई' के झोंके पर रहा. कसबा शहर पहुंचकर उसने पेट भर पानी पी लिया. पाटलाम नाक लगाकर उसने सूंघा. . .अहा, बासमती धान का चूड़ा है. मां की सौगात. . .बेटी के लिए. नहीं, वह इससे एक मुट्ठी भी नहीं खा सकेगा. . . किंतु वह क्या जबाव देगा बड़ी बहुरिया को!

उसके पैर लड़खड़ाये. . .ऊंहुं, अभी वह कुछ नहीं सोचेगा. अभी सिर्फ चलना है, जल्दी पहुंचना है, गांव. . .बड़ी बहुरिया की डबडबाई हुई आंखें उसको गांव की ओर खींच रही थीं. . . मैं बैठी राह तकती रहूंगी.

पंद्रह कोस! . . . मां से कहना, अब नहीं रह सकूंगी. सोलह. . . सत्रह. . . अट्ठारह. . . जलालगढ़ स्टेशन का सिगनल दिखलायी पड़ता है. . . गांव का ताड़ सिर ऊंचा करके उसकी चाल को देख रहा है. उसी ताड़ के नीचे बड़ी हवेली के दालान पर चुपचाप, टकटकी लगाकर राह देख रही है बड़ी बहुरिया—भूखी-प्यासी, 'हमरो संवाद लेले जाहु रे संवदिया. . . या. . . या. . . या'

. . . लेकिन, यह कहां चला आया हरगोबिन? यह कौन गांव है? पहली सांझ में ही अमावस्या का अंधकार. किस राह से वह किधर जा रहा है?. . . नदी है? कहां से आ गयी नदी? नदी नहीं खेत है. . .ये झोंपड़े हैं या हाथियों का झुंड? ताड़ का पेड़ किधर गया? वह राह भूलकर न जाने कहां भटक गया. . . इस गांव में आदमी नहीं रहते क्या?. . . कहीं कोई रोशनी नहीं, किससे पूछे?. . . वहां, वह रोशनी है या आंखें? वह खड़ा है या चल रहा है? वह गाड़ी में है या धरती पर. . .?

"हरगोबिन भाई, आ गये?. . ." बड़ी बहुरिया की बोली या कटिहार स्टेशन का भोंपा बोल रहा है?

"हरगोबिन भाई, क्या हुआ तुमको. . .?"

"बड़ी बहुरिया?"

हरगोबिन ने हाथ से टटोलकर देखा, वह बिछावन पर लेटा हुआ है. सामने बैठी छाया को छूकर बोला, "बड़ी बहुरिया."

हरगोबिन होश में आया. . . बड़ी बहुरिया दूध पिला रही है?

उसने धीरे से हाथ बढ़ाकर बड़ी बहुरिया का पैर पकड़ लिया, "बड़ी बहुरिया. . . मुझे माफ करो. मैं तुम्हारा संवाद नहीं कह सका. . . तुम गांव छोड़कर मत जाओ. तुमको कोई कष्ट नहीं होने दूंगा. मैं तुम्हारा बेटा. बड़ी बहुरिया, तुम मेरी मां, सारे गांव की मां हो. मैं अब निठल्ला बैठा नहीं रहूंगा. तुम्हारा सब काम करूंगा. . . बोलो, बड़ी मां. . . तुम गांव छोड़कर चली तो नहीं जाओगी? बोलो. . .!!"

बड़ी बहुरिया गर्म दूध में एक मुट्ठी बासमती चूड़ा डालकर मसलने लगी. . . संवाद भेजने के बाद से ही वह अपनी गलती पर पछता रही थी! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनैतिक कहानी की परिभाषा देना बड़ा कठिन काम है !

▣ भीष्म साहनी

इन दिनों साहित्य के संदर्भ में, खासकर कथा साहित्य के संदर्भ में राजनीति की चर्चा काफी जोरों पर है. एक तरह से राजनैतिक कहानी के पक्ष और विपक्ष में घमासान-सा मचा हुआ है. यह कितना उचित है और कितना अनुचित? क्या मतलब होता है राजनैतिक कहानी का या उसका कोई मतलब ही नहीं होता? इस संदर्भ में कोई कहानीकार कैसे विश्लेषित करता है अपनी कहानियां? प्रस्तुत है एक वरिष्ठ कथाकार का विचारपूर्ण आलेख--

किस कहानी को हम, अन्य कहानियों से अलग करके पोलिटिकल कहानी का नाम दे सकते हैं, यह मेरे लिए बड़ा कठिन है. प्रेम कहानियां, हास्यरस की कहानियां, जासूसी कहानियां, घरेलू जीवन की कहानियां आदि का विभाजन तो मेरी समझ में आता है, पर पोलिटिकल कहानी कौन-सी होती है, इसकी परिभाषा कर पाना मुझे बड़ा कठिन लगता रहा है.

कारण कि राजनैतिक क्षेत्र की गतिविधियां हमारे समूचे सामाजिक जीवन को प्रभावित करती हैं, अगर ये गतिविधियां सियासतदानों की अपनी जोड़-तोड़, सांठ-गांठ, तिकड़मों आदि तक ही सीमित हों, उसे ही दिखाना किसी लेखक का लक्ष्य हो तो उसे पोलिटिकल रचना का नाम शायद दिया जा सके, हालांकि हमारे यहां इस किस्म की कहानियां-एकांकी आदि सियासतदानों और उनके कुचक्रों पर व्यंग्य करने के अभिप्राय से लिखे जाते हैं, पर यहां भी उनका एक सामाजिक और नैतिक लक्ष्य बना रहता है. हरिशंकर परसाई की रचनाओं की तह में गहरा मानवीय संवेदन पाया जाता है और आमतौर पर ऐसे लेखन को भी हम राजनैतिक या पोलिटिकल लेखन का नाम देने में संकोच करेंगे.

इसके पीछे मुझे एक पूर्वाग्रह भी काम करता जान पड़ता है. जमाना था, जब समोजोन्मुख कहानियों को भी अलग करके देखा जाता था और अलग कोटि में रखा जाता था, यह दिखाने के लिए कि वे पूरी तरह साहित्यिक कहानियां न होकर शुद्ध साहित्यिक कहानियों से भिन्न हैं या गौण हैं, ऐसा उनका साहित्यिक महत्व कम करने के लिए किया जाता था, उसी पूर्वाग्रह का प्रभाव अब कहानियों को पोलिटिकल कहानियां नाम देने में झलकता जान पड़ता है, क्योंकि पोलिटिकल कहानी को सामाजिक कहानी से आगे करके देखना बहुत हद तक संभव नहीं होता.

विभाजन रेखा खींच पाना तो मुझे नामुमकिन लगता है. यशपाल ने सांप्रदायिकता और देश-विभाजन के सवाल को लेकर अपना वृहद उपन्यास 'झूठा सच' लिखा तो क्या हम उसे पोलिटिकल रचना का नाम दे सकते हैं, हालांकि देश के बंटवारे के पीछे सियासी पार्टियों का बहुत बड़ा हाथ था. आज भी सांप्रदायिकता की समस्या से जूझ रहे हैं, जो हमारे राष्ट्रीय जीवन का अभिशाप बन गयी है. तो क्या सांप्रदायिकता पर लिखी प्रत्येक कहानी पोलिटिकल कहानी मानी जायेगी, हालांकि कौन नहीं जानता कि सांप्रदायिक समस्या के साथ सियासत और सियासतदानों का गहरा सरोकार होता है. बेलछी में हरिजन मारे गये, नागार्जुन ने उस नृशंस हत्याकांड पर एक मार्मिक कविता लिखी तो क्या हम उसे मात्र एक पोलिटिकल कविता कह सकते हैं? कहीं पर यह पुरानी धारणा भी हमारे जेहन में घर किये हुए है कि व्यक्ति के निजी जीवन से जुड़ी रचनाएं कुछ अलग किस्म की होती हैं. गत शताब्दी में अमरीका में एक किताब लिखी गयी थी, 'टाम चाचा की कुटिया', उसमें अमरीका में रहनेवाले नीग्रो निवासियों की दयनीय स्थिति दिखायी गयी थी.

उस उपन्यास ने लाखों-लाख लोगों को प्रभावित किया था और एक सामाजिक समस्या के प्रति लोगों को सचेत करने में उसका बहुत बड़ा हाथ रहा था, लेकिन आज भी कुछ लोग उसे पोलिटिकल उपन्यास का नाम देकर उसके साहित्यिक महत्व को कम करके आंकना चाहते हैं. मुझे लगता है कि राजनीति की बात हम उस साहित्य के बारे में करते हैं, जिसे हम उत्कृष्ट साहित्य का दर्जा नहीं देना चाहते. यदि साहित्य का सरोकार जीवन के अंतर्विरोधों और विसंगतियों से है तो व्यक्तिगत जीवन में पायी जानेवाली विसंगतियां भी साहित्य के लिए उतनी ही संगत होंगी, जितनी समाज में पायी जानेवाली विसंगतियां. यदि एक प्रेम-प्रसंग किसी रचना का विषय बन सकता है तो एक दुर्भिक्ष भी बन सकता है, और शायद प्रेम-प्रसंग से कहीं अधिक महत्व भी ग्रहण कर सकता है. इसी तरह आज के आणविक युग में युद्ध और शांति का विषय, लेखक किसी भी विषय पर लिख सकता है. समूचा संसार उसके सामने खुला पड़ा है. लेखक को हम द्रष्टा का नाम भी देते हैं और रचयिता का भी. और उसकी स्वतंत्रता की भी दुहाई देते रहते हैं, हम उससे केवल एक ही मांग करते हैं कि वह जीवन से जुड़ा हो, संगत हो और कला की कसौटी पर खरा उतरे.

अक्सर व्यवस्था और विचारधारा को लेकर यह बात उठायी जाती है. पिछले दिनों व्यवस्था के प्रति लेखक की दृष्टि को लेकर बहुत बहसें होती रहीं. क्या व्यवस्था को केंद्र में रखकर लिखी गयी रचना अपने आप ही एक पोलिटिकल रचना बन जाती है? यदि मैं दुर्भिक्ष के बारे में कहानी लिखूंगा तो व्यवस्था तो कहीं न कहीं उस कहानी में आयेगी. हां, सीधे आये या कहानी के घटनाक्रम के पीछे बनी रहे, उसकी भूमिका तो किसी न किसी रूप में कहानी में रहेगी ही. पिछली शताब्दी में यदि दुर्भिक्ष पर कहानी लिखी जाती तो शायद उसे विधाता का विधान मानकर लिखा जाता और व्यवस्था का उसमें दखल नहीं होता, पर आज दुर्भिक्ष की कहानी लिखते हुए यदि रह-रह कर ध्यान व्यवस्था और उसकी भूमिका की ओर जाता है तो यह स्वाभाविक ही है. उसे बाहर नहीं रखा जा सकता.

यह तो वैसा ही हुआ कि प्रेमचंद से हम यह तो अपेक्षा करें कि वह स्वतंत्रता संग्राम की कहानी लिखें, पर ब्रिटिश साम्राज्य को बीच में नहीं लायें या आज का फिलिस्तीनी कवि अपने लोगों के विकट जीवन और दारुण संघर्ष की तो बात करे, पर इसराइल को बीच में नहीं लाये. व्यवस्था अपने आप ही ऐसी रचना का अभिन्न अंग बन जाती है, और उसके आ जाने से कहानी पोलिटिकल कहानी नहीं बन जाती.

इसी तरह विचारधारा की बात को भी हम ले सकते हैं. यह सही है कि कहानी का माध्यम तर्क नहीं है. कहानी, जीवन की झांकी प्रस्तुत करती है और अपनी प्रामाणिकता और सच्चाई और कलात्मकता के बल पर हमें प्रभावित करती है. साथ ही वह हमें सोचने पर भी मजबूर करती है. रचना विचारों से शून्य नहीं होती. अक्सर कहानी खुद बोलती है और कहानी के माध्यम से ही उसमें निहित विचार हमारे सामने आते हैं. यदि विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस पर थोपा जाये तो संगत रहते हुए भी वह कहानी को कहानी के नाते कमजोर बनाता है, विचार भी कहानी में वैसे ही खप कर आये, जैसे कहानी के सभी अन्य तत्व, इसकी अपेक्षा हम कहानी से जरूर करते हैं. लेकिन विचारधारा से कहानी जुड़े तो कहानी पोलिटिकल हो जाती है और नहीं जुड़े तो वह शुद्ध सात्विक साहित्य बनी रहती है, यह कहना भी मुझे गलत जान पड़ता है. यदि साहित्य की भूमिका हमें सचेत करने की भूमिका है तो उसका विचारधारा के साथ सरोकार तो रहेगा ही. विचारों से शून्य साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती.

फिर, आज की दुनिया और पिछले जमाने की दुनिया में बहुत फर्क भी आ गया है. दुनिया छोटी हो गयी है, तनाव बढ़ गया है और पेचीदगियां भी. एक भयावह अनिश्चय और आशंका का-सा माहौल दुनिया पर छाता जा रहा है. अणुबम बनानेवाले तो गिने-चुने देश ही हैं, पर अणुबम की दहशत तो दिनोंदिन दुनियाभर में बढ़ती जा रही है. कोई भी संवेदनशील लेखक न चाहते हुए भी इससे अछूता नहीं रह सकता. इसका असर निश्चय ही साहित्य के प्रति हमारी अपेक्षाओं पर भी पड़ता है.

हमारे यहां लगभग सौ साल पहले से समाजोन्मुख कहानी लिखी जाने लगी. यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती और नये-नये आयाम ग्रहण करती रही है. किसी सामाजिक विषय को लेकर कहानी का लिखा जाना हमें स्वाभाविक लगता है और यह हमारे साहित्य की मानवतावादी परंपराओं से भी मेल खाता है और हमारे साहित्य की मानवतावादी दृष्टि के अनुरूप बैठता है.

इतना कुछ कह चुकने के बाद अपनी कहानियों के बारे में मुझे कुछ कहने में कोई तुक नजर नहीं आता. लगता है, मैं अपनी सफाई देता रहा या अपनी कहानियों में निहित दृष्टिकोण की वकालत करता रहा हूं. कहानी खुद बोलती है और अगर वह खुद नहीं बोलती तो भले ही लेखक कितनी वकालत कर ले और दृष्टिकोण साफ करता रहे, उसकी कहानी प्रभावशाली नहीं बन सकती.

मेरा कहानी क्षेत्र, मेरा जीवन-अनुभव और मेरी दृष्टि ही निर्धारित करते रहे हैं. सभी लेखकों के साथ ऐसा ही होता है. मेरे लिए जिंदगी ही कहानी के कथानक जुटाती रही है, कम से कम कच्ची सामग्री तो वहीं से मिलती रही है, भले ही कुछ सुना हो या स्वयं अनुभव किया हो, उसमें कोई विडंबना, कोई विसंगति, कोई अनूठापन नजर आ जाये तो कहानी का बीज मिल जाता है. कल्पना के आधार पर गढ़ा हुआ कथानक मुझे रास नहीं आता, ऐसा मेरा अनुभव है.

भीष्म साहनी

इतना कुछ कह चुकने के बाद अपनी कहानियों के बारे में मुझे कुछ कहने में कोई तुक नजर नहीं आता. . . मेरी कहानियां कहां तक पोलिटिकल हैं, मैं नहीं जानता. अगर कोई मुझसे पूछे कि क्या तुम पोलिटिकल कहानियां लिखते हो तो मैं तो यही कहूंगा कि 'हरगिज नहीं, मैं केवल जिंदगी की कहानियां लिखता हूं.'

इंसानी रिश्ते और आपसी रिश्तों के बीच से झलकने वाला किसी पात्र का व्यक्तिगत, उसकी प्रतिक्रिया और उसी में से उभरती हुई उसके विकास की संभावनाएं धीरे-धीरे रूप ग्रहण करने लगती हैं. बंधा-बंधाया, पहले से निर्धारित तो कुछ नहीं होता, लेकिन जिस घेरे में मेरी कल्पना घूमती है, वह अक्सर जाना-पहचाना ही होता है. मुझे उन लोगों से सदा ईर्ष्या रही है, जिनकी कल्पना अपने कथानक को नया रूप देने में सक्षम होती है.

कहानी कलात्मक हो, गहरी मानवीयता लिये हुए हो, प्रामाणिक हो, उसमें जीवन का सही अक्स नजर आये, विचार और भावना दोनों की दृष्टि से प्रभावशाली हो, ऐसी ही कहानी मुझे रुचती है, और इसी दिशा में मेरा प्रयास भी रहता है. कहानी जिंदगी का दामन न छोड़े, इसे मैं निश्चय ही कहानी का बड़ा गुण मानता हूं. जहां कहानी जीवन को आंकती है, जीवन के किसी सारतत्व को रूपायित करती है, वहां कहानी जीवन के सत्य को खोजने की चेष्टा भी करती है. जीवन के सभी सत्य गढ़े-गढ़ाये नहीं होते, जीवन सदैव गहरे अन्वेषण की मांग करता है, किसी की सूझ इतनी पैनी नहीं होती कि इस बात का दंभ कर सके कि जीवन उसके हाथ की हथेली पर उतर आया है. बाकी सब कोशिश ही कोशिश है. प्रत्येक कहानी में एक प्रकार के संकट से गुजरना होता है.

यह सही है कि मैं अपने जीवन में सामाजिक घटनाक्रम से अधिक प्रभावित हुआ हूं. बचपन में घर का माहौल ही ऐसा था. पिताजी समाज के कामों में दिनोंदिन उठने वाले प्रश्नों में गहरी रुचि लेते थे. पठन-पाठन ज्यादा तो अंग्रेजी साहित्य में हुआ, लेकिन प्रेमचंद, सुदर्शन आदि की रचनाएं बचपन में ही पढ़ने को मिलीं. बाहर का माहौल भी उत्तरोत्तर देश में होने वाले आंदोलन से उद्वेलित होता गया. आजादी के बाद भी घर और बाहर का माहौल भी बहुत कुछ वैसा ही रहा.

इस तरह यदि मेरी कहानियां कहीं न कहीं सामाजिक समस्याओं-विषमताओं आदि से जुड़ती रहीं तो यह मेरे लिए बहुत कुछ स्वाभाविक ही था.

लेकिन इस समाजोन्मुखता की भी अपनी सीमा रही है. एक तो यह कि मैंने स्वयं इतना भोगा नहीं है, जितना और लोगों को भोगते देखा है. इसलिए ऐसे लोगों की मानसिकता की गहराइयों में पैठ पाना उसी हद तक संभव था, जिस हद तक मेरी सद्भावना और मेरी रचनात्मक कल्पना मुझे ले जा सकती थी. इसीलिए जीवन से बहुत से प्रांगण मेरे लिए अछूत रह गये हैं, जहां किसी लेखक की अपनी दृष्टि उसे एक तरह की विशिष्टता प्रदान करती है, वहां वह उसकी सीमा भी बन जाती है. उस सीमा को तोड़ते रहना जरूरी होता है ताकि लेखक एक ही ढर्रे पर चलता न चला जाये.

सांप्रदायिकता के सवाल पर मैंने ज्यादा लिखा है, पर यह एक तरह से अनिवार्य था और आकस्मिक भी. इसके कटु अनुभव से मैं गुजरा था और इस विसंगति का भास पंजाब के रहनेवाले एक लेखक को निश्चय ही अधिक हुआ है, इसलिए नहीं कि पंजाब में सांप्रदायिक दंगे हुए हैं, पर इसलिए कि पंजाब की अपनी संस्कृति में, जिसे हम पंजाबियत कहते हैं या पंजाब का सांझा सभ्याचार, जात-पांत और सांप्रदायिकता का अंश बहुत कम था, इसीलिए वहां पर सांप्रदायिक दंगों के होने से पंजाबी होने के नाते मुझे गहरा धक्का भी लगा था.

मेरी कहानियां कहां तक पोलिटिकल है, मैं नहीं जानता, पर अगर कोई मुझसे पूछे कि क्या तुम पोलिटिकल कहानियां लिखते हो तो मैं तो यही कहूंगा, हरगिज नहीं, मैं केवल जिंदगी की कहानियां लिखता हूं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फोकटिया रेडियो

सलमान रशदी

जब चोर की विधवा उस लड़के के कंधों पर अपने दांत गड़ाये बैठी थी, तब हर कोई जानता था कि आगे क्या घटने जा रहा है, वह कोई शुभ नहीं था. पर उस लड़के को तो उस सब का पता ही न था. ऐसे लोगों को आप कुछ समझा भी तो नहीं सकते. वह लड़का अच्छा जीवन बिता सकता था. ईश्वर ने उसे अच्छा रंग-रूप दिया था. उसका बाप हालांकि उसे बचपन में ही छोड़कर दूसरी दुनिया को कूच कर गया था, पर उसके लिए वह नया-नकोर रिक्शा भी तो छोड़ गया था, जिसकी सीटों पर प्लास्टिक चढ़ा हुआ था. देखने में वह अच्छा भला था, अपना धंधा भी कर ही रहा था तो भला समय रहते उसे एक अच्छी बीवी कैसे न मिलती. बल्कि अभी तो उसे कुछ जमकर रुपये जमा कर लेने चाहिए थे. पर उसकी किस्मत में तो यही लिखा था कि मसें फूटने से पहले ही, दूध के दांत टूटने से भी पहले उस चोर की विधवा के आगोश में जा गिरे. हमें यह बहुत बुरा लगता था पर आज के जमाने में बूढ़ों की अक्ल की बात सुनता कौन है. कौन सुनता है? कोई भी नहीं. और रमानी जैसा जड़बुद्धि रिक्शावाला तो बिल्कुल भी नहीं. पर मैं तो सारा दोष उस औरत को ही दूंगा. सब कुछ मैंने अपनी इन्हीं आंखों से देखा है. मैं इसी बरगद के पेड़ के नीचे बैठा हुक्का पीता हुआ सब देखता रहा. कुछ भी मेरी नजरों से नहीं बचा होगा. एक बार तो मैंने उसे बचाने की कोशिश भी की, पर मेरी जरा भी न चली. यह मैं मानता हूं कि औरत देखने में अच्छी-खासी थी. वैसे भी बुरी नहीं थी पर उसकी बुद्धि सड़ी हुई थी. रमानी से वह दस साल बड़ी होगी ही. पांच बच्चे तो उसके जिंदा थे और दो पहले मर गये थे. उसका पहला पति चोर चोरी करने और बच्चे पैदा करने के अलावा और क्या करता रहा, यह तो भगवान ही जानता होगा, पर अपने मरने के बाद उसने एक नया पैसा भी नहीं छोड़ा. तभी तो वह रमानी की ओर आकर्षित हुई. मैं यह नहीं कहता कि हमारे कस्बे में रिक्शावाला कुछ ज्यादा कमा लेता है. पर दो ग्रास खाना भूखे पेट रहने से तो अच्छा ही है. और फिर उस नाकारा विधवा को कोई दूसरा आदमी तो पलटकर देखना भी पसंद नहीं करता था.

यहीं उनकी मुलाकात हुई थी. एक दिन वह अपना खाली रिक्शा लिये इधर से गुजर रहा था. वह इस तरह मुस्करा रहा था जैसे किसी सवारी ने उसे दो पैसे की टिप दे दी हो. वह रेडियो के साथ-साथ फिल्मी धुन की आवाज मुंह से निकाल रहा था. सिर पर तेल ऐसे चुपड़ा था जैसे शादी कराने जा रहा हो. चोर की विधवा उस समय बनिये की दूकान से तीन छटांक दाल लेने गयी थी. मैं कह नहीं सकता कि उसके पास इसके लिए पैसा कहां से आया होगा. कुछ लोगों का कहना है कि उन्होंने रात को उसकी झुग्गी के पास कुछ आदमियों को देखा था. बनिये ने भी मुझे यह बात बतायी, पर मैं इस बारे में कुछ नहीं कहूंगा. उसके पांचों बच्चे उसके साथ थे और अचानक बिना किसी प्रकार की बनावट के उसने पुकारा, "ए रिक्शावाले!" उसकी आवाज बहुत ऊंची और बहुत घटिया अंदाज में थी जैसे वह हमें दिखा रही थी कि वह भी रिक्शे की सवारी कर सकती है, पर उसमें भला किसकी दिलचस्पी होती. अलबत्ता इस चड्ढी के बदले उसके बच्चों को भूखा ही रहना पड़ता. पर मेरी राय में तो उसने यहां पैसा लगाया था, क्योंकि वह तब तक तय कर चुकी थी कि रमानी को अपने कांटे में फंसाना है. इस प्रकार वे सब, पांच बच्चे और वह विधवा उस रिक्शे में समा गये और वह रिक्शे को घसीटता हुआ आगे ले गया. उन सबका वजन काफी रहा होगा तभी तो रमानी हांफने लगा था और पैडल मारते हुए उसके पांवों की नसें उभर रही थीं, मैंने मन ही मन उससे कहा—बेटा संभल कर, वरना पूरी जिंदगी तुझे यह बोझ ढोना पड़ेगा. उसके बाद तो रमानी और वह चोर की विधवा हर जगह साथ-साथ दिखाई देने लगे थे, बेशर्मों की तरह. मुझे इस बात की बड़ी राहत महसूस हुई कि रमानी की मां पहले ही मर चुकी थी, वरना यह सब देखती तो शर्म से अपना चेहरा छिपाने को भी उसे कहीं जगह न मिलती.

उन दिनों शाम को रमानी अपने दोस्तों से मिलने इस गली में आ जाता था. वे सब समझते थे कि वे बहुत चालाक हैं, क्योंकि वे ईरानी के ढाबे के पीछे के कमरे में बैठकर ठर्रा चढ़ाते थे. हालांकि सभी लोग यह बात जानते थे पर किसी को कुछ करने की क्या जरूरत थी. वे बरबाद हो रहे थे तो इसकी चिंता करें उनके मां-बाप. रमानी के इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा क्यों हो जाता है कि राजनीतिक स्तर पर लोकहित में लिये जाने वाले निर्णय कई बार अहित भी कर बैठते हैं. मासूम आदमी कब तक राजनीतिक आश्वासनों के झांसे में आकर काल्पनिक स्वप्नलोक में विचरता रहेगा? ऐसे ही स्वप्न लोक में विचरते रमानी रिक्शावाले की कहानी आपको सुना रहे हैं इंग्लैंड के 'बुकर्स प्राइज' विजेता और 'मिडनाइट चिल्ड्रन' जैसी बहुचर्चित पुस्तक के लेखक सलमान रशदी

बुरी संगत में पड़ जाने का मुझे बड़ा दुख था. उसके मां-बाप को मैं जानता था. मैं रमानी को समझाने की कोशिश करता तो वह किसी मेमने की तरह हिनहिनाता और कहता कि वह कुछ भी बुरा नहीं कर रहा है. मैंने भी सोचा कि ठीक है. . . चलने दो. मैं जानता था कि उसके सारे साथी नये युवा आंदोलन के लोग थे. आप तो समझ ही सकते हैं कि आपात्काल के उन दिनों में उनकी क्या स्थिति थी. उनके मार-पीट के किस्से अक्सर सुनाई देते थे. मैं चुपचाप बरगद के पेड़ के नीचे बैठा रहता. रमानी उनके किसी गिरोह में शामिल नहीं था. वह तो उनके साथ केवल इसलिए जाता था कि वह उनसे प्रभावित था. बेवकूफ कहीं का!

उसके ये साथी रमानी को हमेशा बेवकूफ बनाते थे. उससे कहते कि वह कितना गबरू जवान है, देव आनंद और शशि कपूर तो उसके आगे कुछ भी नहीं हैं. उसे तो बंबई जाकर फिल्मों में काम करना चाहिए. वे उसे इन सपनों में इसलिए उलझाते ताकि उससे दारू के लिए पैसे ऐंठ सकें. हालांकि उसके पास उनसे अधिक पैसे नहीं होते थे. इस प्रकार अब तक रमानी के दिमाग में इसी तरह के सपने भर गये थे, उस खाली जगह में भरने के लिए और कुछ तो था ही नहीं. मैं उस विधवा औरत को भी तो इसीलिए दोष देता हूं क्योंकि उसने रमानी से ज्यादा दिन देखे थे और उससे ज्यादा समझदार थी. एक-दो दुतकार में ही वह उसे अपने पीछे से हटा सकती थी. पर नहीं, एक दिन तो खुद मैंने उसे रमानी से कहते सुना था, "सच, तुम तो बिल्कुल किसन भगवान जैसे लगते हो. बस तुम्हारा रंग उनकी तरह नीला नहीं है." वह भी भरी सड़क पर. जिससे सबको पता चल जाये कि वे आपस में प्रेम करते हैं. उसी दिन मैं समझ गया था कि अब उसे बरबादी से कोई नहीं रोक सकता.

अगली बार जब चोर की विधवा गली में बनिये की दूकान पर गयी तो मैंने तय किया कि कुछ करना चाहिए. अपने लिए नहीं बल्कि उस लड़के के स्वर्गवासी मां-बाप के लिए मैंने यह शर्मिंदगी उठाने का जोखिम लिया.

"ए चोर की विधवा!" मैंने उसे पुकारा. वह एकदम से रुक गयी. जैसे किसी ने कोड़ा मार दिया हो. फिर बड़े भद्दे ढंग से उसने अपने चेहरे को झटका दिया.

"यहां आ. एक बात करनी है." मैंने उससे कहा. वह मेरे साथ बात करने से इंकार नहीं कर सकती थी क्योंकि इस कस्बे में मेरी एक इज्जत है और जब लोग उसे मेरे साथ बात करते देखेंगे तो वे गली में उसे देखकर अनदेखा करना छोड़ देंगे. इसलिए वह मेरे पास तक चली आयी.

"मुझे बस एक ही बात कहनी है." मैंने आत्मसम्मान भरे स्वर में कहा, "उस रिक्शावाले छोकरे रमानी को मैं बहुत प्यार करता हूं. तू अपनी उमर के ही किसी आदमी को ढूंढ ले. और बेहतर तो यह होगा कि बनारस जाकर किसी विधवा आश्रम में रह और भगवान का नाम लेते हुए अपनी बाकी उमर चैन से काट."

इस पर उसने मुझे शर्मिंदा करने की ठान ही ली. वह चिल्लाती हुई मुझे गालियां देने लगी कि मैं बड़ा जहरी बूढ़ा हूं और मुझे तो कई साल पहले मर जाना चाहिए था. फिर मुझे संबोधित करते हुए बोली, "और ये भी सुन लो रिटायर्ड मास्टर साहब, तुम्हारे रमानी ने खुद ही मुझसे शादी करने को कहा था और मैंने इंकार कर दिया क्योंकि मैं अब और बच्चे पैदा नहीं करना चाहती. वह जवान आदमी है. अपना ठिकाना खुद ही देख ले. अब आकर यह बात सारी दुनिया से कह दो और अपना यह जहर उगलना बंद करो."

फिर कुछ समय के लिए मैंने रमानी और चोर की विधवा के प्रसंग से आंखें ही मूंद लीं. क्योंकि मैं जो कुछ कर सकता था, वह मैंने किया. मेरे जैसे आदमी की दिलचस्पी के शहर में और भी तो बहुत से काम पड़े थे. उदाहरण के लिए कस्बे का स्वास्थ्य अधिकारी एक सफेद रंग की वैन हमारी गली में ले आया था और बरगद के पेड़ के नीचे, सड़क से हटकर उसे खड़ा करने की अनुमति ले ली थी. हर रात को जवान लोगों को उस वैन के भीतर ले जाया जाता और उनके साथ कुछ किया जाता. मैं उस समय वैन के नजदीक जाने की कोशिश नहीं करता था क्योंकि रमानी के वे युवा साथी उस समय वहां हाजरी बजाते रहते. मैं अपना हुक्का लेकर दूसरे स्थान पर बठ जाता. वैन में जो कुछ होता था, उसके बारे में कई तरह की अफवाहें मैंने सुनीं पर अपने कान बंद रखना ही उचित समझा. अगर अपने मन में किसी तरह का फालतू बोझ न बनाना हो तो न सुनना ही बेहतर है.

पर इन्हीं दिनों, जब यह वैन यहां खड़ी थी, और पूरे शहर में चर्चा बनी हुई थी, चोर की विधवा की शैतानी भी जाहिर हो गयी थी. उन दिनों अचानक रमानी लोगों से हवाई किस्से बखान करने लगा था. कहता था कि दिल्ली की सरकार उसे खासतौर पर, एक खास किस्म का उपहार देने वाली है. वह उपहार होगा एक नया-नकोर, बढ़िया किस्म का, बैटरी से चलनेवाला ट्रांजिस्टर रेडियो.

रमानी के प्रति हमारे मन में हमेशा एक कोमल भावना बनी रही है. यह जानते हुए कि फिल्म स्टार बनने की उसकी इच्छा थी. हम सभी उसकी बात पर स्वीकृति में गर्दन हिलाते और कहते, "हां राम, तुम्हारे लिए तो यह अच्छा ही है. कितनी दयालु है हमारी सरकार कि सिनेमा संगीत के प्रति रुचि रखनेवाले लोगों को रेडियो देती है." रमानी हमें यकीन दिलाने की कोशिश करता वह जिंदगी में इतना खुश कभी नहीं रहा होगा, जितना उन दिनों था. इस खुशी को केवल ट्रांजिस्टर के आगमन से ही नहीं समझा जा सकता.

रेडियो के सपने की घोषणा के शीघ्र बाद ही रमानी और चोर की विधवा की शादी हो गयी. तब मेरी समझ में सब कुछ आ गया. उनकी शादी की दावत में मैं नहीं गया. यह कोई खुशी की बात भी नहीं थी. पर बाद में एक दिन जब राम खाली रिक्शा लिये बरगद के पेड़ के पास से गुजरा तो मैंने उससे बात की. वह मेरे पास आकर बैठा तो मैंने उससे पूछा, "क्या तुम इस वैन के भीतर गये थे. क्या उन्होंने तुम्हारे साथ वह सब कुछ किया?"

"आप फिक्र मत कीजिए," उसने कहा, "मेरे लिए यह सब बहुत मजेदार है. मैं प्यार करने लगा हूं मास्टर साहब और मैंने उस औरत से शादी करने का इंतजाम कर लिया है जिससे मैं प्रेम करता था."

मैं यह स्वीकार करता हूं कि इस बात पर मुझे बहुत गुस्सा आया. रमानी ने अपने आपको उस शर्मिंदगी में खुद ही डाल दिया, जिसके लिए और लोगों को जबरदस्ती उस वैन तक ले जाया जाता था. मैंने बड़े कड़वे स्वर में उससे कहा, "मेरे बेवकूफ बेटे, तुमने खुद ही उस औरत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अपनी मर्दानगी छीन लेने दी."

"इसमें कुछ बुरा नहीं है," राम ने कहा, "माफ करना मास्टर साहब, इससे प्रेम करने में रुकावट नहीं आती. बस केवल बच्चे नहीं हो सकते. उस औरत को और बच्चे नहीं चाहिए और अब सब ठीक हो गया है. यह देश के भले के लिए भी है." और फिर उसने खुद ही स्वीकार किया, "और जल्दी ही फोकट में एक रेडियो भी आ जायेगा."

"फोकट में रेडियो!" मेरे मुंह से निकला.

"आपको याद है न मास्टर साहब," राम ने जैसे कोई भेद की बात बताते हुए कहा, "कुछ साल पहले दर्जी ने यह आपरेशन करवाया था, तब कितनी जल्दी उसका रेडियो आ गया था. सारे कस्बे के लोग उसे सुनने के लिए इकट्ठा होते थे. सरकार का धन्यवाद देने का यही तो तरीका है. मेरे पास रेडियो होगा तो कितना मजा आयेगा."

"भाग यहां से! दूर हो जा!" मैंने बड़ी निराशा से उसे झिड़क दिया. मैं अपने भीतर उससे यह कहने का साहस पैदा न कर सका कि फोकटिया रेडियोवाली योजना तो कभी की खत्म हो गयी है.

इस घटना के बाद चोर की विधवा जो अब राम की पत्नी थी, कस्बे में कम ही दिखाई देने लगी. शायद इसलिए कि उसने रमानी के साथ जो कुछ किया था, उसके लिए वह शर्मिंदा थी. पर रमानी अब पहले से ज्यादा मेहनत करता था. दर्जनों लोगों से वह रेडियो के बारे में बता चुका था. वह अपना एक हाथ कान पर रख लेता जैसे उसमें रेडियो पकड़े हुए हो, फिर मुंह से रौबदार आवाज निकालता, "ये आकाशवाणी है. अब आप समाचार सुनिए. एक सरकारी प्रवक्ता ने आज घोषणा की है कि रमानी रिक्शावाले का रेडियो यहां से चल पड़ा है और किसी भी समय उसे मिल सकता है. अब आप फिल्म संगीत सुनिये." इसके बाद वह आशा भोंसले या लता मंगेशकर का कोई गाना बड़ी ऊंची और भद्दी आवाज में गाने लगता. राम में एक विशेष गुण यह है कि वह सपनों पर पूरी तरह से विश्वास कर सकता है. कई बार तो उस काल्पनिक रेडियो के प्रति उसके विश्वास को देखकर हमें भी लगता जैसे रेडियो सचमुच आ रहा है या अदृश्य रूप से उसके कान से लगा है.

समय बीतता रहा. राम शहर भर में अपना अदृश्य रेडियो लेकर घूमता रहा. गली की हवा में तो उसके रेडियो का कैरीकेचर आज भी घूम रहा है. पर अब मुझे उसके चेहरे पर कोशिशों के लक्षण दिखाई देने लगे थे. इसमें उसे बहुत ज्यादा मेहनत लगती प्रतीत होती थी, रिक्शा चलाने से भी ज्यादा. उससे भी ज्यादा जब रिक्शे में चोर की विधवा अपने पांचों बच्चों के साथ बैठी हो. लगता था जैसे रेडियो के मिथ को बनाये रखने के लिए उसे बहुत मेहनत करनी पड़ती है. लगता था जैसे उसके युवा शरीर की पूरी ऊर्जा उसकी हथेली और कान के बीच की दूरी में रेडियो लगाने में लग जाती हो. मैं आपको बता दूं कि मैं इस सबको लेकर अपने को बहुत ही असहाय महसूस कर रहा था क्योंकि मैं समझ रहा था कि रेडियो के विचार में रमानी ने अपनी सारी चिंताओं और दुखों को घोल दिया था. जो भूल वह कर बैठा था, उसे भी. पर अब जब उसका यह सपना अंतिम क्षणों में है, अपने शरीर के प्रति उसने जो अपराध किया है, उसका आभास उसे होगा. तब वह समझेगा कि चोर की विधवा ने उसे कहां पहुंचा दिया है. उसने उसे भी चोर बना दिया है. ऐसा चोर जिसने खुद अपने को ही लूट लिया है.

और एक दिन फिर वह सफेद वैन इस बरगद के पेड़ के नीचे आ खड़ी हुई. मैं समझ रहा था कि राम निश्चित रूप से अपना उपहार लेने वहां आयेगा. पहले दिन वह नहीं आया. दूसरे दिन भी नहीं. बाद में मुझे लगा कि वह अपने आपको लालची नहीं दर्शाना चाहता था. वह नहीं चाहता था कि स्वास्थ्य अधिकारी समझने लगें कि वह रेडियो के लिए कितना उतावला हो रहा है. उसके मन के किसी कोने में यह आशा बाकी थी कि कोई औपचारिक आयोजन होगा और उसमें उसे रेडियो भेंट किया जायेगा. बेवकूफ तो बेवकूफ ही होता है.

तीसरे दिन वह आया. अपने रिक्शे की घंटी बजाता हुआ और कान पर हाथ रखे मौसम की भविष्यवाणी की नकल करता हुआ. उसके रिक्शे पर चोर की विधवा बैठी थी. चुड़ैल कहीं की! अपने खसम की बरबादी का तमाशा देखने के लिए.

ज्यादा देर नहीं लगी. राम खुश-खुश वैन के भीतर गया. अपनी कलाई पर बंधे रूमाल पर हाथ फेरता हुआ. उसके बाल तेल से चुपड़े हुए थे और कपड़े प्रेस किये हुए. चोर की विधवा रिक्शे पर ही बैठी रही, सिर पर अपनी काली साड़ी का पल्लू लपेटे और अपने बच्चों को अपनी बांहों में कसे. कुछ देर बाद वैन के भीतर से असहमति की आवाजें आने लगीं जो धीरे-धीरे तेज शोर में बदलती गयीं. तब वैन के आसपास रहने वाले राम के साथी मामले का जायजा लेने के लिए वैन के भीतर घुसे और थोड़ी ही देर बाद राम को हाथ-पांव से पकड़े बाहर उठा लाये. सिर पर चुपड़ा हुआ तेल चेहरे पर बह आया था और मुंह से खून निकल रहा था. उसके हाथ अब कानों से नहीं लगे थे. चोर की विधवा अपना काला मुंह लिये रिक्शे पर ही बैठी रही. उन लोगों ने रमानी को नीचे जमीन पर पटक दिया था.

ठीक है. मैं अब बूढ़ा हो गया हूं. उम्र के साथ ही मेरे विचार भी सठिया गये हैं. पुराने स्कूल वाले ही विचार हैं. उन दिनों भी उन्होंने मुझसे नसबंदी कराने के लिए कहा था. भगवान ही जानता है कि यह सब क्यों जरूरी है. हो सकता है कि चोर की विधवा को मेरा दोष देना गलत हो. हो सकता है मेरे बूढ़े विचारों का आज कोई अर्थ न रह गया हो. ऐसा हो तो भी कोई बात नहीं. मैं तो आपको एक कहानी सुना रहा था और अभी वह कहानी पूरी नहीं हुई है. उस घटना के कुछ दिन बाद मैंने रमानी को वह रिक्शा एक साइकल मरम्मत करनेवाले को बेचते देखा. जब उसने देखा मैं यह देख रहा हूं तो वह मेरे पास आया और बोला, "मास्टर साहब, मुझे विदा दीजिए. मैं बंबई जा रहा हूं. वहां मैं देव आनंद और शशि कपूर से भी बड़ा फिल्म स्टार बन जाऊंगा."

"क्या चक्कर है?" मैंने उससे पूछा, "अकेले जा रहे हो?"

वह होले से हंसा. चोर की विधवा ने उसे सिखा रखा था कि बुजुर्गों के सामने नम्र नहीं होना चाहिए.

"मेरी औरत और बच्चे भी साथ जा रहे हैं." उसने कहा. यह उससे मेरी आखिरी बातचीत थी. वे लोग उसी दिन बस से रवाना हो गये थे.

कुछ महीने बाद मुझे उसका एक पत्र मिला, जो उसने तो लिखा नहीं होगा, क्योंकि लिखना तो वह जानता ही नहीं था. किसी व्यावसायिक पत्र लेखक को पैसे देकर लिखवाया होगा. बंबई में तो हर चीज की कीमत लगती है, यहां से भी दुगनी. अब यह मत पूछिए कि उसने मुझे ही क्यों लिखा. उसने लिखा और इसका पक्का सबूत मेरे पास है. हो सकता है कि मुझ जैसे बूढ़े व्यक्ति का अब भी वह कोई उपयोग समझता हो या मैं ही यहां ऐसा व्यक्ति था जो उसमें दिलचस्पी लेता था. जो भी रहा हो, उसका पत्र उसके नये रोजगार की खूबियों से भरा था. वहां जाकर उसकी प्रतिभा को पहचान लिया गया. एक बड़े से स्टूडियो में उसका टेस्ट हुआ. अब वह एक स्टार के रूप में तैयार हो रहा है. वह जुहू के बीच होटल सन-एन-सैंड में साधना और सोनिया जैसी बड़ी अभिनेत्रियों के साथ रह रहा है. मलबार हिल पर एक बंगला खरीद रहा है. चोर की विधवा अब खुश है और मोटी हो रही है. उनका जीवन सफलता की रोशनी से भरपूर है. अब वह थोड़ी-सी अच्छी शराब भी पी लेता है. उसके पत्र खुशी और आत्मविश्वास से भरपूर होते थे. पर जब भी मैं उन्हें पढ़ता, कई बार तो अब भी मैं उन्हें पढ़ लेता हूं, तो मेरी आंखों के सामने वे दिन घूम आते जब रेडियो वाली सच्चाई उसके सामने नहीं खुली थी. कानों और कप की शक्ल में रखे अपने हाथों के बीच की गर्म पतली-सी हवा के भीतर अपने अप्रतिम विश्वास से वास्तविकता का अभिनय करते हुए उसे कितनी ऊर्जा खर्च करनी पड़ती थी. □

—अनुवाद : सु. उ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति में सक्रिय एक युवा नेता के चुनाव संस्मरण

और मैं हार गया —उम्मीदवार

रात के तीन बजे थे. वह मेरा शुभेच्छु था, जो मुझे जगाकर यह समझा रहा था कि फलां गांव के वोटर टूट रहे हैं, मुझे इसी वक्त वहां पहुंचना चाहिए, क्योंकि सरकारी पार्टी के उम्मीदवार सरपत लाल ने उनकी मुट्ठी गरम करनी शुरू कर दी है. अब इसी से आप मेरी लाचारी का अनुमान लगा सकते हैं कि मैं किस तरह से चुनाव लड़ रहा था. और इतना दयनीय हो चुका था कि उस दोस्त को यह भी नहीं समझा पा रहा था कि दिसंबर की रात है, वह भी पूर्वी उत्तर प्रदेश की रात. यहां चिराग गुल होते ही गांव के घर मुतहा हो जाते हैं. औरत अंदर हो जाती है और मर्द घुटने में नाक भिड़ाकर रात काट देता है. बच्चे अलाव में डाले गये आलू और शकरकंद की भुनी हुई महक के सपने लिये सो जाते हैं. पुआल में घुसा आदमी कुत्ते की गरम खाल से पीठ सेंकता हुआ खर्राटे लेता है. इस गांव का वोटर अगर मुट्ठी गरम करने के चक्कर में टूट रहा है तो मैं इसे नहीं रोक सकता. इसकी वजह मेरी लाचारी ज्यादा है, नैतिकता कम. क्या कहकर मैं उन्हें रोक लूं कि आप पचास रुपये के लिए जनतंत्र का मजाक मत उड़ाइए. और इतना कहने के लिए मेरे पास न तो कूबत है और न ही तर्क, क्योंकि मुझे मालूम है; इसी जनतंत्र ने पिछले सैंतीस साल से उस वोटर का मजाक उड़ाया है. मैं उसे कैसे रोक सकता हूं. मैं अपने दोस्त को समझाने की कोशिश करता हूं, "भइया, रात के तीन बज रहे हैं. जिनको टूटना होगा, टूटकर सो चुके होंगे. अब उन्हें नहीं जगाया जा सकता. इस मुल्क में जो टूटता है, वह निहायत मजबूर और मजलूम इनसान होता है. ऐसे लोगों के पास बहुत कम सपने होते हैं, क्योंकि बहुत कम ऐसी रातें हैं इनकी जिंदगी में, जब वे भरपूर नींद में सोये हों. और आज सो रहे हैं तो सो लेने दीजिए. कम से कम इस चुनाव के ही बहाने कोई अधूरा सपना पूरा हो जाये."

मेरा दोस्त गरम हो गया. चार मील की दूरी साइकिल से तय करके यहां तक आया था. शरीर का खुला हुआ हिस्सा बर्फ हो रहा था. नाक से पानी निकल रहा था. शरीर का कुछ हिस्सा पुआल में, कुछ मेरे कंबल में डालते हुए बोला, "आप चुनाव लड़ रहे हैं कि मजाक कर रहे हैं?"

मैंने उसे समझाने की कोशिश की, "सच बात तो यही है कि यह एक मजाक ही है. जहां का वोट जाति के नाम पर, मुट्ठी गरम करने के नाम पर, एक जून के भोजन और एक अद्धे पर टूट जाये, वहां ऐसे भी लोग चुनाव लड़ने की हिम्मत करें, जिनकी खुद की मुट्ठी खाली हो और सिद्धांत के सामने रोटी बार-बार आड़े आ जाये तो यह मजाक नहीं तो और क्या है? लेकिन इसी मजाक को तोड़ना पड़ेगा वोट का अर्थ बताकर. हारना पड़ेगा. चुनाव हम हारेंगे नहीं, जीतें , आज नहीं कल. कभी तो यह मजाक बंद होगा." सुनकर वह निराश होने लगा.

चुनाव-प्रक्रिया को सुधारने की नित नयी कोशिशों के बावजूद कोई सामान्य नागरिक चुनाव लड़ने की हिम्मत कर सकता है क्या? शायद हां, मगर परिणाम? पढ़िए एक चुनाव प्रत्याशी की आपबीती–

"तो इसी फिलासफी पर चुनाव होगा?"

"अब इसी फिलासफी पर चुनाव होगा. अब वह दिन नजदीक है जब," उसने व्यंग्य भरे अंदाज में कहा, "और आप जीतकर संसद में चले जायेंगे," मैंने रुआब में कहा, "जी हां, हम नहीं तो कौन जीतेगा."

"तो फिर सो लिया जाय?"

मेरे दोस्त ने बगल में पुआल की गर्मी में सो रहे कुत्ते को डांटकर मड़ही से बाहर किया. मुझसे एक कंबल लेकर वहीं बगल में पसर गया और ढिबरी को फूंक मारकर बुझा दिया.

गांव के एक पंपिंग सेट पर बैठे हम लोग आज के कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने में लगे हैं. औरतों की एक टोली खुरपी लिये अरहर की आड़ से निकलकर सड़क की तरफ आती है.

हम सब को देखते ही शर्मा जाती हैं. साड़ी का पल्लू माथे तक खींच लेती हैं. बहुएं घूंघट में खुसुर-फुसुर करने लगती हैं. लड़कियां खिलखिलाने लगती हैं. एक मुंहफट बुढ़िया बढ़कर आगे आती है.

"तू सब चुनाव वाला हउव मइया?" हममें से एक आगे बढ़ता है और बतियाने लगता है, "माई, के का वोट पड़ी?"

"ए भइया, तू के हउव? दरोगा हउव कि पलटन हउव? काहे बताई कि के का वोट पड़ी? जेका पड़ी गिनती भये खुदै पता चलि जाई."

बुढ़िया और बोलती, लेकिन इसी बीच एक लड़की ने बुढ़िया को टोका, "का पकर-पकर करत बातू इ बुढ़िया त अऊर नेताक माई होई जान थै. जब देखउ तब भासन देई लगै थे."

"चुपकर! बतिआवई न देबू का कल्लू की नानी, तेल जरै तेली का गाड़ फटै मसालचीक तोहार भतार टउवें का. . ."

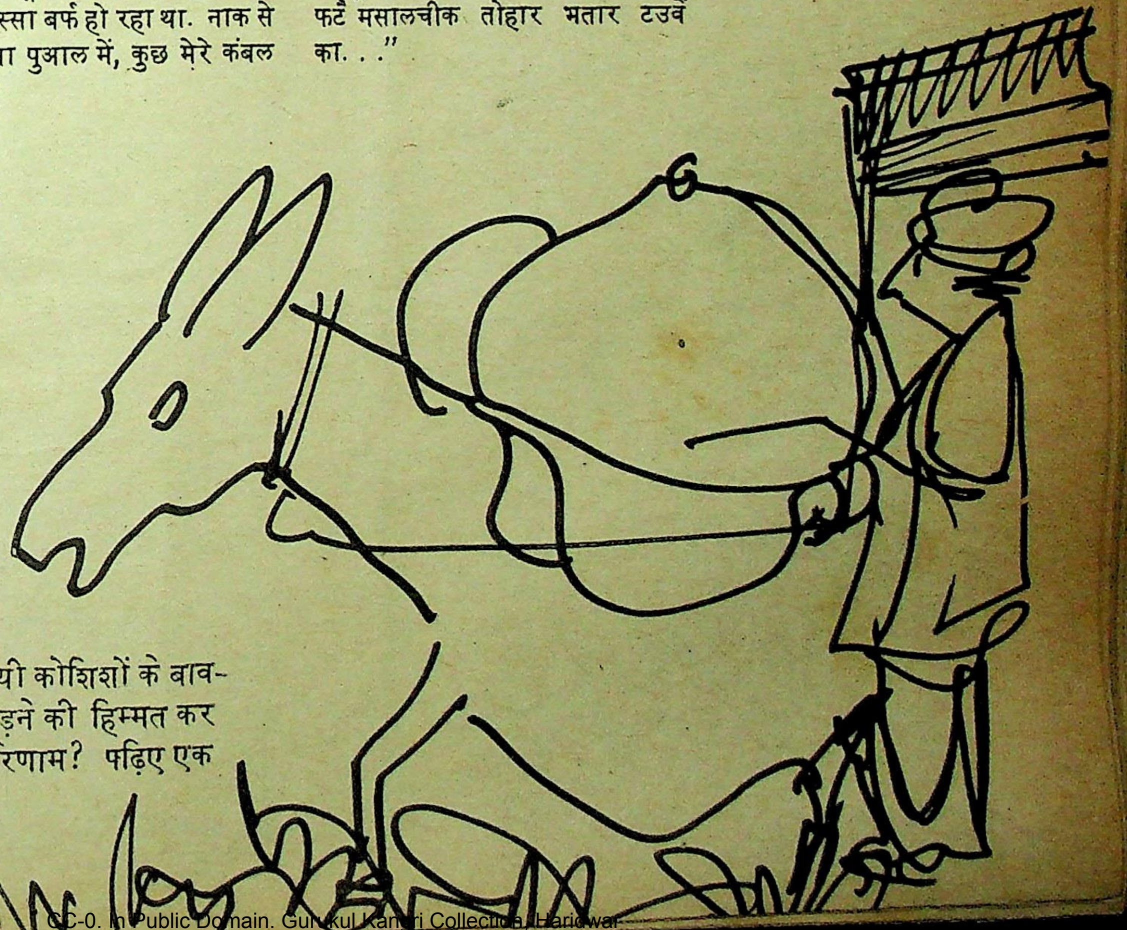

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औरतें खिलखिलखिलाकर हंसने लगती हैं. बुढ़िया बोलते हुए आगे बढ़े जाती है. सारी औरतें इठलाते, पलटकर देखते और बची-खुची कोर-कसर निकालते हुए आगे बढ़ जाती हैं. बुढ़िया की आवाज आयी, "ए भइया! हमार का. वोट देब न देब दुनो बराबर बा. जब तक इ मरिकौना परधान जिंदा बा तब तक हमार सब का वोट उन्हें निरबंसिया देत आवत बा. . . हमरे लेखे तौ तैंसे-ता तैंसे. . ."

मेरे प्रचार के लिए आये शहर से (विश्वविद्यालय के छात्र) मेरे दोस्तों के लिए आलम. यह मस्ती. . . यह मजबूरी, यह दर्द, जिसमें स्वीकृति है, अधिकारों पर हुए कब्जे की शिकायत में गुस्सा है. बीड़ी दगाते हुए आपस में बतियाने लगते हैं, "यार, इस तरह से कैसे चुनाव होगा?"

"प्रधानजी से मिलकर."

"प्रधानजी से मिलने की कोई जरूरत या फायदा नहीं है." मैंने कहा.

सच बात यही है. मेरा मिलना उनके लिए किसी काम का नहीं होगा. वहां ज्यादा से ज्यादा चाय मिल सकती है और कुछ नहीं. क्यों? ग्राम समाज की सारी जमीन अपने मजूरों के नाम पट्टा किया है, उस जमीन को दुबारा अपने लड़कों के नाम पर मजूरों से रजिस्ट्री कराया है. पुलिस का दलाल है. मुस्टंडों की दादागीरी इसी परिवार के साथ है. वह सरकार का साथ छोड़कर अपनी गर्दन क्यों फंसाने जायेगा.

तो उसे छोड़कर बाकी गांव के लोगों से मिला जाये, लेकिन.

उन्हें तो वोट का अधिकार नहीं है. वोट के दिन परधान के लोग इनसे पूछते हैं, किसे वोट देना है. ये बोलेंगे सरकार, आप जिसे कहें? तब ए लोग साफ-साफ कहेंगे, जब मेरे ही कहने पर वोट देना है तो वोट देने मत जाना, हम समझ लेंगे कि हमें ही वोट मिला है. फिर?

फिर क्या, आठवीं बार भी ऐसे ही जनतंत्र एक बार फिर खड़ा हो जायेगा. और पांच साल फिर आराम से कट जायेंगे.

लेकिन गांववालों से मिलना जरूरी है.

अब क्यों मिलना जरूरी है. . . जब स्साला यह गांव इतनी तरक्की कर चुका है कि बगैर वोट दिये ही वोट हो जा रहा है. . .

एक कहकहा लगता है और हम लोग गांव की तरफ मुड़ जाते हैं.

जीप में धक्का लगाया गया. चल पड़ी. अगवानी के लिए नंग-धड़ंग बच्चे. कुछ उघार धूल से सने, जीप के साथ दौड़ने लगे और हाथ बढ़ाकर 'परची', 'बिल्ला' मांगने लगे. गांधी (पूरा नाम बीरेंद्र प्रताप) मेरे बगल की सीट पर थे, चुटकी लेते हुए बोले.

"जिसे वोट देना है, वह तो मुट्ठी गरम कर रहा है, अद्धा मांग रहा है, कंबल खोज रहा है और जिसे वोट नहीं देना है, वह परची (घोषणा पत्र और उम्मीदवार का परिचय) और बिल्ला (चुनाव चिह्न) मांग रहा है!" पीछे की सीट पर बैठे राजेश मिश्रा ने टिप्पणी लगायी, "जनतंत्र का वर्त्तमान भले ही गड़बड़ है, लेकिन भविष्य उज्ज्वल है, अगली जेनरेशन (पीढ़ी) सही मायने में वोट करेगी." बात आगे भी बढ़ती, लेकिन तब तक एक लड़का जीप से टकराते-टकराते बचा. ड्राइवर ने जो एक बार ब्रेक लगाया और गाड़ी रुकी तो रुकी ही रह गयी. हम लोग गाड़ी वहीं एक किनारे लगाकर पैदल ही गांव की तरफ बढ़ गये. अचानक एक मकान के सामने नीम के पेड़ पर अपनी ही पार्टी का झंडा दिखाई पड़ा और हम लोग चौंक गये कि ऐसा भी हो सकता है कि बगैर हमारे मिले, सिफारिश किये कोई ऐसा भी है, जो हमारे साथ है.

समूचा गांव टूटा हुआ है, उदास, मांय-मांय करता हुआ. माटी की उखड़ी हुई दीवारों पर महिलाओं के हाथ के छाप मौजूद हैं, लेकिन [illegible] नहीं है. नीम के पेड़ पर माता की पताका है और गांव आधे से ज्यादा खाली है. नुक्कड़ पर ही बैठे इसहाक मियां और रमजान बीड़ी पी रहे हैं. हमने कहा, "आदाब अर्ज!"

"आदाब, वोटवाले हैं आप लोग."

"जी हां, मिलेगा कुछ?"

"मिलता तो जनाब, लेकिन यहां तो वोटर ही नहीं हैं. देख नहीं रहे हैं, पूरा गांव खाली हो गया है. मरद भाग-भाग कर शहर गये हैं; औरतें चूल्हे में हैं."

"क्यों?"

"क्यों, क्या आप विदेश से आये हैं.यहां काम नहीं रह गया था. मोची जूते बनाता था, गांव भर पहनता था. दूर-दूर से लोग आते थे. और अब दूर-दूर से प्लास्टिक के जूते गांव आने लगे और मोची भागकर शहर चला गया. रिक्शा खींचेगा और घोड़ेवाले अस्पताल में दम तोड़ देगा. यहां कोई भी तो नहीं बचा. कुम्हार, जुलाहा, बारी, हेला, ठाकुर, बरहमन सब तो भागे. बची हैं औरतें, वो इस काबिल नहीं कि वोट दे सकें."

"क्यों?"

"जाती ही नहीं!"

"लेकिन वोट?"

"पड़ता है, सेंट-परसेंट पड़ता है. जो मर चुके हैं, वो भी वोट डालने आते हैं? लेकिन कैसे? यह मत पूछिए आप खुद समझदार हैं!"

हम लौट लेते हैं. मन में गुस्सा और तबीयत में रोना आ जाता है. सैंतीस साल की यात्रा में हम यहां तक पहुंचे हैं. औरत लाचार होकर रह गयी है. देश की पचास फीसदी आबादी घरों से उठने वाले धुएं में घुट रही है. विजय मलिक पूछते हैं, "यहां गांव में नहीं चलना है?"

"चलूंगा, चुनाव के बाद!"

"मातम-पुरसी के लिए?" (ठहाका)

"वही समझो, लेकिन चलना है और चुनाव के बाद ही."

"राजनीतिक मुद्दे क्या होंगे." (ठहाका)

"पानी और पाखाना!"

"उफ!"

"उफ क्या होता है! तुम शहरी मिजाज के लोग हो. तुम्हारे जैसे पत्रकार के लिए गांव महज सनसनीदार समाचार की जगह है. तुमने देखा है गांव की उस यातना को, जिसे वह अपनी जिंदगी का हिस्सा मान चुकी है. तुम्हें यह मालूम है कि आज भी उसे पानी की किल्लत है. दो-दो मील से औरतें पानी भरकर लाती हैं. गांव में आज तक 'पाखाने' का इंतजाम नहीं हो पाया है. औरतों के बारे में सोचो, जो सूरज डूबने का इंतजार करती हैं. . ."

"सरकार ने. . ."

"हां, सरकार ने इतना जरूर किया है कि चकबंदी करके जंगल झाड़, नदी-नाले सब को खेती करने के लिए सौंप दिया है."

"तो यह राष्ट्रीय समस्या है."

"हंसने की बात नहीं है. अगर यह राष्ट्रीय समस्या नहीं है तो इससे बड़ी भी कोई समस्या नहीं है! इसका ताल्लुक बीमारी से है, सफाई से है. काम करने की क्षमता से है और भी गहराई में जाओगे तो पता चलेगा कि क्या वजह है कि अंधे, बहरे, लूले, लंगड़े लोग यहीं पैदा होते हैं. और गांववालों से पूछो तो 'कुदरत की माया' कहेंगे. अब तक किसी ने उनसे यह नहीं पूछा कि यह कुदरत की माया मंत्री के घर क्यों नहीं है. इन्हीं सवालों को लेकर चुनाव के बाद इन गांवों में जाना पड़ेगा."

"आपका नाम क्या है?"

"राजमनि दुबे!"

"यह जूता पहनने के लिए है और आप इसे डंडे में डालकर कंधे पर लटकाये हैं." वह झेंप जाता है, लेकिन इत्मीनान से जूते को नीचे रखकर बताता है.

"देखिए साहब, आप लोग शहरी लोग हैं. साइज का जूता लेते हैं. यह जो जूता है. इसने काट लिया है, पैर में डाल लूं तो चल नहीं सकता. प्लास्टिक का है. पहले चमड़े का जूता बनवाता था. रातभर सरसों के तेल में डालकर रख देता था. दूसरे दिन मलाई की तरह पैर से चिपका रहता था. अब इसका क्या करें?"

"आप खेती करते हैं."

"सरकार करने दे, तब न!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

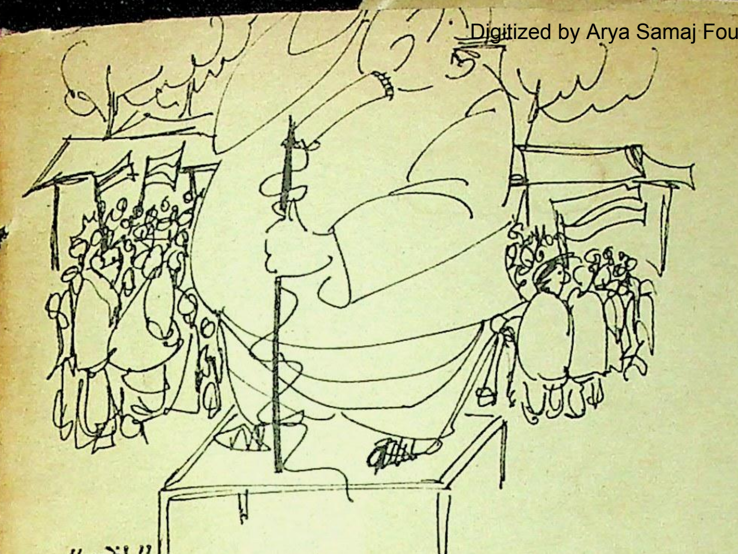

"क्यों!"

"खाद नहीं, बिजली नहीं, पानी नहीं! क्या कर. देखते-देखते खाद की कीमत दुगनी नहीं, तिगुनी हो गयी. बैंक से करज लेकर लोगों ने बिजली की मोटर लगायी कि पानी का आराम हो जायेगा, लेकिन देखिए, पूरी फसल सूख रही है. हफ्तों बिजली नहीं आती, आती भी है तो रात के बारह बजे आयेगी और मिन्नो कट जायेगी. अब बताइए, माघ-पूस की रात. कड़ाके की ठंड. कैसे कोई भराई कर सकता है. ऊपर से बिजली का बिल! और आपके शहर में लोग बताते हैं, बिजली का पैसा उतना भरना पड़ता है जितना कि बिजली खरच होती है, यहां मामला ही उलटा है, बिजली आये न आये. सरकार को कोई फर्क नहीं पड़ता. हर महीने उसे डेढ़ सौ रुपया भरना पड़ता है. बताइए, क्या करें?"

"सरकार पलट दीजिए."

"वो कैसे?"

"सही आदमी, सही पार्टी को वोट देकर."

"सब तो एक जैसे हैं साहब."

"तो इस बार किसे वोट दे रहे हैं."

"अपनी बिरादरी के हैं, यहां से लड़ रहे हैं. मंत्री रह चुके हैं."

राजनीति आसान नहीं है, वह भी विरोध पक्ष की. राजनीति के लिए दो रास्ते हैं; या तो देश के पैमाने पर प्रधान बनकर वोट लिया जाये या फिर उनके बीच रहकर दिल जीता जाये. दूसरी बात के लिए कोई भी दल तैयार नहीं है और सपना देखेंगे सरकार बनाने का. कैसे संभव है, जबकि जिसके खिलाफ लड़ना है, उसने अपने वोटर को चौतरफा घेर रखा है. गांव का हर बड़ा आदमी चाहे वह परधान हो या प्राइमरी का मोदरिस, पटवारी हो या दरोगा, किसी न किसी बहाने वह सरकार का वाहक बना हुआ है. देश का वोट इन्हीं की दहशत पर टिका है, उसे तोड़ने के लिए टक्कर देनी पड़ेगी. उन्हें हर घर से वोट मिल रहा है; क्योंकि उनके उम्मीदवार का हाथ जोड़े मुस्कराता हुआ चेहरा हर घर के जनानखाने तक पहुंच गया है, उनकी रकम से हर गांव की मुट्ठी गरम है. हर लाइसेंसी, चीनी, सीमेंट, कोटा वाला उनकी मरजी का गुलाम है तो हमें कहां से वोट मिलेगा.

अपने पास न तो गाड़ी है, न पेट्रोल. और यह क्षेत्र भी स्साला इतना बड़ा है कि हर जगह पैदल पहुंचा नहीं जा सकता. अकल से काम लिया जाये तो एक काम हो जायेगा.

कल सुबह बताऊंगा. अभी राष्ट्रीय कार्यक्रम हो जाने दीजिए, नौ बज रहे हैं. और सुबह उठना भी है.

मैं अभी चाय पी ही रहा था कि विजय, राजेंद्र, बद्री, पप्पू, राजेश, ने मिलकर कुछ बातचीत की और गांधी तथा स्वतंत्र को वहीं रुके रहने को कहते हुए आगे बढ़ गये.

रामकृष्ण चौबे और मौर्याजी देर रात में कहीं गांव से लौटकर आये थे, अभी सो रहे थे. उन्हें जगाकर चाय दिया. चाय पीते-पीते उन्होंने गांव की कहानी शुरू की.

"हमें दूर शहर में गांव की जो तस्वीर मिलती है, बिल्कुल अलहदा की तस्वीर है. यहां तो कत्तई जलालत और जिल्लत है. लोग किस तरह जी रहे, कहा भी नहीं जा सकता. अब तो मन करता है कि विश्वविद्यालय की नकली लाइफ छोड़कर यहीं रहकर कुछ काम किया जाये."

मौर्याजी ने कहा, "यहां देर तक सोने वाले के लिए बहुत बड़ी समस्या है कि बेचारा रोशनी में लोटा लेकर कहां-कहां भटकता फिरे."

"तो कैसा लगा चुनाव!"

"हम जीत जायेंगे!"

"वो कैसे?"

"लोग हमारी बातों से सहमत होते हैं."

"सहमत होना एक बात है, वोट देना दूसरी बात है."

इसी बीच बाहर गाड़ी की आवाज सुनायी पड़ी. ठहाके लगाते हुए लोग नीचे उतरे, "यह गाड़ी कैसे मिली."

"अकल से."

"अकल से?"

"जी हां; अब हम विदेशी पद्धति से चुनाव लड़ेंगे. राम की खिचड़ी राम का घी, भोग लगाएं बाबाजी. जनाब, यह सरकारी गाड़ी है. उनकी डेढ़ सौ गाड़ियां चल रही हैं, लेकिन उनके पास आदमी नहीं हैं कि गाड़ियों में डालकर गांव तक भेजे जा सकें. हमने कुछ नहीं किया. बस, उनका बिल्ला लगाकर दफ्तर के सामने खड़े हो गये. ड्राइवर आया और पूछा, "कहां-कहां चलना है, हमने कहा, चलो, साथ-साथ चलना है. और चल पड़े. टंकी फुल है. रही बात ड्राइवर की तो उसकी भी टंकी फुल कर देते हैं. वह तीन रात से सोया नहीं है. वह यहीं सोयेगा और हम घूम कर प्रचार करेंगे. बस, गाड़ी पर लगे झंडे को बदलना है."

"ड्राइवर अपनी गाड़ी ऐसे देगा."

"किसने कहा कि वह ड्राइवर की गाड़ी है. गाड़ी किसी कंपनी ने दी है. ड्राइवर तनखाह पर आया है. चलिए, उठिए, बात पूरी हो गयी है, वह जनता का आदमी है, जनता में ही रहेगा... अब आज का काम तो चला... स्साला ऐसा भी चुनाव होता है. न एक पोस्टर, न एक परचा. गाड़ी दूसरे की."

"कल का माइक देखा था विजय?"

"देखा क्या था, बोला था. हम कुछ और बोलते थे, वह ससुरा कुछ. हम कहते थे चुनाव, वह कहता था नाव. हम कहते थे प्रत्याशी, वह कहता था प्यासी. कल तो कमाल ही रहा. सबसे गजब तो किया गांधी ने... गाड़ी पर बैठे प्रचार कर रहे थे, माइक इन्हीं के हाथ में था. गाड़ी साठ की स्पीड से भाग रही थी, गाड़ी जब कस्बे में पहुंचती, तब तक ए बोलते, "भाइयो, मित्रो, दोस्तो, अजीजो, बहनो, माताओ. . . इतना बोलते-बोलते गाड़ी बाजार के बाहर हो जाती थी और जब ऊसर में पहुंचती थी, तब ये कहते, 'आपका चुनाव चिह्न व उम्मीदवार फलां है.'

गांधी ने एक लंबी-सी गाली दी, लोग हंसते हुए गाड़ी में बैठने लगे. ड्राइवर सोने चला गया था. गाड़ी विजय के हाथ में थी. सड़क छोड़कर जब गांव की तरफ मुड़े तो सड़क की पूरी धूल गाड़ी के अंदर आने लगी. बच्चे दौड़ते हुए धूल में चीखने लगे, "परची दो बिल्ला दो." धूल, बच्चे, गाड़ी, चुनाव चिह्न, उम्मीदवार, वादे, सब आगे की तरफ खिसकता रहा. मैं बैठा-बैठा सोचता रहा. इन्हीं पगडंडियों पर गुजरी एक उम्र पत्थर की हवेली तक पहुंचने का सपना देख रही है.

गांव के अभाव से पैदा हुई कहानी स्कूल पहुंचने तक उड़ान भरने लगी थी. प्रिंसिपल के खिलाफ नारेबाजी सियासी जिंदगी की शुरुआत बन गयी, "तानाशाही नहीं चलेगी, हर जोर जुर्म के टक्कर में! संघर्ष हमारा नारा है!!"

लेकिन तानाशाही खूब चली और हम स्कूल से निकाल दिये गये. यह क्रम चलता रहा. जोर जुर्म से टकराते रहे और संघर्ष में निकाले जाते रहे. विश्वविद्यालय पहुंचे, तब तक घर का रिश्ता टूट चुका था. पंद्रह रुपये माहवारी पर अखबारी नौकरी, विश्वविद्यालय की चमकदार जिंदगी और उसी कुर्ता-पाजामा में घूमता रहा और एक दिन छात्रसंघ का अध्यक्ष बन बैठा. लड़ता रहा, जेल जाता रहा. और आज यहां हूं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगमंच, रंगकर्मी और राजनीति

यह सब कमाल इस टोपी का है जिसे पहनते ही मैं 'दा साहब' हो जाता हूं और उतारते ही

मनोहरसिंह

भारतीय रंगमंच में मनोहर सिंह की अलग ही पहचान है. एक किरदार के रूप में और एक अच्छे इनसान के रूप में. तुगलक जैसे राजनीतिक नाटक में तुगलक की भूमिका के चलते तुगलक मनोहर सिंह का पर्याय हो चुका है. इन्हीं मनोहर सिंह से नाटकों पर हुई लंबी बातचीत का एक छोटा हिस्सा प्रस्तुत है--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको इन राजनीतिक नाटकों में काम करते समय कैसा लगता है?

अलग से कुछ भी नहीं. नाटक सामाजिक हो या पौराणिक, विदेशी पृष्ठभूमि में हो या देशी, किसी भी काल का नाटक हो. जो भूमिका मिलती है उस चरित्र के हिसाब से 'वर्क आउट' करना पड़ता है इसलिए राजनीतिक नाटकों पर अलग से कुछ सोचता होऊं ऐसी बात नहीं है.

महाभोज में आपने मुख्यमंत्री दा साहब का रोल किया है. इस चरित्र को कहां से लिया आपने?

अगर आपका इशारा किसी नेता की तरफ है तो ऐसा नहीं है. स्क्रिप्ट में जो कुछ था उसी के हिसाब से काम किया है.

अगर आपको राजनीति में जाना पड़े तो. . . ?

नहीं. ऐसा नहीं होगा. अगर होता भी है तो मैं समझता हूं कि मैं वही रहूंगा जो इस समय दिखाई पड़ रहा हूं.

क्या हमारे रंगकर्मी राजनीति या राजनीतिक नाटकों से दूर हैं? क्या सोचते हैं वे इन दोनों के बारे में? प्रस्तुत हैं राजनीतिक नाटकों से संबद्ध प्रमुख-अभिनेताओं और अभिनेत्रियों—मनोहरसिंह, उत्तरा बावकर, वागीश कुमार सिंह, अनंग दसाई, पंचानन पाठक और काव्य-कुमार से सूत्रधार की बहस तलब बातचीत

अब तो फिल्मों के लोग जा रहे हैं राजनीति में.

हां इस हिसाब से तो रंगमंच को भी जगह मिलनी चाहिए (मजाक कर रहा हूं).

आपको कौन-सी पार्टी अच्छी लगती है?

क्या बताएं भई. सब तो एक ही सरीखे दिखाई पड़ते हैं.

मुख्यमंत्री, तुगलक और महाभोज में राजनीतिक प्रभाव के लिहाज से किस नाटक को आप वरीयता देना चाहेंगे.

इन तीनों नाटकों की अपनी अलग भूमिका है. इसे मिलाकर नहीं देखा जा सकता. तुगलक की अलग भूमिका है. महाभोज और मुख्यमंत्री अलग प्रभाव डालते हैं. तो इन्हें मिलाकर देखना कोई मतलब नहीं रखता.

राजनीतिक नाटकों का भविष्य?

भविष्य क्यों वर्तमान में ही देखिए. कौन-सा राजनीतिक नाटक लिखा जा रहा है. महाभोज उपन्यास है. मुख्यमंत्री उपन्यास है. . . तो इन नाटकों का लिखा जाना जरूरी है. □

मैंने उनकी नकल उतारने की कोशिश की है

—उत्तरा बावकर

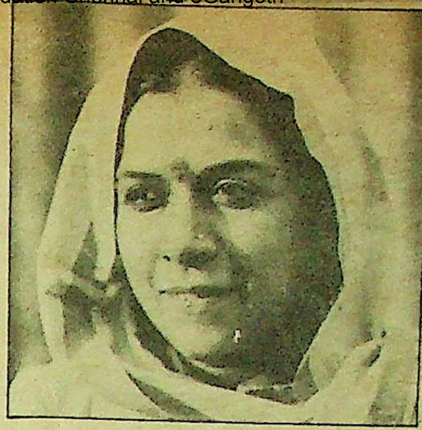

रंजीत कपूर द्वारा निर्देशित नाटक मुख्यमंत्री में उत्तरा बावकर ने मुख्यमंत्री की पत्नी का रोल किया है. इस भूमिका में एक बूढ़ी औरत का जो काम उत्तरा जी ने किया है यकीनन वह अद्वितीय रहा है.

उत्तराजी, आपने मुख्यमंत्री में मुख्यमंत्री की पत्नी का रोल किया है. उस समय वह चरित्र करने के लिए आपने किससे प्रेरणा ली?

ललिता शास्त्री से. उनके फोटोग्राफ देखे. उनकी मुद्रा, भाव, सब कुछ एक थोड़ा-सा स्वीकार करके फिर उसे अपने ढंग से वर्क आउट करती रही.

व्यक्तिगत जिंदगी में अगर आप मुख्यमंत्री की पत्नी होतीं और वह सब कुछ देखतीं तो क्या करतीं?

वही जो नाटक में किया है. सब कुछ छोड़-छाड़कर काशी चली जाती (उन्मुक्त हंसी).

राजनीति के बारे में आपका क्या कहना है?

होना चाहिए. सामाजिक जागरूकता तो जरूरी है ही. शहरों में तो फिर भी जागरूकता है लेकिन गांवों में देखिए वहां कितनी घुटन, यातना. . . उफ!

आपने महाभोज में एक हरिजन औरत के जुझारू चरित्र को निभाया है. क्या सच की जिंदगी में यह संभव है?

हो सकता है न भी हो. लेकिन देखिए न इसी रोल (महाभोज) में कुछ विद्रोही, कुछ डरी हुई, कुछ तनकर चलने को. बहुत कुछ संभव लगता है.

आपका राजनीति में जाने का मन करता है?

हां, लेकिन इस तरह से नहीं जैसे राजनीति अब चलने लगी है. जो दबे हुए लोग हैं उनके बीच जाकर उनमें काम करने का मन जरूर करता है.

राजनीति बहुत गंभीर विषय है

—वागीश कुमार सिंह

चेरी का बगीचा, महाभोज, मुख्यमंत्री, तुगलक जैसे नाटकों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाले वागीश कुमार सिंह की सोच राजनीति के बारे में नकारात्मक है.

कहां से कन्सीव किया आपने इस चरित्र को.

यह भी पूछने की बात है. हर जगह इस तरह के चरित्र मिल जाते हैं. कहीं भी देखिए.

राजनीति में जाना चाहेंगे?

रंगमंच छोड़कर? नहीं. कत्तई नहीं. जो मस्ती यहां है वह दूसरी जगह नहीं. दरअसल आज जो गड़बड़ी हो रही है वह यही है कि जो जहां के लिए है वह वहां नहीं रह पा रहा है. उस जगह के लिए भाग रहा है जो उसके लिए नहीं है.

फिल्म के लोग तो आ रहे हैं?

हां. तो मुझे भी जाना होगा तो पहले फिल्मों में जाऊंगा फिर राजनीति में. . . (ठहाका)

यह तो मजाक की बात हुई. देखिए सच बात तो यह है कि राजनीति से बरी होना या अपने को उससे काटकर देखना बेमानी की बात है. आज उस माहौल में जी रहे हैं. हर कदम पर टकरा रहे हैं तो कैसे कह दें कि हम अछूते हैं. लेकिन जहां तक किसी पार्टी की बात है, हां उससे जरूर दूर हैं. जो काम, नीतियां, सिद्धांत पसंद आते हैं उन पर अच्छी प्रतिक्रिया दे देता हूं नहीं तो उसके खिलाफ. लेकिन उससे असर क्या होने वाला है?

राजनीति होनी कैसी चाहिए?

समतामूलक. लोगों को अवसर मिले उनके कूबत के हिसाब से.

लेकिन इस समय.

हमसे ज्यादा आप जानते हैं.

फिर भी?

देखिए राजनीतिक घटनाएं जो घटती हैं हमें अखबार, रेडियो, टी. वी. से कुछ न कुछ तो मालूम हो ही जाता है. लेकिन हम क्या कर सकते हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं पंचानन पाठक...

रंगमंच से जुड़े बहुत कम नाम ऐसे हैं जो आजादी के पूर्व और आजादी के बाद रंगमंच के लिए काम करते रहे हों. पंचानन पाठक (सत्तावन साल) इन्हीं में से एक और परिचित नाम है. सोलह साल की उम्र से राजनीति और रंगमंच में बराबर की साझेदारी करते आ रहे हैं. सन् ४२ के आंदोलन से जेलयात्रा शुरू की और ४४ से रंगमंच. तब से अब तक सोच में दोनों को बराबर का दर्जा देते आ रहे हैं.

"मैं कम्युनिस्ट हूं. मार्क्सवादी.... विचार धारा तार्किक है, उसे मानता हूं. हां अगर कोई विचारधारा इस मार्क्सवादी सोच के आगे आये और मैं सहमत हो जाऊं तो यकीनन मैं उसे स्वीकार लूंगा, मुझे कोई संकोच नहीं होगा. कुछ भी हो सवाल विचारधारा का नहीं राजनीतिक होने का है तो मैं निश्चित रूप से राजनीतिक हूं और रहूंगा."

43 में आप कम्यूनिस्ट थे.

नहीं. मैं कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के आह्वान पर अंग्रेजी हुकूमत के विरोध में उतरा. डा. लोहिया, जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, अरुणा आशफअली सब कांग्रेस से अलहदा होकर आंदोलन कर रहे थे. मैं अग्रवाल कालेज (इलाहाबाद) में था. स्ट्राइक कराया. जेल गया. उस समय कम्युनिस्ट कांग्रेस सोशलिस्ट के साथ नहीं थे. वे इस आंदोलन का विरोध कर रहे थे. इस सब के बावजूद 1944 में हम सब ने कम्यूनिस्ट होना स्वीकार कर लिया. उसकी बातें अच्छी थीं. दर्शन ठीक था. उस समय के जितने भी रचनाकार थे किसी क्षेत्र के सब ने कम्युनिस्ट पार्टी के साथ काम करना, शुरू कर दिया था. मैं भी था. एक साल तक पूरी घिसाई करने के बाद 1946 में मुझे बाकायदे सदस्य बनाया गया और काम दिया गया इप्टा का. लेकिन 49 में जब रणदिवे साहब ने बागडोर संभाली तो उनकी मानसिक स्थिति रंगमंच के बारे में स्पष्ट नहीं थी. उनका कहना था इस नाचगान से क्रांति होने वाली नहीं है. बहरहाल मैं 195[illegible] में पार्टी से निकाल दिया गया. 51 में फिर बुलाया और मैं वापस नहीं गया. तब से [illegible] पड़ा हूं.

आप कितनी बार जेल गये.

कई बार. मैं 42 में, 45 में, 49 में तो दो बार गया.

कैसी रही जेल यात्रा?

मजेदार. आराम मस्ती.

रंगमंच...?

मेरी समझ में रंगमंच के लिए उस पाइलि[illegible] को उठाना चाहिए जिसमें दर्शक को कोई सं[illegible] मिले. जिंदगी से वास्ता हो. बेहतर जिंदगी [illegible] लिए कहा गया हो.

राजनीति सामयिकता का जीवन दर्शन है

—अनंग देसाई

मूलतः अनंग देसाई रंगमंच के प्रतिष्ठित कलाकार हैं लेकिन इक्का-दुक्का फिल्मों में काम कर चुके हैं. एटनबरो की प्रसिद्ध फिल्म गांधी में आचार्य कृपलानी की भूमिका करने वाले अनंग देसाई का कहना है—

"राजनीति कुर्सी से हटकर भी कुछ है जो आज के माहौल में बिलकुल न के बराबर दिखाई पड़ती है. और व्यक्तिगत रूप से मुझे इसकी जानकारी तब मिली जब एटनबरो ने मुझे गांधी फिल्म के लिए आचार्य जे. बी. कृपलानी की भूमिका के लिए चुना. उस समय तक वे जिंदा भी थे. एक दो बार मिला भी. उस समय की उन जानकारियों के आधार पर इतना तो कह ही सकता हूं. 'वह' राजनीति कितनी कठिन, कितनी मसक्कत और त्याग की जिंदगी थी.

राजनीति में जाने की कोई इच्छा?

ना जी. कतई नहीं. जहां हूं उसी जगह में लगा रहूंगा.

मुख्यमंत्री में नेताजी की भूमिका...

बिल्कुल ईमानदार नेता की भूमिका थी. शांत, तिकड़म से दूर. ईमानदारी से जनता की सेवा करना. बस यही सब करना था. उसे करते समय एक अच्छी तस्वीर दिमाग में थी और उसे किया.

मुझे हर पार्टी की कुछ-कुछ बातें अच्छी लगती हैं

—काव्य कुमा[र]

...और यही है कहानी राजनीति की मुझे जो कहना है वह इसी कहानी से समझ लीजिए. कहानी है...?

"लेकिन मैं किसी पार्टी का आदमी नहीं हूं. न होना चाहता हूं. 'पालने के पूत' एक सामाजिक राजनीतिक व्यंग्य की कहानी है. उसमें मैं एक ऐसे युवा नेता की भूमिका कर रहा था जो पैदा होने के साथ अंधेरे में बंद कर दिया जाता है और वहां चूहा पकड़ने की आदत पड़ जाती है. एक दिन बाहर निकलकर राजा से यही कहता है कि मैं चूहा पकड़ सकता हूं और मुझे यही काम मिलना चाहिए. राजा मुझे यह काम दे देता है. मैं इमारतों के अंदर से चूहा पकड़ने के [illegible] उन्हें गिरवाने [illegible] काम करता हूं. [illegible] घूस खाने लगता [illegible] यह है कहानी 'पा[लने] के पूत' की.

सक्रिय राजनी[ति] में आने का [कोई] इरादा.

अभी तो नहीं है.

अगर होगा किस पार्टी में.

अपनी अलग की [illegible] बनाऊंगा. उसमें [illegible] मंच, सिनेमा, कला[illegible] यही होंगे और उसका अध्यक्ष [illegible]

इस समय की [illegible] राजनीति है.

चूहा पकड़ने वा[ली] राजनीति है.

सभी चित्र: पवन म[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब पड़ोसन चाची की एक न चली....

'बहू, मेरा चश्मा ठीक हो गया हो तो लौटते वक्त लेती आना!'

'जी, पिता जी!'

'और बहू, अचार के आम लाना न भूल ना!'

...हीं भूलँगी...

...य ता दा–ट्रिप के लिए देने

'माँ, पहले मेरी टाई बाँधो, स्कूल के लिए ...हो रही है.'

'रमा, चलो भी... माँ देख लेगी सब कुछ!'

'चलो बाबा... तुम समझते नहीं, मेरी गैर-...दगी में तो माँजी घर संभालती हैं... सुबह ... मैं कुछ न करूं तो क्या सोचेंगी वो? इतना ... कम है कि उन्होंने मुझे नौकरी करने की ...जाज़त दे दी है.'

'और मेरी इजाज़त?'

'वो न होती, तुम्हारी मदद न होती तो भला मैं कर पाती नौकरी?'

'मैं पूछ सकता हूँ यह मक्खन किस लिए लगाया जा रहा है?'

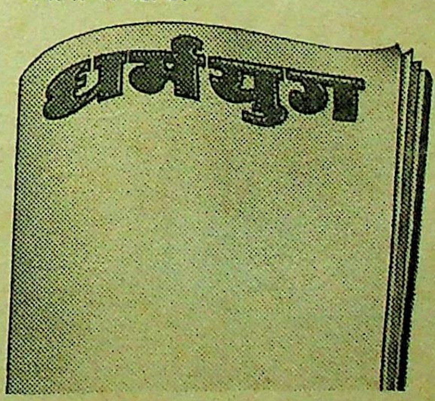

'इसलिए कि शाम को घर आते वक्त पिताजी का चश्मा तुम ले आना, अचार के आम मैं ले आऊंगी!'

'यानी रात को धर्मयुग में जो नौकरीपेशा महिलाओं पर परिचर्चा थी उस पर सरकार अमल कर रही है – कि पति को कामकाजी पत्नी का हाथ बटाना चाहिए वग़ैरह वग़ैरह'...

'बस यही तो सबसे बड़ी ख़राबी है धर्मयुग में... कोई विषय हो, कोई समस्या हो... कुछ हो... सब कुछ इतने सीधे सच्चे तरीक़े से, इतनी गहराई और अपनेपन से पेश किया जाता है कि हर पढ़नेवाला उसे आपबीती समझने लगता है.'

'धर्मयुग पर मत बिगड़ो देवी जी... यह धर्मयुग की ही मेहरबानी है कि जब ताऊजी तुम्हारे नौकरी करने को लेकर लाल पीले हो रहे थे तो माँ ने किस फ़र्राटे से धर्मयुग का हवाला देते हुए उनको ठंडा कर दिया था... और याद है, पड़ोसन चाची की लगाई-बुझाई को भी किस सफ़ाई से टाल दिया था!'

'सच कह रहे हो! शायद धर्मयुग ही वो पुल है जिस पर से गुज़र कर माँजी हम दोनों का दृष्टिकोण समझ सकी हैं. मेरे नौकरी करने की ज़रूरत को हर पहलू से परख सकी हैं.'

'अरे भई, धर्मयुग की बदौलत माँ तो समझ गई पर तुम पर कोई असर नहीं पड़ा!'

'मतलब?'

'मतलब यही कि धर्मयुग में फूलमखाने की खीर बनाने का तरीक़ा पढ़ा था पिछले हफ़्ते... तो आज तक बन ही रही है!'

नव सामाजिक चिंतन का अग्रदूत

ARMS-BC-DH-142-B

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की सुविधा एवं बचत के लिए

नये रूपाकार में सारिका का यह अंक आपके हाथों में है. इस रूपाकार में हम आपको 100 पृष्ठों से अधिक की सामग्री 76 पृष्ठों में ही दे रहे हैं जबकि मूल्य में वृद्धि केवल 50 पैसे की ही हुई है. यदि आप वार्षिक चंदा हमें सीधे भेजें तो वर्ष में आपको 6 रुपये की और भी बचत हो सकती है. आपको करना केवल इतना है कि अपने शुल्क का राशि हमें बैंक ड्राफ़्ट/मनी आर्डर/पोस्टल आर्डर सहित नीचे दिये गये कूपन के साथ तत्काल भेज दें.

शुल्क की रियायती दरें इस प्रकार हैं :

देश में (बंगलादेश, नेपाल सहित)

वार्षिक : 90 रुपये

छमाही : 47 रुपये

विदेश में सिर्फ समुद्री डाक से :

144 रुपये वार्षिक

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह मास के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम ....

पता ....

....

....

हस्ताक्षर ....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें.

मुख्य प्रसार प्रबंधक
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

अगला अंक

हंसिए, खुलकर हंसिए... पर एक बार जरा खुद पर भी!...

नजर के तीर की तरह जुबान और कलम के तीर का भी अपना ही मजा होता है और इस मजे से कोई भी वंचित नहीं रहना चाहता. मगर जीवन की तमाम जटिलताओं के बीच ऐसे मौके बार-बार नहीं आते जबकि हम अपनी करनी अपने आगे रखकर खुद पर आक्षेप करते हुए समाज की करनी पर कटाक्ष कर सकें!

होली की उमंग और तरंग के अंग-संग जीवन में हंसते-हंसते सब कुछ कह जाने की कला को सिद्धहस्त लेखकों की रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत कर रहा है:-

हास्य-व्यंग्य कथा विशेषांक

राजनीति, नेता, दलबदल, परिवार, पति-पत्नी, सेहत, शिक्षा, भ्रष्टाचार, संस्कृति, धर्म, पत्रकारिता, अफसरशाही, नौकरी, युवा पीढ़ी, सिनेमा, साहित्य, जासूसी, दोस्ती तथा दुश्मनी आदि से लेकर पड़ोसी और गली-मुहल्ले के विभिन्न विषयों पर पाठकों के लिए विशेष रूप से तैयार किए जा रहे इस 'होली उपहार' के बाकमाल अदाकार हैं:-

श्रीलाल शुक्ल, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, मुज्तबा हुसैन, इब्ने ईंशा, बाला दुबे, नरेंद्र कोहली, के.पी. सक्सेना, रवींद्रनाथ त्यागी, भगवतीशरण मिश्र, पी.जी. वुडहाउस, साकी, बनार्ड शा, चेखव आदि

☐ **प्रख्यात व्यंग्य चित्रकारों के खट्टे-मीठे व्यंग्यचित्र**
तथा और भी बहुत कुछ और सब कुछ सचित्र

सारिका १ मार्च, १९८४

हर पखवारे जिंदगी से एक जरूरी मुलाकात का माध्यम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar